मैत्री, नवंबर 1985 परिशिष्ट

मैत्री, ब्रह्मविद्या-मंदिर
पवनार 442111
12.11.85

प्रिय मित्र,

नवंबर का विशेषाक आपकी सेवा मे प्रस्तुत है। आप देखेगे कि अक ने एक पुस्तक का ही आकार लिया है। कुल पृष्ठ 356 है। इसलिए उसका मूल्य रु. 15-00 करना पडा है, यद्यपि अक की लागत कीमत उससे बहुत अधिक है। इसी वजह से दिसबर का अक प्रकाशित नही किया जायेगा। इसके बाद जनवरी 1986 का अक ही आपके पास पहुचेगा।

जो मित्र 'मैत्री' के ग्राहक बना रहे है, उनके लिए सूचना है कि अब मैत्री के ग्राहक जनवरी 1986 से ही बनाये जाये। नवंबर विशेषाक स्वतत्ररूप से मगवाया जा सकता है।

– सपादक

माझे यश

कीर्ति

निवृत्ति

माझी तृप्ति

विठ्ठला। तू गा।

सत नामदेव

विनोवाजी ने अपनी गीताई की प्रति पर लिख रखे हे सत नामदेव के ये शब्द – "मेरा यश, कीर्ति, निवृत्ति, मेरी तृप्ति, हे विठ्ठल, तू ही है।"

मैं एक मार्ग का प्रयोगी हू। अहिंसा की खोज करना मेरा जीवन-कार्य रहा है। मेरी शुरू की हुई प्रत्येक कृति, हाथ मे लिया हुआ प्रत्येक काम सब उसी एक प्रयोग के लिए हुए और हो रहे हैं। अहिंसा के पूर्ण प्रयोग के लिए तो वास्तव मे देहमुक्त ही होना चाहिए। जब तक वह स्थिति नहीं आती तब तक जितना सभव हो सके, देह से, सस्थाओ से और पैसे से अलग रह कर काम करने की मेरी वृत्ति रही। इसी तलाश मे कि अहिंसा की सामाजिक जीवन मे किस प्रकार प्रतिष्ठा हो।

विनोबा

अहिंसा की तलाश

विनोबा की जीवन-झांकी

विनोबा

के शब्दो मे

संकलन-संपादन कालिन्दी

मैत्री : वर्ष 22, अंक 10

'15 नवंबर' विशेषांक

मुद्रक-प्रकाशक : चन्नम्मा हल्लिकेरी,
ब्रह्मविद्या-मंदिर प्रकाशन, पवनार 442111

संपादक : सुशीला अग्रवाल
कुसुम देशपांडे
मीरा भट्ट
कालिन्दी

वार्षिक चंदा 25 से 40 रुपये ऐच्छिक
'15 नवंबर' विशेषांक : 15 रुपये

ईशावास्यं इदं सर्वम्

' विनु-स्मृति '

– विनोबाजी के बनाये हुए श्लोक, जिसको उन्होने 'विनु-स्मृति' नाम दिया है –

(1) यो वर्णाश्रमनिष्ठावान् गोभक्त श्रुतिमातृकः
मूर्ति च नावजानाति सर्वधर्म-समादर:
उत्प्रेक्षते पुनर्जन्म तस्मान्मोक्षणमीहते
भूतानुकूल्य भजते स वै 'हिंदु'रिति स्मृतिः
हिंसया दूयते चित्तं तेन 'हिं-दु'रितीरित. 9.7 1949

(2) वेद-वेदान्त-गीताना विनुना सार उद्धृत
ब्रह्म सत्य, जगत् स्फूर्ति, जीवन सत्य-शोधनम्
। । ।
शकराचार्य ज्ञानेश्वरमहाराज गाधीजी
30.9.1951

(3) ॐ तत् सत् श्री नारायण तू .. इत्यादि नाममाला
19.1 1952

(4) वेदान्तो विज्ञान विश्वासश्चेति शक्तयस्तिस्र
यासा स्थैर्ये नित्य शाति-समृद्धी भविष्यतो जगति
16. 8 1959

(5) काल-जारणम्
स्नेह-साधनम्
कटुक-वर्जनम्
गुण-निवेदनम् 20.1.1971

किंचित्

यह विनोबाजी का आत्मचरित्र नही है। वे तो कहते थे, "बाबा आत्मकथा लिखने बैठेगा तो वह 'अनात्मकथा होगी'। क्योकि वह तो है 'विनोबा भुलक्कड'।" परतु ऐसी अनात्म-कथा भी उन्होने कभी लिखी या कही नही। उनके हजारो प्रवचनो मे विषय को समझाते हुए दृष्टात के तौर पर अनुभव पेश करते हुए उनके जीवन की कई बाते सहजता से व्यक्त होती गयी है। उन्ही अशो को जगह-जगह से उठा कर एक सूत्र मे पिरोने का यह एक महज प्रयास है।

इसलिए इसकी एक मर्यादा भी है। यह 'सपूर्ण' जीवन नही, एक झाकी है। उनके जीवन की हर घटना, हर विचार, हर कदम का चित्र इसमे मिले, ऐसी सर्वसग्राहक दृष्टि इसके पीछे नही रही। जो प्रसग, कथाए 'उनके शब्दो' मे मिले, उतने ही यहा सूत्रबद्ध है। इसलिए कई महत्त्व की घटनाए इसमे न भी आ पायी होगी, कई जगहो पर अपूर्णता-सी भी लगेगी। क्योकि "उन्ही के शब्द" हो, इसका ईमानदारी से ख्याल रखा गया है। परंतु बावजूद इस मर्यादा के एक परिपूर्ण झाकी इसमे अवश्य मिलेगी।

छोटा बालक एक खेल खेलता है। एक पूरे चित्र के छोटे-छोटे अश लकडी के अलग-अलग टुकडो पर अकित होते हैं। पूरा चित्र बनाने की तमन्ना से बालक उन टुकडो को सुसगत बिठाने की कोशिश करता है और वह चित्र तैयार

हो जाता है। कभी उसमे एकाध भूल भी रह जाती है। और कभी तो वह भूल ऐसी होती है कि सारा चित्र ही बिगड जाता है। पर इसका कारण तो होता है बालक की अक्षमता ! इस सकलन मे कही कुछ विसंगति, त्रुटि, भूल रह गयी हो तो वह इस कथा के 'प्रथम पुरुप' की नही, वह सकलनकर्ता 'तृतीय पुरुप' की है। वे तो इसके अकर्ता ही है।

इस सभाव्य कमी का पूरा ख्याल होते हुए भी यह पयाम किया गया। वास्तव मे यह तो एक ऐसी ही बात है कि, ज्ञानदेवमहाराज के शब्दों मे,

हे अपार कैसेनि कवळावे । महातेज कवणें धवळावे
गगन मुठीं सुवावे । मशके केवी

इस अपार का किसको आकलन होगा ? महातेज को कौन उज्ज्वल करेगा ? मच्छर आकाश को कैसे अपनी मुट्ठी मे ला पायेगा ? परि एथ असे एकु आधार । परतु एक आधार है, जिसके कारण यह हो सका। उनसे प्राप्त 'अभय-दान' के कारण अत्यत भक्तिपूर्वक यह धृष्टता की गयी है। उन्होने अनेक प्रकार के दान प्रसृत किये, प्राप्त भी किये। परतु उनमे मिला यह दान उनकी 'अहिंसा की तलाश' का परिपाक ही है, जो उनकी खोज की सफलता को सूचित करता है।

नि.सदेह, यह जीवन-झाकी हमे उस तलाश को आगे ले जाने के लिए प्रयोग करने की प्रेरणा, उत्साह, बल देती रहेगी। कृष्णार्पणमस्तु।

कालिन्दी

आरंभ मे

मैं एक अलग ही दुनिया का आदमी हू । मेरी दुनिया निराली है । मेरा दावा है कि मेरे पास प्रेम है । उस प्रेम का अनुभव मै सतत ले रहा हू । मेरे पास मत नही है, मेरे पास विचार है । विचारो की लेन-देन होती है । उन्हे चहरदीवारी नही होती, वे वधे हुए नही होते । सज्जनो के साथ विचारविमर्श कर उनके विचार ले सकते है और अपने विचार उन्हे दे सकते है । इस तरह विचारो का विकास होता रहता है । इसका अनुभव मुझे निरतर आता है । इसलिए मै कोई वादी नही हू । कोई भी मुझे अपना विचार जचा दे और कोई भी मेरा विचार जचा ले । प्रेम और विचार मे जो शक्ति है, वह और किसी मे नही है । किसी सस्था मे नही, सरकार मे नही, किसी प्रकार के वाद मे नही, शास्त्र मे नही, शस्त्र मे नही । मेरा मानना है कि शक्ति प्रेम और विचार मे ही है । इसलिए पक्के मतो की अपेक्षा मुझसे न करे । विचारो की अपेक्षा रखे । मैं प्रतिक्षण वदलनेवाला व्यक्ति हू । कोई भी मुझ पर आक्रमण कर अपना विचार समझा कर मुझे अपना गुलाम बना सकता है । विचार को समझाये बिना ही कोई कोशिश करेगा तो लाख कोशिश करने पर भी किसी की सत्ता मुझ पर चलेगी नही ।

मैं केवल व्यक्ति हू । मेरे माथे पर किसी प्रकार का लेबल लगा हुआ नही है । मै किसी सस्था का सदस्य नही हू । राजनैतिक

पक्षो का मुझे स्पर्श नही है। रचनात्मक सस्थाओ के साथ मेरा प्रेम-सबंध है। मै ब्राह्मण के नाते जन्मा और शिखा काट कर ब्राह्मण का मूल ही खतम कर दिया। कोई मुझे हिंदू कहते है। पर मैने सात-सात बार कुर्आन-बाइबिल का पारायण किया है। यानी मेरा हिंदुत्व धुल ही गया। मेरी बाते लोगो को अच्छी लगती है, क्योकि मेरे कार्य की जड मे करुणा है, प्रेम है और विचार है। मेरे पास विचार के अलावा और कुछ मत ही नही है। मे इतना बेभरोसे का आदमी हू कि आज मै एक मत व्यक्त करूगा और कल मुझे दूसरा मत उचित लगा तो उसे व्यक्त करने मे हिचकिचाऊगा नही। कल का मै दूसरा था, आज का दूसरा हू। मै प्रतिक्षण भिन्न चिंतन करता हू। मै सतत बदलता ही आया हू।

सब मेरे है और मै सबका हू। मेरे दिल मे ऐसी बात नही है कि फलाने पर मै ज्यादा प्यार करू और फलाने पर कम। मुहम्मद पैगबर के जीवन-चरित्र मे एक बात आती है। अबुबकर के बारे मे मुहम्मदसाहब कहते है कि "मै उस पर सबसे ज्यादा प्यार कर सकता हू, अगर एक शख्स से दूसरे शख्स पर ज्यादा प्यार करना मना न हो।" यानी खुदा की तरफ से एक शख्स से दूसरे शख्स पर ज्यादा प्यार करना मना है। इस तरह मनाही न होती तो मै ुबकर पर ज्यादा प्यार करता। यही मेरे दिल की बात है। यानी प्यार करने मे मै फरक नही कर सकता हू।

मैने लुई पाश्चर की एक तसवीर देखी थी। उसके नीचे एक वाक्य लिखा था —"मै तुम्हारा धर्म क्या है, यह नही जानना चाहता। तुम्हारे खयालात क्या है, यह भी नही जानना चाहता।

सिर्फ यही जानना चाहता हू कि तुम्हारे दु ख क्या है । उन्हे दूर करने मे मदद करना चाहता हू ।" ऐसा काम करनेवाले इनसान का फर्ज अदा करते है । मेरी वैसी ही कोशिश है ।

मै जो भी कदम उठाता हू, उसकी गहराई मे जा कर मूल पकडे वगैर नही रहता । मैने अपनी जिदगी के तीस साल एकात चितन मे विताये है । उसी मे जो सेवा वन सकी वह मै निरतर करता रहा । लेकिन मेरा जीवन निरतर चितनशील था, यद्यपि मै उसे सेवामय वनाना चाहता था । समाज मे जो परिवर्तन लाना चाहिए, उसके मूल के शोधन के लिए वह चितन था । वुनियादी विचारो मे मै अब निश्चित हू । कोई समस्या मुझे डराती नही । कोई भी समस्या, चाहे जितनी भी वडी हो, मेरे सामने छोटी वन कर आती है । मै उससे वडा वन जाता हू । समस्या कितनी भी वडी हो, लेकिन वह मानवीय है, तो मानवीय बुद्धि से हल हो सकती है ।

चाहे मैने आश्रमो मे रह कर काम किया हो या वाहर, मेरे सामने मुख्य कल्पना यही रही कि हमारी सामाजिक या व्यक्तिगत सव प्रकार की कठिनाइयो का परिहार अहिंसा से कैसे होगा, इसकी खोज करू । यही मेरा मुख्य कार्य है । और उसी के लिए मै तेलगना गया था । यदि मै वह काम टालता तो उसका यही अर्थ होता कि मैने अहिंसा और शाति-सेना का काम करने की अपनी प्रतिज्ञा ही तोड दी । स्वराज्यप्राप्ति के बाद फौरन जो घटनाए इस देश मे घटी, उन्होने अहिंसा की आशा को क्षीण किया था । वहुत ज्यादा हिंसा की ताकते हिंदुस्तान मे प्रकट हुई थी । इसलिए गाधीजी के जाने के वाद मै इस तलाश मे था कि अहिंसा की सामूहिक प्रतिष्ठा कैसे बने ।

मेरा मानसिक झुकाव महावीर की पद्धति की तरफ ज्यादा है। परतु मेरा जो काम चला, वह वुद्ध भगवान के तरीके से चला। वैसे दोनो मे विरोध नही है। महावीर का तरीका यह था कि कोई मसला हाथ मे है, कोई विचार फैलाना है, ऐसी उनकी दृष्टि नही थी। वे जहा पहुचते, व्यक्तियो के साथ वात करते, सामनेवाले का विचार समझ लेते और उसके जीवन मे समाधान हो ऐसी राह उसे दिखाते थे। जिसकी जिस ग्रथ पर श्रद्धा हो, उस ग्रथ के आधार से समझाते और किसी की किसी भी ग्रथ पर श्रद्धा न हो तो बिना ग्रथ के आधार के ही समझाते। इस तरह अहिंसा का मूलभूत विचार मध्यस्थ दृष्टि रख कर समझाते थे। वुद्ध भगवान ने अहिंसा का विचार प्रसारित करने के लिए सामाजिक मसले को हाथ मे लिया।

कोई आलवन लिया जाये या न लिया जाये, यह अलग वात है। परतु उस आलवन का अर्थ स्थूल हो जाये और जिस सूक्ष्म वस्तु के प्रकाश के लिए वह हो, वही गौण हो जाये, आलवन ही बलवान हो जाये, जिस विचार के लिए वह लिया है वह विचार ही छिप जाये, तो खतरा पैदा हो जाता है। आलवन न लेने से विचार बिखर जाता है। सद्भावना अव्यक्तरूप मे फैलती है, परतु विचार ० प मे घनाकार नही बनता—आम जनता को उसका आकर्षण ी रहता। इस तरह आलवन लेने मे एक खतरा है और आलवन न लेने मे दूसरा खतरा है। आलवन लेने मे एक गुण है और आलवन न लेने मे दूसरा गुण है।

मेने जमीन के मसले का आलवन अवश्य लिया, परतु साम्ययोग का, करुणा का विचार समझाना ही हमारी मूल दृष्टि है। आलवन लेने मे मैने वुद्धि का परिपालन किया, लेकिन मेरा मन

सतत आलबन से परे सोचता है और मेरी बार-बार इच्छा होती है कि अपने मूल स्वरूप मे रहू । फिर भी आलबन नही छोडता । इस तरह मेरे तरीके मे दो तरीको का समन्वय है ।

जीवन मे करनेलायक जो भी सूझता गया, उसमे अधिक से अधिक मदद मुझे, शास्त्रग्रथ छोड दे तो, शकर, ज्ञानदेव और गाधी, इन तीनो से मिली है । गाधीजी के विचारो और ग्रथो का अध्ययन तो हुआ ही, परतु उनकी सगति भी मिली । और उन्होने जो सेवाकार्य खडे किये थे, उनमे से कुछ सेवाकार्य करने मे मेरी जवानी का जीवन बीता । सगति, विचारो का लाभ और तदनुसार काम करने का अवसर, तीनो मिल कर 'महापुरुषसश्रय' होता है, वह मुझे प्राप्त हुआ । उनका मुझ पर बहुत उपकार है । वैसे ही आदि शकराचार्य का बहुत उपकार मुझ पर है। क्योकि जो दार्शनिक शकाए तार्किक मन मे उठ सकती है, वे मेरे मन मे भी उठ सकती थी, उनका निरसन करने मे शकराचार्य की अधिक से अधिक मदद हुई । उनका विचार-ऋण सर्वथा मेरे सिर पर है । ज्ञानदेवमहाराज का मुझ पर जो उपकार है, उसका वर्णन करने के लिए मेरे पास शब्द नही । वह चितन पर है, हृदय पर है और मेरी कार्यपद्धति पर है । इतना ही नही, मै मानता हू कि वह मेरे शरीर पर भी है । इतना उनका प्रभाव मुझ पर सभी ओर से है । मै मूलत बहुत कठोर हू । मै एक ऊबडखाबड पाषाण हूं । इस पाषाण को शकराचार्य ने मजबूत, पक्का किया । इस पाषाण पर गाधीजी ने कारीगिरी कर उसको आकार दिया । लेकिन इस पाषाण को तोड कर उसमे से पानी निकालने का पराक्रम किसी ने किया हो, मेरे जीवन और हृदय को मधुरता किसी ने प्राप्त करा दी हो तो वह ज्ञानेश्वरमहाराज ने ही ।

मैं जब अपने लिए सोचता हू कि मैं कौन हू और मेरा भाग्य क्या है, तो कुछ स्थूल भाग्य भी याद आ जाते है और उसका बहुत बडा ढेर हो जाता है। मुझे जो माता-पिता मिले, वे कुछ विशेष ही थे, ऐसा लोग मानते है। मुझे जो भाई मिले, उनकी भी अपनी विशेषता है, ऐसा मान सकते है। मुझे जो मार्गदर्शक मिले, वे तो नि सशय ही लोकदृष्टि मे महात्मा ही माने गये। मुझे जो स्नेही-मित्र मिले, वे सबके सब लोगो के प्रेमपात्र हो गये। मुझे जो विद्यार्थी मिले, उन पर तो मै स्वय ही मुग्ध हू। तो यह सब भाग्य का ढेर लग जाता है। तिस पर, मुझ अनेक भाषाओ का ज्ञान होने के कारण अनेक सतपुरुषो और धर्मपुरुषो का विचार-रस सेवन करने का निरतर मौका भी मिला और मिलता ही रहता है। यह भी एक बडा भाग्य ही है। इस तरह एक भाग्यराशि बन जाती है। लेकिन वह सबकी सब काल्पनिक ही है। मुख्य भाग्य वही है, जो मेरा है, आपका है और सबका है कि हम परमेश्वर के अग, हिस्से, अवयव, तरग है। मुख्य भाग्य तो यही है कि हम परमेश्वर के अदर समाविष्ट हैं – यह अगर हम महसूस करे, तो हमारा बेडा पार है।

अयुक्तः

प्रथम खंड : सन् 1916 तक का काल
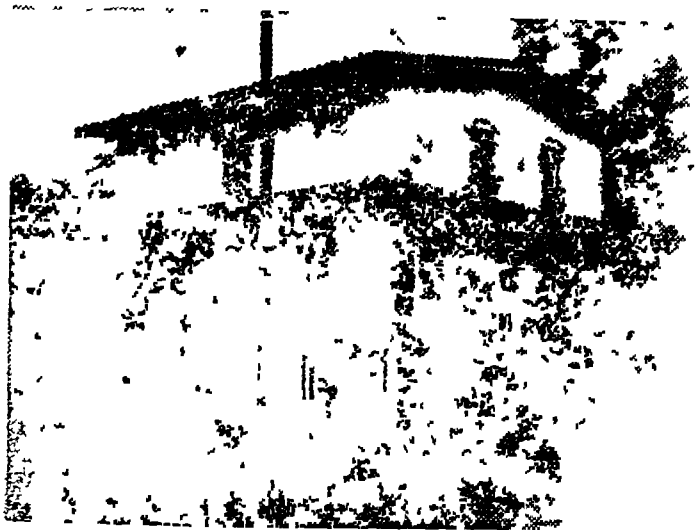
वह घर । गागोदे

बाल्यकाल

वह गांव, वह घर

मेरा बचपन कोकण (महाराष्ट्र-कुलाबा जिला) मे बीता। बहुत ही छोटा-सा गाव था गागोदे। गाव मे स्कूल नही था, लिखना-पढना खास किसी को आता नही था। प्रात काल मे घर-घर की स्त्रिया उठ जाती थी और सबसे पहले पीसने का काम कर लेती। उसके बाद आगन बुहारना, आगन मे गोबर का पानी छिडकना, वगैरह काम शुरु हो जाते। और ये सब काम करते हुए वे मधुर स्वर मे ओवी-अभग (भजन) गाती रहती। भगवान का स्मरण करती। वह सारा वातावरण प्रात काल मे पवित्रता का असर करता।

हमारे दादा जमीन्दार थे। घर बडा था। घर के सामने बडा आगन था। बचपन मे मैने वहा तरह-तरह के मेढक देखे। रातभर उनकी 'मुडक-उपनिषद' चलती रहती। इतने सारे असख्य मेढको को देख कर विन्या* बिलकुल घबरा जाता। बाद मे वेद मे उसका वर्णन पढा। वसिष्ठ ऋषि का सूक्त है। एक मेढक बैल जैसा है, एक बकरे जैसा, एक धब्बेवाला। आगे कहते है कि जब वे चिल्लाने लगते है, तब भास होता है कि ब्राह्मण वेदघोष कर रहे

---

* विनोबा को मा 'विन्या (विनायक का लघुरूप) नाम से पुकारती थी।

है। गरमी मे सूख जाते है, जैसे तपस्वी ब्राह्मण होते है। बारिश होती है तो ताजे बन जाते है, तब उनको उत्साह आ जाता है और वे आनद से चिल्लाते है। मेढक की ओर देखने की वह आध्यात्मिक दृष्टि थी।

लेकिन लोग मुझसे कहते है कि अब उस आगन मे एक चौथाई मेढक भी नही रहे है। उनकी टागे अमरीका के लोगो को बहुत मीठी लगती है, इसलिए मेढको को पकड-पकड कर उनकी टागे वहा भेजी जाती है। कोकण के लोग मुझसे पूछते है कि बाबा, गागोदे कब आयेगे ? तब मै जवाब देता हू, "जब उस आगन मे पहले जैसे मेढक होगे।"

गागोदे मे एक तालाब है। बहुत प्रचड तालाब ! उसके पास एक बहुत ऊचा पेड और एक प्रचड मदिर था। बहुत सालो के बाद, चालीस साल की उम्र मे जब मै वहा गया और देखा तब वह मदिर, पेड, तालाब सब छोटा लगा। तालाब इतना छोटा कि इस किनारे से उस किनारे तक पत्थर फेक सकते है। पेड भी ऐसा कि उस पर चढ सकते है। बच्चे की आख को वह सब बडा दीखता था।

गाव मे विन्या इधर-उधर घूमता। मजदूर काम करते वह देखता। एकबार मजदूर एक बडा पत्थर तोड रहे थे। विन्या वहा खडा हो कर देख रहा था। मजदूर पूछते, पत्थर तोडना है ? विन्या कहता, हा। पत्थर पर प्रहार कर-कर के पत्थर जब टूट कर बिलकुल दो टुकडे होने आता तब वे विन्या के हाथ मे हाथौडा दे देते। फिर विन्या जोरो से प्रहार करता और पत्थर के दो टुकडे हो जाते। फिर वे मजदूर विन्या को खुश करने के लिए चिल्लाते, 'इनामदार के लडके ने पत्थर तोडा, विन्या ने पत्थर तोडा'।

गागोदे के घर मे कभी-कभी किसी प्रसग पर ब्राह्मण आते और वेदपठन होता। वह सुन-सुन कर विन्या ने अपना वेद बनाया था मराठी मे। ब्राह्मण जैसे वेद के सस्कृत मत्र ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत स्वर मे बोलते थे, ठीक वैसे ही विन्या अपना वेद बोलता था – "चरति चरति घोऽऽ डेऽऽऽ, चरति घोऽऽ डेऽऽऽ नदीऽऽ काठीऽऽऽ (नदी किनारे घोडे चर रहे है)।"

गागोदे के घर मे एक अधे चाचा थे। वे खूब मेहनती थे और सज्जन स्वभाव के थे। घर मे उनकी सेवा बहुत लगन से की जाती थी। हम जब पिताजी के साथ बडौदा चले गये, तब अधे चाचा बडौदा नही आये, गागोदे मे ही रहे। एक दिन गागोदे से पत्र आया कि अधे चाचा की मृत्यु हो गयी। गागोदे से कभी किसी की मृत्यु के समाचार आते थे तो मा हम बच्चो को नहलाती थी और खुद भी स्नान करती थी। लेकिन इस बार ऐसा स्नान-सूतक कुछ हुआ नही। मैने मा से पूछा कि मा, अधे चाचा की मृत्यु के समाचार आये है, फिर हमने स्नान क्यो नही किया? मा ने कहा 'बेटा, वे हमारे रिश्तेदार नही थे। बडी मुसीबत मे थे और उनके आगे-पीछे, उनकी देखभाल करनेवाला कोई नही था, इसलिए वे हमारे साथ रहते थे।" बरसो साथ रहनेवाले अधे चाचा के साथ हमारा खून का कोई सबध नही है, इस बात का पता तब चला जब उनकी मृत्यु हुई।

मेरे जीवन के प्रारभ के नौ साल उस गाव मे और उस घर मे बीते। फिर तो हम लोग पिताजी के पास बडौदा चले गये (1905 मे)। वे वहा नौकरी करते थे। छुट्टियो मे हम लोग गागोदे आते और दादा-दादी के पास रहते थे। लेकिन गाव एक तरह से छूट ही गया। और फिर तो मै गृहत्याग कर घर से निकल ही पडा। पर कुछ वर्षो के बाद 1935 मे मै गागोदे गया था। दो चार दिन वहा ठहरा था। एक रात को, चरखे के बारे मे बापू को कुछ

लिखना था, तो आधी रात तक जाग कर लिख लिया। फिर थोडा चिंतन कर के सोनेवाला था, उतने मे नजदीक एक मदिर मे गाव के लोग इकट्ठे हो कर भजन कर रहे थे, उसकी ध्वनि कान पर पडी। मै उठा और चुपचाप वहा जा कर बैठ गया। एकाध घटे तक भजन चलता रहा। उनके उच्चार इतने अशुद्ध थे कि मेरे व्याकरण-प्रेम को वह असह्य ही लगता, परतु भक्तिभाव के आगे मुझे कुछ नही लगा। मै बिलकुल आनद मे मग्न हो गया। उन्होने उस दिन जो भजन गाये उनमे से एक भजन मुझे विशेष मधुर लगा, जो आज भी याद है——

सुख नाहीं कोठे आलिया ससारीं। वाया हाव भरी होऊ नका
दुःख बादवडी आहे हा ससार। सुखाचा विचार नाहीं कोठे

— इस ससार मे कही भी सुख नही है, इसलिए व्यर्थ लोभ मत करो।
सारा ससार दु ख का बधन है, सुख का विचार कही दीखता नही है —

80 85 घरो का वह छोटा-सा गाव! अत्यत दरिद्री! केवल एक लगोटी पहने हुए लोग, बदन पर दूसरा कपडा नही, बदन की हड्डी-हड्डी दीख रही है, और एक अभग मे लीन हो कर भजन मे तल्लीन हो गये है! मै वह दृश्य देख कर बिलकुल प्रसन्न हो गया। मै सोचने लगा, जिस गाव मे स्कूल नही, पढे-लिखे लोग नही, उस गाव मे इतना ज्ञान लोगो को दिया किसने? ये लोग तुकाराम आदि सतो के चद भजन भक्तिपूर्वक गाते है, इसी लिए इतनी बुद्धि आज भी उनके पास बची है। हमारी शक्ति है यह!

तुकाराममहाराज के घर मे अत्यत दारिद्र्य था। उनकी पत्नी भूख से मरी। तो तुकाराममहाराज कहते है, हे भगवान, दु ख नही होता तो तेरा स्मरण नही होता। और इतने दु ख मे वे आनद महसूस कर रहे है —

आनदाच्या कोटी । साठविल्या आम्हा पोटीं
प्रेमा चालिला प्रवाहो । नाम ओघ लवलाहो

– हमारे पेट मे करोडो राशि आनद समाया है ।
प्रेम और नाम का प्रवाह वह रहा है । –

यह जो भक्ति हमारे देश मे है, उसके कारण अत्यत दारिद्रय मे भी लोगो के चेहरे पर हास्य दीखता है । वे दरिद्री गागोदे गाव के लोग, लकडी के समान शुष्क देह थी, लेकिन भक्तिरस की मस्ती उनमे भरी हुई थी ।

इससे पहले एक वार 1920 मे भी मै गागोदे गया था और एक दिन वहा रहा था । मरनेवाले मर गये थे, जीनेवाले जिदा थे । चूल्हे पर पकनेवाले और सुपली मे रखे हुए, इतना ही फरक। जो नक्षत्र-तारिकाए वर्धा मे दीखती थी, वे ही गागोदा मे दीखी । वर्धा मे मेरी जो वृत्ति थी, वही वहा भी थी । वहा के पहाड देख कर, लेकिन, तृप्ति नही हो रही थी । मुझे लगता है, मै पहाड मे रहनेवाला कोई प्राणी रहा हूगा– किसी योगी की सगति मे रहा हुआ हिरण या बाघ, मालूम नही, और गलती से इस जन्म मे मनुष्यो मे आ पडा, अभी भी पूरा 'पालतू' नही बना हू । गाधीजी मे तला, जमनालालजी (बजाज) मे मिलाया फिर भी विनोवा विनोवा ही रहा ।*

तब (1935 मे), मैने एक पत्र मे लिखा था एक पहाड और दूसरी मा, दोनो के दरमियान वाकी सारी सृष्टि और सगे-सबधी आयेगे । मा की याद चार दिन मे 40 बार आयी होगी । गीता, मा और तकली– मेरे जीवन की त्रिमूर्ति है, मेरा सारा विष्णु-सहस्रनाम इस 'तीन' मे आ गया ।

☆☆☆

---

* विनोवाजी के मित्र उनके लिए एक मराठी कहावत कहा करते थे– 'करेला तेल मे तला, चीनी मे मिलाया फिर भी करेला करेला ही रहा वैसे विनोवा गाधीजी मे तला '-स

हमारे दादा

हमारे दादा (शभुराव भावे) बडे भक्तिमान थे। रोज सुबह शिवजी की पूजा करते। उनकी पूजा घटो चलती रहती। हम बच्चे सुबह उठ कर आगन से फूल-पत्ती बिन कर दादा की पूजा के लिए ले आते। दादा विन्या से पूजा के लिए चदन भी घिसवा लेते। उनका सतत मत्रोच्चारण चलता रहता। विन्या पास ही बैठा रहता। बीच मे कभी गाव के पाटील आदि कोई मिलने आता, तब उनके साथ दादा की बाते चलती और वे जब चले जाते तब पुन जप शुरू हो जाता। कभी दादा भूल जाते कि कहा तक जप किया था, तो विन्या से पूछते – 'क्यो रे विन्या, कहा तक आया था मै ?' विन्या को याद हो तो विन्या बता देता, परतु यदि विन्या भी भूल गया हो तो पुन नये सिरे से जप शुरू कर देते। इस तरह कभी-कभी उन्हे जप पूरा करने मे घटा-दो घटा लग जाता।

उस वक्त मै सात-आठ साल का था। एक दिन रोज के क्रमानुसार दादा पूजा मे बैठे थे। इतने मे भगवान की मूर्ति पर एक बिच्छू आ कर बैठ गया। देखनेवाले सब चिल्लाने लगे, बिच्छू आया, मार डालो। तब सबको रोकते हुए दादा ने मानो उपनिषद-वाक्य कह डाला – 'बिच्छू ने भगवदाश्रय लिया है। वह भगवदाश्रित है इसलिए उसे कोई न मारे।' उन्होने भगवान की पूजा सागोपाग पूरी की। बिच्छू वही बैठा था। मूर्ति पर फूल-चंदन-पानी सब चढाया। थोडी देर बाद बिच्छू वहा से उतर कर चला गया। विन्या के मन पर इसका गहरा सस्कार हुआ कि जिसने भगवान् का आश्रय लिया है, वह हमारे लिए आदरणीय है।

मुझे याद आता है, हमारे घर मे एक लडके ने एकवार चोरी की। दादी ने दादा के पास शिकायत की कि इस लडके ने गुड चुरा कर खाया। उस पर दादा ने कहा कि 'उसने चोरी नही की। विना पूछे गुड ले लिया है। यह घर उसका भी है और गुड भी उसका है। पूछ कर लेता तो भी उसे गुड मिलता ही, विना पूछे लिया तो भी मिला। इसे चोरी नही कहते।' फिर उन्होने उस लडके को पास वुलाया और कहा, 'देखो, तुमको जव इच्छा हो तव गुड माग लो, तुम्हे जरूर मिलेगा। और जव गुड लिया तव क्या तुमने हाथ धो लिये थे?' लडके ने कहा, नही धोये थे। तव उन्होने उसे समझाया कि पहले हाथ धो कर पोछ कर फिर गुड लेना चाहिए। तव से धीरे-धीरे उस लडके की चोरी की आदत छूट गयी।

हमारे आश्रम मे एक लडका चोरी से वीडी पीता था। वह पहले छात्रावास मे रहता था। वही उसे यह आदत पड गयी थी। आश्रम मे वह वहुत अच्छा काम करता था, फिर भी उसने यह वात् छिपा रखी थी। चोरी से वीडी पीता रहा। आश्रम के एक भाई ने उसे देखा। उसे मेरे पास लाया गया। मैने देखा, वेचारा घवडा गया था। मैने उससे कहा, "घवडाओ नही। वडे-वडे लोग भी वीडी पीते है। तुमने कुछ वुरा काम नही किया। वुरी वात यह है कि यह काम चोरी से किया। इसलिए आज से मै यहा एक कोठरी रखूगा, जिसमे तुम वीडी पी सकते हो। सप्ताह मे उतने वडल तुम्हे दूगा।" आश्रम के कुछ भाइयो को यह तरीका अजीव लगा। तव मुझे व्याख्यान दे कर समझाना पडा, "वीडी पीना नि सशय गलत है। हम वीडी नही पीते, यह वह भी जानता है। उसे आदत पड गयी, इसी लिए वह पीता है। लेकिन छिपाने की आदत खराव है और दुनिया मे खुलेआम पीना भी गलत है। इसलिए उसे आदत छोडने का मौका देना

चाहिए । यह अहिंसा का विचार है । अहिंसा मे सहन-शक्ति होती है । इसलिए छोटी-छोटी चीजो मे आग्रह न होना चाहिए ।"

एकबार दादा पूजा के लिए बैठे थे और एकाएक उनका शरीर कापने लगा, और उन्हे सिहरन हो उठी । उनको बुखार था । उनकी पूजा करीब दो-तीन घटे चलती थी । पूजा मे इस तरह का विघ्न उन्हे शायद सहन नही हुआ । शरीर मे कपन शुरू होते ही वे उठे और पास के कुए मे कूद पडे । दादी को लगा कि अचानक यह क्या हुआ ? परतु वे तो कुशल तैराक थे । पाच-सात मिनट अच्छी तरह से तैर कर ऊपर आ गये और शरीर पोछ कर पुन पूजा मे बैठ गये । यह घटना मैने अपनी आखो से देखी है। मेरी पदयात्रा मे मुझे भी यह अनुभव आया है कि पानी मे भीगने से कुछ भी हानि नही होती, क्योकि पानी मे सारी औषधिया भरी है । इसी लिए वेद ने पानी को 'विश्वभेषज' की उपाधि दी है ।

गणेश चतुर्थी के दिन हमारे घर मे गणपति की मूर्ति की स्थापना होती थी । गणेशजी की मूर्ति दादा हम बच्चो की सहायता से खुद बनाते । हमसे चदन घिसवाते और उसकी मूर्ति बनाते । उसकी प्रतिष्ठापना होती, रोज पूजा-आरती होती । चौदह दिन तक घर मे उत्सव का वातावरण रहता । लेकिन चौदहवे दिन मूर्ति का विसर्जन होता, मूर्ति पानी मे डुबो दी जाती । इतने परिश्रम से जिस मूर्ति को बनाया, दस-बारह दिन तक पूजा-अर्चना की उसको डुबो देना – वह भी उत्सव मनाते, गाते-बजाते हुए – इस विचार से बहुत दु ख होता । बाद मे समझ मे आया कि उसके पीछे क्या हेतु है । हिंदू धर्म मे मूर्तिपूजा के साथ-साथ मूर्ति-गौणता की भी युक्ति समझायी है । मूर्ति-भजन नही करना है, सादर मूर्ति-विसर्जन

करना है । आवाहन-विसर्जन की यह क्रिया वहुत ही सुदर है । जिसका सर्जन किया, उसी का विसर्जन करने की शक्ति, अनासक्ति हममे आनी चाहिए ।

दादा का व्रत-उपवास आदि चलता ही रहता । वे चाद्रायण व्रत करते थे । उस व्रत मे प्रतिपदा के दिन एक ही कौर भोजन लेना और फिर रोज चद्र की कला के साथ एक-एक कौर वढाते-वढाते आखिर पूर्णिमा के दिन पद्रह कौर भोजन लेना, और फिर एक-एक कौर घटाते-घटाते अमावस के दिन एक कौर पर आ जाना, ऐसी प्रक्रिया रहती है । चाद्रायण व्रत करते समय दादा चद्रोदय के वाद चद्रमा की पूजा-आरती कर के ही उस दिन जितने कौर खाने के होते थे उतने खा लेते थे । चद्रोदय रोज एक समय तो होता नही । कभी सध्या को, तो कभी रात को, तो कभी पिछली रात[1] इसलिए कई बार चद्रोदय होता तव विन्या सोया हुआ होता । दादा मा से उसको जगाने के लिए कहते । मा विन्या को विस्तर से उठा कर दादा के पास ला कर बिठाती । विन्या आधी नीद मे रहता, पर दादा की पूजा-आरती समाप्त होते ही झट अपना हाथ प्रसाद के लिए आगे वढा देता । और दादा अपने कौर मे से थोडासा हिस्सा विन्या के हाथ पर रख देते ।

मुझमे जो थोडी-वहुत पवित्रता है, वह दादा के कारण है । वह दादा की मेरे लिए उत्तम विरासत है । अच्छी-अच्छी चीजे खिला-पिला कर जो दुलार करने होते है, वे तो उन्होने जरूर किये होगे, परतु आधी रात को भी भगवान के दर्शन के वास्ते जगा कर उन्होने मेरे मन पर जो सस्कार डाले है और वह जो प्रसाद मुझे मिला है, उसे मै कभी भूल नही सकता । उनका यह मुझ पर महान उपकार है ।

☆☆☆

विन्या की मां

मेरे मन पर मेरी मा का जो सस्कार है, उसके लिए कोई उपमा नही है। मुझे अनेक सत्पुरुषो की सत्सगति प्राप्त हुई है। अनेक महापुरुषो के ग्रथ मेरे पढने मे आये है, जो अनुभव से भरे है। उन सबको मै एक पलडे मे रखता हू और मा से मुझे साक्षात् भक्ति का जो शिक्षण मिला उसे दूसरे पलडे मे रख कर तौलता हू तो यह दूसरा पलडा भारी होता है, उसका वजन ज्यादा होता है।

परम भक्त

मा परम भक्त थी। घर के सब लोगो को खिलापिला कर, घर का काम पूरा कर, बिना कुछ खाये वह भगवान के सामने बैठ जाती। भगवान की सागोपाग पूजा करती। आरती करना, भगवान पर फूल चढाना इत्यादि पूजा का जो विधि है, उसके अनुसार पूजा करती, जैसे कि सभी करते है। परतु पूजा-समाप्ति

पर वह भगवान को प्रणाम करती तब उसके भक्त-हृदय का दर्शन होता। प्रणाम करने के बाद अपने दोनो कान पकड कर वह बोलती – "**हे अनंत कोटि ब्रह्माडनायक! मेरे अपराधो को क्षमा कर।**" और उस समय उसकी आखो से आसुओ की अविरत धारा बहने लगती। ऐसी अश्रुधारा आदेश से नही' बह सकती। हृदय भक्ति से भरा हो तभी यह हो सकता है। आदत के मुताबिक, विशेष दिन पर हमारी आखो से भी आसू बह सकते हैं। जैसे रामनवमी है, कृष्णाष्टमी है। ऐसे दिन पर उत्सव होता है, भगवान की मूर्ति रखी जाती है, तो वह देख कर अश्रुधारा बह सकती है। परतु रोज की पूजा मे इस तरह अश्रु की धारा बहते हुए मैंने देखी है। यह भक्ति के बिना हो नही सकता। मेरे हृदय मे माता के जो स्मरण बचे है, उनमे यही सर्वश्रेष्ठ स्मरण है।

हमारी मा मामूली ससारकार्य मे थी। दिनभर काम मे लगी रहती। लेकिन उसका चित्त निरतर ईश्वरभावना से भावित रहता था। वह ससार मे थी, लेकिन उसके चित्त मे, उसकी वाणी मे ससार नही था। उसके मुख से कभी कटु शब्द सुना नही। सुबह उठी कि नामस्मरण शुरू हो जाता। चक्की पीसने बैठी तो भगवान के गीत शुरू हो जाते। वह जो गाने गाती थी, वह सब भगवान के होते थे। अत्यत प्रेम से और भक्ति से गाती थी। उसकी आवाज बहुत मधुर थी। और उसकी विशेषता यह थी कि बिलकुल तन्मय हो कर गाती थी। एकबार मैंने मा से कहा कि रोज नया भजन गाओ, कल गाया हुआ आज नही, आज गाया हुआ कल नही चलेगा। तो छ महीने तक यह कार्यक्रम चला। उसने मुझे रोज नया भजन सुनाया। इतने भजन उसको कठस्थ थे। वह

कर्नाटक की थी। उसका मायका वहा था। तो उसको क़न्नड भजन भी आते थे। पुरदरदास का एक भजन वह बहुत मधुर आवाज मे गाती थी –

अनगू आणे रगा निनगू आण
अनगू निनगू इव्वरिगू भक्तराणे
निन्न बिट्टु अन्यर भजिसिदरनग आणे रगा
अन्न नी कै बिट्टु पोदरे निनगे आणे

– मुझे भी कसम है, भगवान तुझे भी कसम है, और हम दोनो को भक्तो की कसम है। तुझे छोड कर दूसरो का आश्रय (भक्ति) लूगा तो मुझे कसम। तू मेरा हाथ छोड देगा तो तुझे कसम –

दूसरा एक मराठी भजन भी बहुत स्मरण मे रह गया है –

काळी घोगडी काळी काठी
काळा दोरा कंठीं
बोली महाराची थेट मराठी
गाडीस लगोटी
पायीं वाहणा मोठा शाहणा
पतितपावन नाम जयाचे

काली कवली, काली लाठी, काली डोरी गले मे, बोली महार की ठेठ मराठी, वदन पर लगोटी, पैरो मे जूता, बडा सयाना, पतितपावन नाम जिसका (सत दामाजी के लिए भगवान महार (अत्यज) बने, उसकी कहानी) –

उसका स्नान, रसोई वगैरह जो भी चलता तब अदर कुछ न कुछ धुन चलती थी। कई दफा यहा तक होता था कि वह रसोई मे दुगना नमक डाल देती। वह तो सबका भोजन हो जाने के बाद

भगवान की पूजा कर के ही खाना खाती । मै सवसे पहले खाने बैठता, लेकिन खाने की तरफ मेरा वहुत ही कम ध्यान रहता, जो सामने होता वह खा लेता और चला जाता । वाद मे पिताजी खाना खाने वैठते । वे कहते कि सब्जी मे नमक ज्यादा पडा । शाम को वह मुझसे पूछती कि सब्जी मे नमक ज्यादा था तो तुमने मुझे कहा क्यो नही । मै उससे कहता, तू ही पहले चख कर क्यो नही देख लेती ? लेकिन भगवान की पूजा करने से पहले, उनको नैवेद्य चढाये वगैर कैसे चखे ? वह उसको जचता नही था ।

मा को पिताजी के लिए वहुत आदर था, फिर भी वह मुझे ज्यादा मानती थी । एकबार उसने भगवान को एक लाख चावल चढाने का सकल्प किया । रोज चावल के दाने गिन-गिन कर चढाती । पिताजी ने उसे चावल के दाने गिनते हुए देखा, तो कहने लगे, 'यह तुम क्या कर रही हो ? उससे तो यह करो कि एक तोला चावल नाप लो, उतमे कितने दाने आते है वह गिन लो और उस हिसाव से लाख दाने जितने तोले मे आयेगे उतना तोला चावल ले लो । चाहे तो आधा तोला ज्यादा ले लो, ताकि गिनती मे कही कमी न रह जाये ।' इस पर मा कुछ वोली नही । उसे जवाव सूझा नही । शाम को मै घर आया तव मुझसे उसने पूछा – 'विन्या, तुम्हारे पिताजी ने ऐसी वात कही, इसमे क्या रहस्य है, मुझे वताओ ।' मैने कहा, 'तुम जो चावल के लाख दाने भगवान को चढा रही हो, वह गणित-हिसाव का काम नही है । वह तो भक्ति है । सतो और ईश्वर के स्मरण के लिए वह है । एक-एक दाना गिनते समय चित्त मे नामस्मरण चलता रहे । इस लिए एक-एक दाना गिनना ही चाहिए ।' उसे एकदम सतोष हुआ ओर पिताजी को उसने वैसा ही जवाब दिया ।

नागपचमी का त्यौहार आता तो मा नागदेवता की पूजा करती। उस दिन वह मुझसे नागदेवता का चित्र खीच देने के लिए कहती। मै कहता, मा, बाजार मे सुदर चित्र मिलता है। वह कहती, "सुदर हो तो भी वह नही चाहिए। मुझे तो तेरे हाथ का खीचा हुआ चित्र चाहिए।" बेटे के लिए इतनी भावना थी। फिर मै छोटे पीढे पर कुकुम से नागदेवता का चित्र खीच कर देता।

रोज रात को दूध मे जोरन डालते समय मा भगवान का नाम लेती। एक दिन मैने उससे पूछा, मा, दही जमाने मे भी भगवान को लाने की क्या जरूरत है ? बोली, "बेटा, हमने अपनी ओर से भले पूरी तैयारी कर ली हो, फिर भी दही तो तभी जमेगा जब भगवान की कृपा होगी। इसलिए मै भगवान का नाम लेती हू।" भक्त का प्रयत्न और भगवान का अनुग्रह, दोनो का भान उसको था।

आचारधर्म की शिक्षक

बचपन मे मा ने मुझसे रोज तुलसी के पौधे को पानी देने का नियम करवाया था। एकबार मै स्नान करके आया और भोजन के लिए पीढे पर बैठ गया। मा ने पूछा, तुलसी को पानी दिया ? मेरे 'ना' कहते ही वह बोली, "पहले तुलसी को पानी दे कर आओ, तब तुझे भोजन दूगी।" उसका मुझ पर यह अनत उपकार है। उसने मुझे दूध पिलाया, खाना खिलाया, बीमारी मे रात-रात जाग कर मेरी सेवा की, ये सारे उपकार है ही। उससे कही अधिक उपकार उसने मुझे मानव के आचारधर्म की शिक्षा दे कर किया है।

गागोदे मे हमारे घर के आगन मे एक कटहल का पेड था । मै तो वच्चा ही था । पेड को कटहल लग जाते तव मै मा से पूछता कि कव कटहल खाने को दोगी ? कटहल पक जाता तो मा उसे तोडती और पत्ते के वहुत सारे दोनो मे थोडे-थोडे कटहल के कोए भर देती । फिर मुझे पहले ये दोने अडोस-पडोस के घरो मे दे आने को कहती । सवदूर कटहल वाटने का काम पूरा हो जाता, तव फिर वह मुझे अपने पास विठा कर मीठे कोए खाने को देती, कहती, **"विन्या, पहले दे कर फिर खाना चाहिए ।"** कितने वडे गहरे तत्त्वज्ञान की शिक्षा उसने मुझे दी ! वह कहा करती – उसने वह व्याख्या ही वना दी थी – "जो देता है वह 'देव' (भगवान) है, और जो रखता है वह 'राक्षस' है ।" उसकी इस शिक्षा का मुझ पर इतना असर हुआ कि मेरा मानना है कि वह शिक्षा न मिलती तो मुझे भूदान-यज्ञ की प्रेरणा न मिलती ।

अडोस-पडोस के किसी घर मे घर की वहन वीमार हो तो मा उसके घर जा कर रसोई वना देती । तव वह अक्सर पहले अपने घर की रसोई वनाती और फिर उस घर की वनाने जाती । एकवार मैने कहा, मा, तू वडी स्वार्थी है । पहले अपने वच्चो का, अपने घर का ख्याल कर लेती है, फिर दूसरे के घर का करने जाती है । तव वह हसने लगी, वोली, "जल्दी रसोई वना कर रख दू तो वह ठडी हो जायेगी । उन्हे गरम खाना मिले इसलिए वहा समय पर जा कर रसोई वना देती हू और यहा पहले वना लेती हू । यह स्वार्थ नही, परार्थ है ।"

वचपन मे विन्या को एकवार भूत का डर लगा । तो मा ने विन्या को समझाया कि "परमेश्वर के भक्तो को भूत कभी नही सताता । भूत का डर लगे तो लालटेन ले कर जाओ और रामनाम जपो । भूत-वूत जो होगा सव भाग जायेगा ।"

एकबार रात को दीवार पर एक बडी परछाई मैने देखी। मेरी ही परछाई थी। लबी दीख रही थी। इतना लबा आदमी मैने कभी देखा नही था। तो दौड कर मा के पास चला गया। मा ने कहा –"घबडाने की क्या जरूरत है, वह तो तेरा गुलाम है। तू जैसी आज्ञा करेगा, वैसा वह करेगा। तू खडा होगा तो वह खडा होगा, तू बैठेगा तो वह बैठेगा।" मैने सोचा कर के तो देखू, क्या होता है। तब मै बैठ गया, वह भी बैठ गया। मै खडा रहा तो वह भी खडा रहा। मै चलने लगा तो वह भी चलने लगा। मै लेट गया तो वह भी लेट गया। तो फिर ध्यान मे आया कि यह तो अपना गुलाम है, इससे क्या डरना। इस तरह मा ने भूत का डर श्रद्धा से और छाया का डर बुद्धि से निकाला।

भगवत्-स्वरूप की दीक्षागुरु

दरवाजे पर कोई भिक्षा मागने आता तो मा उसे कभी खाली हाथ लौटने नही देती। एक दिन एक हट्टा-कट्टा भिखारी आया। मा उसे भिक्षा देने लगी। मेने मा से कहा– यह तो अच्छा हट्टाकट्टा दीखता है। ऐसे लोगो को अगर भिक्षा देते जायेगे, तो देश मे आलस्य बढेगा। अपात्र को दान करते है तो उससे दान देनेवालो का भी अकल्याण होता है। यो कह कर मैने उसको गीता का **देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्**, यह श्लोक भी बता दिया। मा ने सुन लिया और शाति से कहा — "विन्या, पात्र-अपात्रता की परीक्षा करनेवाले हम कौन होते है ? हमारे लिए तो दरवाजे पर आये हुए हर व्यक्ति को परमेश्वर समझना और शक्तिभर देना, इतना ही रहता है। उसकी परीक्षा करनेवाली मै

कौन हू !" मा की इस दलील पर विन्या को आज तक दूसरी दलील सूझी नही।

हमारे पिताजी अक्सर किसी न किसी जरूरतमद विद्यार्थी को अपने घर पर रखते थे। उन दिनो एक गरीब विद्यार्थी हमारे घर पर रहता था। घर मे कभी कुछ ठडा खाना बच जाता तो मा खुद खा लेती थी या ज्यादा हो तो विन्या को दे देती थी। उस विद्यार्थी को तो वह हमेशा ताजी रोटी परोसती। मै रोज देखता था। एक दिन मैने मा से पूछा, "मा, तू तो हमे कहती है कि सबको समान दृष्टि से देखना चाहिए, परतु तेरा भेदभाव अभी तक गया नही। देख, उस लडके को तू ठडा खाना कभी परोसती नही, और मुझे परोसती है। इतना फरक तो तू भी करती है न ?"

सुनते ही मा ने जवाब दिया– "तेरी बात सही है। अभी मुझसे तेरे मे और दूसरे मे भेद होता है। यह तुझमे मेरी आसक्ति है, मेरे हृदय मे तेरे लिए पक्षपात है, तू मुझे आसक्ति के कारण पुत्रस्वरूप दीखता है, जबकि यह लडका मुझे भगवत्-स्वरूप दीखता है। जिस दिन तू मुझे भगवत्स्वरूप दीख पडेगा उस दिन यह भेदभाव खतम हो जायेगा।"

भोजन के समय हमेशा थोडी आहुति देने का रिवाज है। एक दिन मैने आहुति नही दी। मा ने पूछा, भूल गये ? मैने कहा, भूला तो नही हू, लेकिन पाच जगहो की आहुति का कुल पाव तोला चावल होता है। यानी तीस दिन का करीब सात तोला होगा। भारत मे तीन करोड ब्राह्मण है। तो सालभर मे तीन

करोड सेर चावल बेकार जायेगा । और देश मे इतने गरीब लोग है, उस हालत मे, तीन करोड सेर चावल बरबाद करना उचित नही । मा ने कहा, "ठीक है । तुम विद्वान हो, जो भी गणित करोगे ठीक ही होगा । लेकिन मेरा गणित दूसरा है । थोडा-सा चावल थाली के बाहर रखते है, तो मक्खिया उस पर बैठती है, तुम्हारे खाने पर नही बैठती । मक्खियो को खाने को मिल जाता है, भूतसेवा होती है ।" मा के कहने मे जो खूबी थी, वह मेरे ध्यान मे आ गयी ।

एकबार मेरे हाथ मे एक लकडी थी और मै उससे मकान के खभे को पीट रहा था । मा ने मुझे रोक कर कहा, "उसे क्यो पीट रहे हो ? वह भगवान की मूर्ति है । उसको क्यो तकलीफ देना चाहिए ?" मै रुक गया । यह जो भावना है खभे को भी नाहक तकलीफ न देने की, वह यहा की हवा मे है । सब भूतो मे भगवत्-भावना रखे, यह बात बिलकुल बचपन से मा ने पढायी ।

बचपन मे मै बहुत बीमार रहता था । इसलिए डाक्टर की दवा भी कुछ न कुछ चलती रहती थी । दवा पिलाते समय मा मुझसे एक श्लोक बुलवाती – **औषधं जाह्नवी-तोयं वैद्यो नारायणो हरि** । एक दिन मैने उसका अर्थ पूछा, तो उसने बताया कि डॉक्टर को भगवान समझो और वह जो कुछ औषध दे उसको गगाजल समझो । मैने कहा, मेरा अर्थ दूसरा है कि भगवान को वैद्य और गगाजल को दवा समझो । तब उसने कहा कि "तेरा अर्थ भी सही है, पर उसके लिए वैसी योग्यता चाहिए । आज तो तेरे लिए यही अर्थ है कि डाक्टर को भगवान समझो ।" ये दो भूमिकाए है और दोनो बातो मे तथ्य है ।

हमारी मा पढी-लिखी नही थी, परतु भक्तिविजय आदि पोथियो से उसका परिचय था। एक दिन भक्तिविजय पढते-पढते मैंने मा से कहा – ऐसे सत तो केवल प्राचीन काल मे ही हो सकते थे। उस पर मा बोली– "सत तो आज भी है। बस, हम उनको जानते नही हे। यदि सत-सज्जन नही होते तो फिर यह पृथ्वी टिकती किसके तप के आधार से ?" यह उसकी श्रद्धा थी, विश्वास था। इस विश्वास के आधार से उसने विन्या को जो शिक्षा दी, वह जीवनभर उसके काम आयी।

मा को पढना-लिखना विन्या ने ही सिखाया। एक दिन वह भक्तिमार्गप्रदीप पढ रही थी। एक-एक अक्षर लगा-लगा कर पढने मे, एक भजन पूरा करने मे उसको पद्रह मिनट लग गये। मै ऊपर के कमरे मे बैठा था, वहा से उसका पढना सुन रहा था। आखिर नीचे आ गया और उससे पूरा भजन पढवा लिया। फिर तो रोज थोडा-थोडा कर के सारी किताब पूरी कर दी।

मा गीताई का प्रेरणास्रोत

एक दिन सुबह मै ऊपर के कमरे मे वर्ड्सवर्थ की एक कविता पढ रहा था। उसने सुना तो कहा, – "विन्या, प्रात काल मे यह येस्-फेस ?" मैंने उसको कविता का आशय समझाया और कहा कि मै अच्छी किताब ही पढ रहा हू। तब वह बोली – 'मै जानती हू, तुम गलत किताब कभी पढोगे नही। और अग्रेजी मे भी अच्छी बाते लिखी हुई हो ही सकती है। अग्रेजी पढना बुरा नही, वह

भी पढना चाहिए । लेकिन प्रात काल मे तो सस्कृत पढना चाहिए ।" मतलव, दिन के दूसरे समय मे और पढा जा सकता है पर प्रात - काल की पवित्र वेला मे संस्कृत ही पढे ।

सस्कृत पढने की प्रेरणा उसी ने मुझे दी । मै जव हाईस्कूल मे पढने जानेवाला था, तव हमारे घर मे चर्चा निकली कि मुझे कौनसा विषय लेना चाहिए, 'सेकड लैग्वेज' (दूसरी भाषा) के तौर पर । पिताजी ने कहा, फ्रेच ली जाये । मैने कहा, ठीक है । मा को उसमे वहुत ज्यादा दिलचस्पी नही थी । लेकिन हमारी चर्चा उसने सुनी थी । शाम को स्कूल से वापस आया, खाने वैठा, तव वह मेरे पास वैठी । उसने पूछा, तुमने कौनसा विषय लिया है ? मैने कहा, फ्रेच । उस पर वह वोली, "व्राह्मण का लडका सस्कृत नही सीखेगा ?" मैने उसको इतना ही जवाव दिया कि 'व्राह्मण का लडका है तो संस्कृत सीख लेगा । सस्कृत स्कूल मे जा कर ही सीखनी चाहिए, ऐसी वात नही है ।' लेकिन मा के उस वाक्य का मुझ पर गहरा असर हुआ, जिसका वर्णन मै नही कर सकता । फिर मैने सस्कृत का अध्ययन किया । दस-वीस भाषाए तो मैने सीख ली है, लेकिन मराठी के अलावा सागोपाग ज्ञान मेरा सस्कृत का है । सस्कृत मैने स्कूल या कॉलेज मे नही सीखी, मै स्वयशिक्षक था ।

शायद 1915 की वात है । वडौदा मे एक प्रवचनकार आये थे । वे गीता पर प्रवचन करते थे । मा रोज रात को उनका प्रवचन सुनने जाती । दो-चार दिन के वाद कहने लगी — "विन्या, वे गीता पर वोलते है, मेरी समझ मे नही आता, मुझे एक मराठी गीता की पुस्तक ला दो ।" उन दिनो द्रविड शास्त्री की मराठी

गद्य अर्थ की पुस्तक उपलब्ध थी, जो उस वक्त ढाई आने मे मिलती थी। वह किताब मै मा के लिए ले आया। उसे पढने के वाद वह बोली कि यह तो गद्य है, मुझे पद्य ला दो। गद्य से पद्य पढना शायद सुलभ जाता होगा। वामन पडित का गीता का मराठी अनुवाद 'समश्लोकी गीता' उपलब्ध था। वह किताब मैने मा को दी। थोडे दिन के वाद वह वोली, यह तो कठिन है रे, समझ मे नही आता। मैने कहा, अव क्या किया जाये? इससे सरल अनुवाद है नही। तव वह झट से वोली – "तू ही क्यो नही करता मेरे लिए गीता का मराठी मे सरल अनुवाद? तू यह कर सकता है।" मा के इस विश्वास ने ही वावा से गीताई की रचना करवायी है।

वैराग्य की दाता

वचपन मे मै अपनी ही धुन मे रहता। ब्रह्मचर्य से रहना है इसलिए गद्दी पर नही सोना, जूता नही पहनना आदि नियम करता। एक दिन मा ने मुझे कहा – "विन्या! तुम वैराग्य का नाटक तो खूब करते हो, लेकिन अगर मै पुरुष होती तो वताती असली वैराग्य क्या होता है।" मतलव, स्त्रियो की गुलामी का सूचन उसमे था, अगरचे घर मे हमारे पिताजी की ओर से सबको पूर्ण स्वातन्त्र्य दिया हुआ था। वावा को विश्वास है, जैसा कि मा ने कहा वैसा सचमुच वह कर सकती। उसके तीनो वेटे ब्रह्मचारी निकले। वह कहती – "विन्या, गृहस्थाश्रम का अच्छी तरह से पालन करने से एक पीढी का उद्धार होता है, परतु उत्तम ब्रह्मचर्यपालन से बयालीस पीढियो का उद्धार होता है।" मा 36 साल की थी, तव हमारे

माता-पिता ने ब्रह्मचर्य का व्रत लिया, मा की प्रेरणा से। मा के जाने के बाद, यह बात खुद पिताजी ने मुझे बतायी थी।

मा 42 की उम्र मे गयी (24 अक्तू 1918)। मा तुकाराम-महाराज के भजन बहुत पढती थी। वे भी 42 मे गये थे, मा भी 42 मे गयी। उसकी मृत्यु के समय मै उसके पास था। मेरा ख्याल है, वह अच्छे समाधान मे गयी। मैने उससे पूछा था – 'समाधान है?' तो उसने कहा था – "मुझे पूरा समाधान है। एक तो, तू अब बडा हो गया, तेरी चिंता नही और तू अपने भाइयो को देखेगा इसलिए वह चिंता भी मुझे नही। और दूसरी बडी बात, दो महीने पहले मुझे भगवान के दर्शन हुए।" दो महीने पहले वह डाकोरनाथ का दर्शन कर के आयी थी। डाकोर बडौदा से चार घटे के रास्ते पर है, पर बारह साल मे वह वहा जा न सकी थी घर के काम के कारण। तो वह समाधान भी उसे मिल गया था।

मां के अतिम सस्कार की बात चली, तब मैने कहा, अतिम संस्कार ब्राह्मण के हाथ से नही होगे, मै करूगा। बाकी लोगो का इसके लिए विरोध था। पिताजी कहने लगे – तुम्हारी मा क्या पसद करती, वह सोचो। मैने कहा, मुझे विश्वास है कि ऐसे ब्राह्मणो के बजाय वह मेरे हाथ से ही अतिम सस्कार कराना पसद करती। लेकिन वह बात मान्य नही हुई। तो मै मा के अतिम सस्कार के समय स्मशान मे नही गया। और उस दिन से मैने वेदमाता का अध्ययन शुरू किया। स्नान कर के वेद पढने बैठ गया।

मा के कुछ वचनो का तो मेरे विचार पर इतना प्रभाव है कि उन वचनो को मैने 'विचार पोथी' मे दर्ज कर रखा है –

– विन्या, ज्यादा मत मागो। ध्यान मे रखो, थोडे मे मिठास है और ज्यादा मे वदमाशी।

– भरपेट अन्न और शरीरभर वस्त्र, इससे अधिक की जरूरत नही।

– देवादिको और साधुसतो की वातो के अलावा दूसरी कोई भी वात सुननी नही चाहिए।

– देशसेवा करेगे तो भगवान की भक्ति उसमे आ ही गयी, फिर भी थोडा भजन चाहिए।'

– अत्यज नीच नही होते। भगवान नही वना था विठ्ठामहार?

मा की उसके वेटे पर पूरी श्रद्धा थी और उस श्रद्धा ने ही मुझे वनाया है। मै घर छोड़ कर गया तव पिताजी मा को समझाते कि वह थोडे दिन मे वापस आ जायेगा। पर मा वैसा नही मानती थी। वह कहती थी कि "विन्या एकवार जो वोला, उसमे फर्क पडेगा नही।" आसपास की वहने मा से कहती कि आजकल के लडके होते ही ऐसे है, मा-वाप की परवाह नही करते है। पर मा उन्हे कहती, "मेरा विन्या नाटक-वाटक जैसी गलत वातो के लिए थोडे ही घर छोड कर गया है! उसके हाथ से कभी गलत काम नही होगा।" मेरा मानना है कि मेरी मा आज भी निरतर मेरे पास ही रहती है।

हे माता! तुमने मुझे जो दिया है वह और किसी ने भी नही दिया है। परतु मृत्यु के वाद तुम जो दे रही हो, वह तुमने भी जीवित होते हुए नही दिया। आत्मा के अमरत्व का इतना ही सवूत मेरे लिए पर्याप्त है।

☆☆☆

योगी पिताजी

पिताजी का सारा काम वैज्ञानिक ढग से चलता । उनका भोजन नियमबद्ध था । शाम को कटोरीभर दूध, गेहू की तीन रोटी और दस तोला सब्जी । सुबह नाश्ते मे एक पाव दूध । इसमे कभी फरक नही पडा । सुबह और शाम का आहार उन्होने खुद तय कर लिया था । दोपहर का खाना उन्होने मा पर छोड दिया था । मा जो बनायेगी वह ले लेते थे, लेकिन कितना खाना, यह उनका तय रहता था ।

पिताजी को मधुमेह की बीमारी थी । उन्होने अपने आहार के बारे मे सोचा और सब तरह की शर्करा छोडने का तय किया । दूध मे भी शर्करा होती है, इसलिए दूध के बदले दूध का छेना लेने लगे और गेहू वगैरह सब प्रकार का अनाज छोड दिया । सोयाबीन लेने लगे । सोयाबीन मे ज्यादा से ज्यादा प्रोटीन है, बीस फी सदी चरबी है और कारबोहाइड्रेट्स बहुत कम है । सोयाबीन उन्होने किस तरह बढाया, यह भी देखने लायक है । पहले दिन सोयाबीन का एक दाना लिया और उसके बदले मे गेहू के तीन दाने कम किये । दूसरे दिन सोयाबीन के दो दाने लिये ओर गेहू के छ दाने कम किये । यो करते-करते जितने गेहू के दाने लेते थे उसके चालीस प्रतिशत तक आ पहुचे । इस तरह करने मे डेढ महीना लगा । आखिर मे 15 तोला सोयाबीन तक पहुच गये । थोडी शाक-भाजी वे लेते थे । उनका रोग दूर हो गया ।

उनको ववासीर की व्याधि भी थी । एक दिन किसी के घर भोजन के लिए गये । वहा पूडी और करेले की सब्जी खायी । दूसरे दिन शौच साफ हुआ, तकलीफ नही हुई । तो सोचने लगे कि यह किस चीज का परिणाम है, पूडी या करेला का ? तो दूसरे दिन सिर्फ पूडी खा कर देखा । लाभ नहीं हुआ । फिर सिर्फ करेले की सब्जी खा कर देखा, तो मालूम हुआ कि वह पेट साफ होने के लिए अनुकूल है । वह लेने लगे । इस तरह उनका सारा शास्त्रीय और प्रयोगात्मक रहता था ।

मा जाने के बाद तीस साल वे जीये । तव करीव बीस साल वे केवल दूध पर ही थे । वीच-वीच मे सोयावीन्स भी लेते थे ।

मा की मृत्यु के बाद एकवार वालकोबा ने उनसे पूछा था – 'मा गयी तो उसका आप पर क्या असर हुआ ?' उन्होने जवाव दिया – "तुम्हारी मा गयी तो मेरा स्वास्थ्य जरा ठीक रहता है । मै सयम और विज्ञान से वरतनेवाला आदमी हू । फिर भी एक समय का भोजन मैने तुम्हारी मा के हाथ मे रखा था, वह जो खिलाती वह खा लेता । अच्छा-वुरा नही देखता । परतु अव अपने स्वास्थ्य के अनुकूल सोच कर जो चाहिए वह लेता हू ।"

बालकोबा ने जब यह वात मुझे कही तब मै विलकुल गद्‌गद हो गया । कितने वैराग्य का उत्तर है ! करीब-करीब तुकाराम-महाराज की भाषा । **बाईल मेली मुक्त झाली, देवे माया सोडविली** (पत्नी मर गयी तो वह मुक्त हो गयी और भगवान ने मुझे माया से छुडवा दिया) ।

पिताजी योगी थे, गणितज्ञ थे, शास्त्रज्ञ थे ।

वे रसायनशास्त्री थे । रग के विविध प्रयोग करते रहते थे । कपडे के छोटे-छोटे टुकडो को रगाते और फिर कौन रग कच्चा, कौन पक्का, कौन रग धूप मे टिकेगा, कौन पानी मे टिकेगा, कौन दोनो मे टिकेगा, इस तरह से तरह-तरह के प्रयोग करते रहते थे । उन छोटे-छोटे टुकडो की उन्होने एक पुस्तक भी तैयार की थी, और हरएक टुकडे के आगे उस रग का नाम लिख रखा था ।

एकबार मा ने कहा, ऐसे छोटे-छोटे टुकडे रोज रगाते हो, उतने मे तो मेरी एक साडी रग जाती और पहनने के काम मे आती ।

पिताजी कहने लगे – "यदि प्रयोग सफल हुआ तो उसमे मे एक नही, अनेक साडिया मिलेगी । परतु जब तक प्रयोग सफल नही हुआ, तब तक तो टुकडे ही हाथ मे रहेगे ।"

पिताजी ने छोटे-छोटे तौलिये तैयार किये थे, जिन पर अ से ज्ञ तक सब अक्षर घर मे ही छाप लिये थे । हम स्कूल की किताबें उसमे लपेट कर ले जाते थे । मेले के दिनो मे पिताजी के कहने पर विन्या उन रूमालो को बेचने जाता और चिल्लाता – एक-एक आने मे अ से ज्ञ अक्षरो का रूमाल लो .

बडौदे मे कपडे की पहली मिल शुरू हुई तब पिताजी को बहुत आनद हुआ । उस दिन घर आ कर वे बहुत ही आनद से हमको जानकारी देने लगे । वे इतनी खुशी मे थे कि उनकी वह खुशी देख कर मा कहने लगी कि विन्या के जन्म की वार्ता सुन कर भी आपको इतना आनद नही हुआ होगा । आधुनिक विचारको को मशीनरी का ऐसा आनद होता है कि नया युग आया, पुराने युग के औजार कव फेक देगे । जैसे पक्षी होता है, अडे के वाहर आया तो अव आसमान मे ऊची उडान मारेगा । उसी तरह पुराने औजारो के अडे मे हम वदी थे, अब वाहर जायेगे, ऊची उडान मारेगे, ऐसा

आधुनिक विचारक महसूस करते है । और हम हमारे पिताजी के मुख से रोजमर्रा यह सुना करते थे – 'भारत का आधुनिकीकरण होना चाहिए ।'

लेकिन, फिर भी जब गाधीजी ने ग्रामोद्योग सघ शुरू किया तब वह कल्पना हमारे पिताजी को बहुत पसद आयी । गाधीजी के निमत्रण से वे मगनवाडी आये थे, उन्होने उस उद्योग का निरीक्षण किया था और सलाह दी थी कि कागज का लगदा बनाने के लिए मशीन का उपयोग किया जाये । बाकी क्रिया हाथ से ठीक है । वह 1934-35 का समय था । उस समय हर क्रिया हाथो से करने पर जोर था, इसलिए उनकी सलाह पर उस समय अमल नही हुआ । लेकिन बाद मे वह चीज मान्य हुई । अब हाथ-कागज के कारखाने मे लगदा मशीन से ही बनता है ।

उस समय पिताजी ने मुझे एक पत्र लिखा था । दुर्दैव से वह पत्र अब कही मिलता नही । मुझे सभाल कर रखना चाहिए था, लेकिन मैने मेरे लिए आये हुए कोई भी पत्र सभाल कर नही रखे । उसी मे शायद वह भी गया । दस बारह पन्ने का पत्र था । बडे-बडे अक्षरो मे लिखा हुआ था । कागज के रग मे कुछ नीलापन था । पत्र मे लिखा था – "इस पत्र की सब क्रियाए मेरे हाथ से हुई है । कागज मैने बनाया । जो स्याही इस्तेमाल की है, वह मैने बनायी । जिस कलम से पत्र लिखा है, वह कलम मैने बनायी । और पत्र मैंने खुद लिखा है ।" इस तरह वह पत्र परिपूर्ण स्वावलबन का द्योतक था । आगे लिखा था – "कागज मे कुछ नीलापन रह गया है । वह निकाल सकते थे, लेकिन निकालने के लिए जो द्रव्य लगता है, वह बाहर से मगवाना पडेगा । इसलिए सोचा कि वह वैसा ही रहने दें, नीलापन खराब तो नही ।"

उसमे लिखा था कि इंग्लैड मे इस विपय पर करीव डेढ सौ साल पहले लिखी हुई कितावे है, उनका हमे अध्ययन करना पडेगा। उनका कहना था कि इग्लैड मे भी पहले हाथ-सूत ही इस्तेमाल करते थे। वाद मे मिले निकली। वीच का जो काल था, उसमे उन्होने अनेक प्रयोग किये। उस समय की कितावें हमारे लिए उपयोगी होगी। ऐसी पुरानी कितावे मिली तो वे खरीद लेते थे। इस ढग का अच्छा सग्रह उनके पास था।

पिताजी अत्यत स्वावलवी वृत्ति के थे। अपना कोई भी काम वे मा या वच्चो को नही करने देते। मा की मृत्यु के वाद भी कभी किसी से सेवा उन्होने ली नही। एकबार उनसे कहा कि वर्तन माजना, झाडू लगाना ऐसे कामो के लिए नौकर रख लीजिए, तो उन्होंने कहा – "कितना भी अच्छा नौकर हो, उससे कभी कुछ गलती हो ही जायेगी, तो फिर हम कुछ कटु वोल देगे। उससे वेहतर यही है कि अपना काम हम खुद करे। इसमे थोडा श्रम तो होता है, लेकिन किसी को दु ख देने का प्रसग नही आता।"

उनकी समयनिष्ठा और सयम अत्यत दृढ थे। वडौदा मे उनके एक मित्र थे, जिनके घर रोज शाम को वे शतरज खेलने जाया करते थे। रोज आधा घटा खेलना, उससे ज्यादा नही, उनका यह तय था। उस समय हमारी मा कर्नाटक अपने मायके गयी थी, तो मै पिताजी के उन मित्र के घर खाना खाने जाता था। उस दिन मै वहा था, जव पिताजी शतरज खेलने आये। सात वजे जाने का उनका तय था। सामने घडी रख कर ये खेलने वैठे और ठीक सात वजे उठ गये। कभी-कभी सात वजते और खेल पूरा नही होता। पिताजी उठ खडे हो जाते, तो मित्र कहते, अभी

तो न कोई जीता, न कोई हारा, पाच मिनट मे खेल पूरा हो जायेगा, खेल पूरा कर के ही जाइए। परतु पिताजी मानते नही थे, वे कहते, "खेल तो कल भी पूरा हो सकता है। इसको ऐसा ही छोड दो, कल यही से शुरू करेगे।" उनको कोई मना नही सकता था। उनके नियम मे कभी फरक नही पडा।

सगीत मे उनको बहुत रुचि थी। आखिर के तीस सालो मे उन्होने भारतीय सगीत का अध्ययन किया। एक मुसलमान गवैये के पास सगीत की शिक्षा प्राप्त की। चौदह-चौदह घटे रियाज करते थे। हमारा पुराना शास्त्रीय सगीत लुप्त न हो जाये, इसलिए अतिशय परिश्रम कर सगीत की दो किताबे — नादरखा का मृदगबाज और शेख राहतअली का ठुमरी-सग्रह, अपने खर्चे से प्रकाशित की। और भी आठ-दस पुस्तके प्रकाशित करनेलायक उनके पास थी।

मैने बचपन मे पिताजी की बहुत मार खायी है। वे पीटते थे, वह भी वैज्ञानिक ढग से। हड्डियो पर न लगे इस ढग से मारते थे। घूम कर रात को देरी से घर आना, मेरा रोज का ही कार्यक्रम था। भोजन कर के सोने से पहले पिताजी के पास हाजिरी लगती थी। दिनभर के कार्यक्रम मे मेरी कोई न कोई शरारत या गैरव्यवस्था उनकी नजर मे आ ही जाती थी। कभी उनकी किताब जगह पर नही रखी, कभी कपडे ठीक ढग से नही रखे, कभी किसी बात पर अपना आग्रह रखा, ऐसा कुछ न कुछ कारण मिल ही जाता और उनकी मार पडती। कभी-कभी मै मा से पूछता कि मा तुम मुझे क्यो नही मारती हो ? तो वह कहती, क्या उधर से तुझे कम मार पडती है कि मै उसमे और जोडू ?

परतु एक दिन कुछ दूसरा ही हुआ । रोज के जैसा घूम कर आया, भोजन हो गया, लेकिन पिताजी की ओर से बुलावा नही आया । मै तो इतजार मे था कि कब पिताजी बुलाते है, पर उन्होने बुलाया नही, सो गये । मैने सोचा, आज तो मार से छूट गये । लेकिन दूसरे दिन, तीसरे दिन, चौथे दिन ऐसा ही हुआ । उसके बाद उन्होने कभी मारा ही नही । आगे जब मैने मनुस्मृति पढी तब इसका रहस्य मेरे ध्यान मे आया । मनु ने कहा है – **प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रे मित्रवदाचरेत्** । उस दिन मैने सोलहवे मे प्रवेश किया था, तो मनु की आज्ञा के अनुसार उस दिन से उन्होने मुझे पीटना बद कर दिया । इसका मतलब, वे मारते थे, उसे शिक्षा का एक अनिवार्य भाग समझ कर ही मारते थे और जिस दिन मारना बद करना था, उस दिन से बद कर दिया ।

पिताजी गागोदे से जब बडौदा आये तब शुरू मे हम लोग मा के साथ गागोदे मे ही रहते थे । पिताजी बीच-बीच मे गागोदे आते थे तब हमारे लिए कुछ चीज ले आते थे । एकबार दीपावली की छुट्टियो मे वे घर आनेवाले थे । मा ने मुझसे कह रखा था कि पिताजी आयेगे तब तुम्हारे लिए कुछ मिठाई लायेगे । हम राह देख रहे थे । पिताजी आ गये तो मै मिठाई लेने दौडा । उन्होने मेरे हाथ मे एक पैकेट रखा । मै सोच रहा था कि मिठाई यानी गोल-गोल लड्डू-पेढे का पुडा होगा, लेकिन यह तो चौकोनी पैकेट था, तो मुझे लगा कि अदर बर्फी होगी । मैने ऊपर का कागज खोला तो अदर दो किताबे निकली – बालरामायण और बाल-महाभारत । मै वे किताबे ले कर मा के पास गया । मा ने किताबे देखी और उसकी आखो मे आसू आ गये, बोली, "पिताजी तुम्हारे

लिए जो मिठाई लाये है, उससे अच्छी मिठाई हो नही सकती ।”
मा का वह वाक्य मै कभी भुला नही और सचमुच, उस मिठाई का
मुझे ऐसा चस्का लग गया कि वह आज तक छूटा नही ।

सस्कार देने की उनकी विशेष पद्धति थी। कोई भी वात हो,
उमे वुद्धि के द्वारा समझाने की कोशिश करते । मा-पिता दोनो को
भोजन के समय थाली मे जूठन छोड दे तो पसद नही आता था ।
उनका कहना रहता कि भले ही थोडा कम खाओ, उसमे नुकसान
नही है । मा कहा करती थी कि ‘हरएक के नाम पर कितना अन्न
है वह लिखा रहता है , कम खाओगे तो ज्यादा दिन चलेगा,
ज्यादा दिन जीओगे ।’ कितना विलक्षण तत्त्वज्ञान है ! पिताजी
वुद्धि के आधार से समझाते । वे कहते, ‘खाने का स्वाद कहा जाता
है ? स्वाद का स्थान जिह्वा है, तो वहा ज्यादा देर रखो, एकदम
पेट मे मत ढकेल दो । यानी चवा-चवा कर खाओ ।’ चवा-चवा
कर खायेगे तो कम खाया जायेगा । विज्ञान की प्रक्रिया पिताजी ने
और उपनिषद का रहस्य मा ने वता दिया । दोनो वाते याद रखने
मे वडा सार है ।

अतिम दिनो मे वे वीमार हुए, लेकिन उन्होने अपने वेटो को
उसकी खवर नही दी । मेरे मित्र वावाजी मोघे वडौदा गये थे,
वे पिताजी से मिलने गये और उन्हे पता चला । वर्धा आने के
वाद उन्होने मुझे उसकी खवर दी । उन दिनो शिवाजी धुलिया मे
था । मैने उसको पिताजी के पास जाने को कहा । वह वडौदा गया
और पिताजी को आग्रहपूर्वक धुलिया ले गया । वहा शारदा
पूर्णिमा के दिन उनकी मृत्यु हुई (29-10-1947) ।

फिर अस्थि-विसर्जन की वात चली । गोदावरी नजदीक
(नासिक मे) थी, वहा विसर्जित करने की वात चली । उनके, अतिम

दिनो मे मै वहा पहुंच गया था। मैने कहा, पिताजी की अस्थियों पर गोदावरी का क्या हक है ? गोदावरी पानी है और हड्डिया मिट्टी है। पानी का मिट्टी पर क्या अधिकार ? मिट्टी पर तो मिट्टी का ही अधिकार हो सकता है। तेज तेज मे, वायु वायु मे, पानी पानी मे और मिट्टी मिट्टी मे मिल जानी चाहिए। इसलिए जब उनके शरीर का दहन हो गया और उसकी खाक हो गयी तब हमने, वही घर के अहाते मे एक गढा खोद कर उसमे राख डाल दी और गढे को बद कर दिया। ऊपर तुलसी का पौधा लगा दिया।

लोगो को लगा कि यह हमने बडा विचित्र काम किया। अस्थिया कही गगा मे प्रवाहित करनी चाहिए थी। परतु मैने तो वेद मे से यह अर्थ निकाला। वेद मे प्रार्थना है कि हे माता, मेरी लाश के लिए तू मुझे जगह दे। पश्चिम के टीकाकारो ने सवाल खडा किया कि पहले दफनक्रिया होती थी या दहनक्रिया ? इस तरह केवल ऐतिहासिक निष्कर्ष निकाले जाते है। सिर्फ अदाज की बात। परतु, वेद के एक ही सूक्त से दो अर्थ निकलते है। पहले लाश का दहन किया जाये और फिर जो राख होगी उसकी दफन-क्रिया की जाये। तो इस प्रकार वेद का आधार ले कर हमने पिताजी की अस्थिया नदी मे विसर्जित नही की, भूमि मे विसर्जित की। और पिताजी की समाधि पर एक पत्थर पर समर्थ रामदासस्वामी का वचन लिख दिया – **'अवघे चि सुखी असावे, ही वासना'** (सब सुखी हो, यह भावना)।

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा

विद्यार्थीदशा

हमारे पिताजी ने सोचा था कि लडके को स्कूल नही भेजेग, 'डायिंग' (रगाई) सिखायेगे । इसलिए पाचवी-छठी कक्षा तक उन्होने मुझे घर मे ही पढाया फिर वडौदा के कलाभवन मे भेजा । वहा उनकी वडी प्रतिष्ठा थी । सव मुझे 'भावे का लडका' कर के पहचानते थे । पर वहा मुझे प्रवेश न मिल सका । मुझे पूछा गया कि अग्रेजी कितनी सीखे हो ? मैने कहा, दो-तीन कक्षाओ तक । वहा तो इटरमिजिएट तक के लोग आये थे, तो मेरा नवर लगा नही । पिताजी ने सोचा, ठीक है, और सिखाये-पढायेगे । पढाते रहे । लेकिन देखा, लडका जितना पढता है, उससे ज्यादा घूमता है । तो फिर गणित के सवाल ज्यादा देने लगे, ताकि वैठ कर पढाई मे समय लगाये ।

मै क्या करता था ? गणित की किताव मे आखिर मे वारीक टाईप मे कठिन सवाल दिये होते है, वे हल कर लेता था, वाकी करता ही नही था । पिताजी देख लेते थे कि पढता-वढता नही है पर जानता है, तो कुछ वोलते नही थे । पिताजी के पास मै गणित सीखा, उसके वाद मैट्रिक तक मुझे गणित सीखना नही पडा । मैं

एक घटे मे गणित और अग्रेजी का मेरा अध्ययन पूरा कर लेता था और घूमने निकल जाता था। चार-चार, पाच-पाच घटे घूमता रहता था। आखिर लाचार हो कर पिताजी ने मुझे स्कूल मे डाला।

वहा भी मेरा धधा यही रहा। मै खुद घूमने जाता था और मित्रो को भी घर से खीच कर ले जाता था। उनको भी पढने नही देता था। मेरे मित्र बाबाजी मोघे मेरे डर से किसी मदिर मे छिप कर पढने बैठ जाते। मै उन्हे खोज निकालता और खीच कर ले जाता। उन दिनो मै एक वाक्य कहा करता था मराठी मे – "युनिवर्सिटीच्या भ्रमाचा भोपळा दरवर्षी फुटतो आणि त्यातून शेकडो बिया बाहेर पडतात (विश्वविद्यालय के भ्रम का कद्दू हर साल फुटता है और उसमे से सैकडो बीज (बी ए ज) बाहर आते है)।"

बचपन मे मुझे दो आदते थी – घूमना और पढना। जब भी समय मिलता घूमने चला जाता। मेरा मित्र रघुनाथ (धोत्रे) हमेशा कहता था कि तेरे पैर पर चक्र है। मा कहती, विन्या, तू पिछले जन्म मे निश्चित ही बाघ रहा होगा। एक तो तुझे दिनभर घूमने को चाहिए और दूसरे तेरी नाक बहुत तीव्र है, जरा-सी भी गध तुझे सहन नही होती। बडौदा के सब रास्ते मेरे परिचय के हो गये थे। घूमने के लिए मुझे कोई भी समय प्रतिकूल नही मालूम होता। दौडना भी पसद था, खूब दौडता था, कितना दौडा, इसका अदाज भी नही रहता था।

एक दिन रात को साढे बारह बजे मै दौडने लगा। बडौदा के राजमहल के पासवाली सडक पर दौड रहा था। तो सतरी उसके नियम के अनुसार जोर से चिल्लाया – 'हुकुम ऽऽ डर ऽऽऽ' ('हू कम्स देअर' का हिंदी अपभ्रश)। मैने ध्यान नही दिया और दौडता

ही रहा । थोडी देर के बाद वापस उसी रास्ते से लौटा । इस समय सतरी ने मुझे रोक लिया । और पूछा, काहे दौड रहे हो ? मैने कहा, व्यायाम के लिए दौड रहा हू । उसने कहा, रात के एक बजे कोई व्यायाम के लिए दौडता है ? जरूर तेरा चोरी करने का इरादा होगा । मैने जवाब मे पूछा – चोरी करनेवाला जिस रास्ते से आता है, क्या उसी रास्ते से वापस लौटता है ? तो वह चुप हो गया और उसने मुझे जाने दिया ।

एकबार दिवाली के दिनो मे मै यह देखने निकला कि किस घर मे दीया नही जला है । तीन दिन तक घटो गली-गली घूम कर देख लिया । पूरे बडौदे मे एक भी घर ऐसा नही मिला, जहा दीया न जला हो । मुसलमानो के घर मे भी दीये जलाये गये थे ।

फिर अलग-अलग मदिरो मे जाता । कमाठी बाग के पास ही एक मदिर था । उसका नाम मैने 'परीक्षेश्वर' रखा था । क्योकि उसके नजदीक ही हमारा कालेज था और परीक्षा के दिनो मे उस मदिर मे विद्यार्थियो की भीड लग जाती थी दर्शन के लिए और आशीर्वाद मागने कि हमे परीक्षा मे पास कर दो ।

स्कूल-कालेज मे मेरा ध्यान इधर ही रहता कि कब क्लास खतम होती है और मै बाहर पडता हू । एकबार क्लास मे एक शिक्षक हमसे कुछ लिखवा रहे थे । मै लिख नही रहा था, केवल सुन रहा था । शिक्षक ने देख लिया । लिखवाना पूरा होने के बाद उन्होने मुझे खडे हो कर अपनी नोट्स पढने के लिए कहा । मै तुरत खडा हो गया और नोटबुक हाथ मे ले कर पढना शुरू कर दिया, जो सुना था वह सबका सब बोल दिया । शिक्षक आश्चर्य मे पड गये, बोले, जरा तुम्हारी नोटबुक देखने दो । मैने कोरी नोटबुक उन्हे देते हुए कहा कि मेरा लिखा हुआ आप पढ नही सकेंगे ।

गणित तो मेरा खास विषय ही था। गणित के हमारे शिक्षक थे भी अच्छे। और उनका मेरे प्रति प्रेम था। एकबार वे एक कठिन सवाल विद्यार्थियो को समझा रहे थे। उन्होने बोर्ड पर पूरा सवाल हल कर लिया, लेकिन उसका जो अतिम परिणाम निकला, वह गणित की पुस्तक मे दिये हुए परिणाम से मिलता नही था। उन्होने बार-बार जाच की कि कहा गलती रह गयी है, पर कही भी गलती मिली नही। आखिर उन्होने मुझे बुलाया और कहा कि तुम जरा इसको जाच कर देखो। मैने कहा, मैने पहले ही जाच लिया है, पुस्तक मे दिया हुआ परिणाम गलत है, आपका सही है। तब वे निश्चित हो गये।

उन शिक्षक का विद्यार्थियो पर प्रेम था और बहुत आस्था-पूर्वक अपना विषय सिखाते थे। एकबार मैने उनको गणित का एक सवाल पूछा। बहुत कठिन सवाल था। उन्होने उस पर सोचा और कहा कि इसका जवाब मै कल सोच कर दूगा। इतने सालो से मै विद्यार्थियो को पढा रहा हू, लेकिन आज तक किसी ने ऐसा सवाल पूछा नही। मै वर्षो से गणित सिखाता आया हू इसलिए आधी नीद मे भी सिखा सकूगा, इतनी आदत हो गयी है। परतु तुम्हारा सवाल अलग प्रकार का है, इसका जवाब मै कल दूगा। उनके इस जवाब से उनकी बहुत गहरी छाप मुझ पर पडी।

गीता-प्रवचन मे मैने लिखा है कि स्कूल मे विद्यार्थी गणित का सवाल हल नहीं कर सकता है तो शिक्षक उसके गाल पर तमाचा मारता है। अब गाल पर तमाचा मारने और गणित के सवाल का क्या सबध है ? गाल पर तमाचा मारने से रक्ताभिसरण जोरो से होगा और दिमाग तेज चल कर गणित का सवाल हल करने मे मदद होगी, ऐसा है ? मै जब छोटा दस साल का था, तब जिस स्कूल मे

पढता था वहा एक शिक्षक थे, जो वच्चो को वहुत पीटते थे। उन्होने शायद मान ही रखा था कि छडी के आधार से ही विद्या आयेगी। उनके पास लवी छडी रहती थी और वे उसे ताले मे वद कर रखते थे।

वच्चो को उनका यह पीटना पसद नही था, लेकिन करे क्या ? आखिर एक दिन मैंने किसी तरह वह ताला खोला और उस छडी को दूर फेक दिया। शिक्षक आये और देखा, जगह पर छडी नही थी। वे समझ तो गये कि यह किसी लडके की शरारत है, लेकिन बोले कुछ नही। दूसरे दिन दूसरी छडी ले आये। मैने उसे भी फेक दिया। तीसरे दिन तीसरी छडी लाये। वह भी फेक दी। तव तो वे वहुत ही नाराज हो गये और वच्चो से पूछने लगे कि किसकी यह शरारत है। वच्चे चुप थे, क्योकि वे मेरे पक्ष के थे। शिक्षक को ख्याल आ गया कि किसकी यह शरारत होगी, और आखिरकार उन्होने ढूढ निकाला।

अव इस शरारत के लिए सजा देनी थी। उन्होने विन्या को पाच-सौ उठ-वैठके लगाने की सजा दी और दूसरे एक लडके को गिनने के लिए खडा कर दिया। वह तो मेरा मित्र ही था। वह गिनने लगा— एक, दो, तीन, चार, सात, दस फिर थक कर वैठ गया। लेकिन मै वैठके लगा ही रहा था। आराम कर के वह फिर गिनने लग जाता। आखिर उसने जाहिर कर दिया कि पाच-सौ वैठके हो गयी। पर इधर मै भी अपने मन मे गिन रहा था, 123 वैठके ही हुई थी, तो मैने अपना काम चालू ही रखा। शिक्षक ने कहा, वैठ जाओ। मैने कहा, अभी पूरी पाच-सौ नही हुई, एक-सौ तेईस ही हुई है। शिक्षक के ध्यान मे आ गया कि यह लडका झूठा नही है, वे बोले, 'तू समझता नही, तेरी 18 वैठके ज्यादा ही हुई है।' मै

बैठ गया, लेकिन बात मेरी समझ मे नही आयी। मै सोचता ही रहा उस पर, तब ध्यान मे आया कि 500 यानी 5 + 100, 5 × 100 नही। उस हिसाब से मेरी 18 बैठके ज्यादा हुई थी। यह उन शिक्षक की दयाबुद्धि थी। तब से यह आकडा मै कभी भूलता नही।

एक दफा अग्रेजी के शिक्षक ने एक निबध लिखने के लिए कहा – 'ए डिस्क्रिपशन आफ मैरेज सेरीमनी' (विवाह-समारोह का वर्णन)। अब मै तो कभी किसी 'मैरेज सेरीमनी' मे जाता नही था, तो क्या लिखूगा उसका वर्णन ? लेकिन शिक्षक ने तो लिख कर लाने को कहा था। तो मैने लिख डाला कि किस प्रकार एक जवान ने शादी की, उससे वह कैसे दु खी हुआ और दूसरो को भी कैसे दु खी किया। ऐसा एक काल्पनिक चित्र पेश कर दिया। शिक्षक ने देखा तो उस पर एक टिप्पणी लिख दी कि यद्यपि पूछे गये प्रश्न का यह जवाब नही है, फिर भी बुद्धि चलायी है और दस मे से सात मार्क्स दे दिये।

बडौदा की सेट्रल लायब्ररी उस वक्त भारत की बडी लायब्ररियो मे से एक मानी जाती थी। छुट्टी के दिनो मे रोज दोपहर को खा-पी कर मै लायब्ररी मे जा बैठता। दो-तीन घटे सहज ही निकल जाते। ग्रथपाल ने मुझे खुद किताबे देखने की इजाजत दे दी थी। गरमी के दिन रहते थे, इसलिए मै कमीज निकाल कर खुले बदन बैठता था।

एक दिन वहा काम करनेवाले भाई मेरे पास आये और बोले, आपका ड्रेस 'डिसेट' (शोभनीय) नही है। कपडे कैसे पहनने चाहिए, यह समझना चाहिए। मैने कहा, भगवान ने मुझे जो समझ-शक्ति दी है, उसके मुताबिक मै कपडे पहनता हू। यो कह कर मै पढने मे मग्न हो गया।

ग्रथालय के प्रबधक एक गोरेसाहब थे। लायब्रेरी की तीसरी मजिल पर बैठते थे। उनके पास शिकायत पहुची कि नीचे एक विद्यार्थी खुले बदन पढने बैठता है और कहने पर भी किसी की सुनता नही है। मुझे तुरत ही ऊपर बुलाया गया। गोरेसाहब शर्ट-पटलून पहने थे। सिर पर पखा घूम रहा था। उनका मिजाज उन दिनो अग्रेजो का साधारणत जैसा रहता था वैसा था। मुझे उनके सामने खडा कर दिया। वे मेरे से बडे थे, इसलिए उनके सामने खडे रहने मे मेरी कोई इज्जत जाती नही थी। उन्होने मेरे खुले बदन की ओर निर्देश कर के पूछा, क्यो, सभ्यता जानते हो या नही?

मैने कहा, मै तो अपने देश की सभ्यता जानता हू। उन्होन पूछा, क्या है तुम्हारे देश की सभ्यता? मैने कहा, जो मनुष्य खुद कुर्सी पर बैठे और दूसरे को खडा रखे, उसे हमारे देश मे असभ्य मानते है।

मेरे जैसे लडके की यह हिम्मत देख कर वे खुश हो गये और मुझे बैठने के लिए एक कुर्सी दे दी। फिर मैने उनसे कहा कि हमारे देश मे और एक सभ्यता है कि जब बहुत गरमी होती है तब बदन खुला रखना चाहिए। उन्होने मेरी बात मान ली। फिर मै क्या-क्या पढता हू, सब जानकारी पूछ ली और मुझे किताबो के बारे मे जो भी सहूलियते चाहिए थी, सब देने के लिए लायब्रेरियन को सूचना दे दी।

एकबार, मै स्कूल मे पढता था तब मित्रो के साथ शिवाजी-जयती मनायी थी। मित्रो ने पूछा कहा मनायेगे? मैने कहा, स्वातत्र्यप्रेमी शिवाजी की जयती किसी कमरे मे नही मनायी जा सकती, हम पहाड पर जायेगे या जगल मे चले जायेगे और आकाश के नीचे समारोह मनायेगे।

जयती मनाना तय हो गया, लेकिन दूसरी एक अडचन थी। उस दिन स्कूल को छुट्टी नही थी। मैने सुझाया कि इतिहास मे शिवाजी के बारे मे पढाया जाता ही है तो हम इतिहास की क्लास छोड देगे, उस समय जगल मे चले जायेगे। सब जगल मे गये और खूब श्रद्धापूर्वक जयती मनायी। वापस लौटते समय चर्चा चली कि कल स्कूल मे शिक्षक इसकी सजा देगे, तो क्या करना है? मैने कहा कि कल हम सब चार-चार आना अपने साथ लायेगे और सजा का जुर्माना भर देगे।

दूसरे दिन इतिहास की क्लास मे शिक्षक ने पूछा कि तुम लोग कल कहा गये थे? हमने कहा, शिवाजी-जयती मनाने जगल गये थे। शिक्षक ने पूछा, क्या शिवाजी-जयती स्कूल मे नही मनायी जा सकती थी? मैने तुरत कह दिया – "स्वातत्र्यप्रेमी शिवाजी की जयती गुलामखाने मे नही मनायी जा सकती है।" शिक्षक नाराज हो गये, बोले, तुम सब पर जुर्माना होगा। हम सबने तुरत जेब से चार-चार आने निकाल कर उनके सामने रख दिये।

इस प्रकार विशेष दिनो पर विशेष विषयो पर चर्चा-वादविवाद चलता ही रहता था। एक साथ घूमने जाना और जोर-जोर से चर्चा करते हुए घूमना, यह भी चलता था। हम दस-पद्रह मित्र थे। इन सबकी लोकसेवा करने की इच्छा थी, तो हमने इसको कुछ स्वरूप देने का सोचा और हमारा एक **'विद्यार्थी-मडल'** बना (1914 मे)। शिवाजी-जयती, दासनवमी ऐसे उत्सव बाकायदा मनाना शुरू किया। अलग-अलग विषयो पर अध्ययन करते, अध्ययन-चर्चा चलाते, भाषण देते आदि। सत-साहित्य, देशप्रेम, बडे व्यक्तियो के चरित्र, चारित्र्य-विकास, ऐसे विषय रहते।

पहले तो किमी के घर इकट्ठा हो कर ये कार्यक्रम करते थे, वाद मे एक कमरा ही ले लिया था, जिसका किराया चार-पाच आने था। शुरुआत मे तो मै हर माह मा से उतना पैसा ले कर किराया भर देता था। वाद मे हर कोई चदा देता था। फिर हमने वहा अच्छी लायव्ररी भी वनायी थी। चरित्र, प्रवासवर्णन, इतिहास, विज्ञान आदि लगभग 1600 पुस्तके इकट्ठा हुई थी। वहा मेरा मैझिनी पर एक भाषण हुआ था, जो हमारे मित्रो के खूव ध्यान मे रह गया। अधिकतर भापण मेरे ही होते थे और मै पूरी गभीरता और ईमानदारी से भापण देता था। मेरा सार्वजनिक जीवन इसी विद्यार्थी-मडल से शुरू हुआ और मै मानता हू वाद मे (1935 मे) ग्राम-सेवा-मडल की स्थापना की, उसका सूत्र इस विद्यार्थी-मडल से ही जुडा हुआ है। विद्यार्थी-मडल मे जिन विषयो का अध्ययन किया, भापण दिये, उन सवका लाभ तो मुझे मिला ही, परतु मुख्य लाभ यह हुआ कि उनमे से कई साथी मेरे जीवनसाथी वन गये, जिन्होने मुझे आखिर तक छोडा ही नही। आगे, 1917 मे इसके वार्पिक-उत्सव पर मै वडौदा आया था और तव मैने यह विचार रखा कि हिंदी भाषा का प्रचार करना चाहिए। मैने गाधीजी को लिखा था कि मेरा विश्वास है कि सस्था यह काम करेगी। आपने हिंदी-प्रचार का जो काम शुरू किया है, उसमे वडौदा की यह सस्था काम करने के लिए तैयार रहेगी।

वडौदा मे हमारे घर के नजदीक एक वृद्ध भाई रहता था, जो दिनभर तकुए पर जनेऊ का सूत कातता रहता। वह वूढा हम मित्रो के लिए विनोद का विषय वन गया था। उसे देख कर हम कहते – "देखो, यह है पुराने जमाने का खडहर!" परतु, हम मे से करीव सभी लोग आगे वापू के पास पहुचे और चरखे पर सूत कातने लगे।

☆☆☆

दस साल की उम्र मे मैने ब्रह्मचर्य का सकल्प किया। घर छोडने का विचार तो वचपन से ही मेरे दिमाग मे था। इसकी प्रेरणा तीन महापुरुष दे रहे थे। एक थे गौतम वुद्ध, जिन्होने घर छोडा था। दूसरे घर छोडनेवाले थे महाराष्ट्र के सत रामदास। वह दूसरा आकर्षण था। और तीसरे थे जगद्गुरु शकराचार्य। वुद्ध अपनी पत्नी और पुत्र को त्याग कर घर के वाहर निकल पडे। रामदास विवाहवेदी से सब छोड कर चले गये। और शकराचार्य ने तो विवाह किया ही नही, आठ साल की उम्र मे ब्रह्मचर्य के सकल्प के साथ घर से निकल पडे। ये तीन व्यक्ति मेरे सामने रहते थे। इसलिए कभी न कभी घर छोडूगा, ऐसी मुझे अदर से प्रेरणा थी। और जैसे विवाह तय हो जाने के वाद लडकी का चित्त पहले ही मायके को छोड कर ससुराल पहुच जाता है, वैसे मेरा चित्त घर से निकल चुका था। वाहर दुनिया मे जाने के वाद अपना घडा कच्चा साबित न हो, इसका पूरा ख्याल मुझे था और उस दृष्टि से अलग-अलग तरह से मैं अपनी खूब तैयारी कर रहा था। अध्ययन और चिंतन, ये दो बातें तो चलती ही रहती थी, अलावा शरीर को भी पक्का बनाने की कोशिश साधना की दृष्टि से अपनी बुद्धि के अनुसार करता रहता।

बचपन मे मेरे हाथ मे एक किताब आयी, जिसमे ब्रह्मचारी के धर्म बताये थे। उसमे मनु के कुछ उद्धरण भी दिये थे। ब्रह्मचारी के लिए कुछ चीजे निषिद्ध बतायी थी। **वर्जयेत् उपानच्छात्रधारणम्।** ब्रह्मचारी को जूता नही पहनना चाहिए और छाता इस्तेमाल नहीं

करना चाहिए । तीसरी चीज बतायी थी, गद्दा नही इस्तेमाल करना चाहिए । मैने गद्दे पर सोना छोड दिया । जूता पहनना और छाता इस्तेमाल करना भी छोड दिया । गद्दी और छाता छोडने से तो मेरा कोई नुकसान नही हुआ, लेकिन बडौदा की कडी धूप मे जूता न पहनने से आखे बिगडती गयी । भरी दुपहरी मे तारकोल के रास्तो पर घटो घूमता रहता । मनु के जमाने मे सभव है, विद्यार्थी आश्रम मे ही रहते होगे और जूते की जरूरत नही होती होगी । बचपन मे इस बात की मन मे बहुत तीव्रता थी कि शरीर को कसना है ।

खाने-पीने के भी मेरे नियम थे, जिनका मै बराबर पालन करता था । विवाह आदि प्रसगो पर कही खाने के लिए नही जाता था । हमारी एक बहन थी, बचपन मे ही उसकी शादी करा दी गयी । उसकी शादी मे मै भोजन के लिए नही गया था । मैने मा से कह दिया कि मै शादी का भोजन नही करूगा । मा कुछ बोली नही, मेरे लिए अलग पका कर मुझे खिला दिया । फिर मुझसे कहा, 'विन्या, शादी के भोजन मे जो मिष्टान्न आदि होता है, वह तुम मत खाओ, लेकिन वहा का दाल-चावल खाने मे क्या उज्र होना चाहिए ? वही दाल-चावल तुम्हारे लिए मै यहा अलग पकाती हू, तो वहा का दाल-चावल खाने मे क्या दोष है, मेरी समझ मे नही आता ।' यह मा की कुशलता थी, पहले तो विरोध किये बिना अलग पका कर मुझे खिला दिया और फिर समझाया । तब मैने वहा का दाल-भात खाना मजूर कर लिया ।

अपने विचारो को कविता मे बिठाने का मुझे शौक था । मै रचना करता । एक-एक कविता बनाने मे दो-दो, तीन-तीन घटे – कभी तो दिन – लग जाते । फिर उसको गाता, कुछ कमी महसूस हुई तो ठीक कर लेता और जब पूरा समाधान हो जाता कि कविता अच्छी बन गयी, तब उसको अग्निनारायण मे स्वाहा कर देता । एकबार

ठढ के दिनो मे चूल्हे के पास बैठ कर तप रहा था और अपनी कविताए जला रहा था। मा ने देखा और पूछा, क्या जला रहे हो ? मैने बताया तब वह कहने लगी कि मैने तो तुम्हारी कविता देखी नही। फिर कभी-कभी कविता बन जाने के बाद उसको सुना देता, फिर जला देता। काशी जाने के बाद गगा के किनारे बैठ कर इसी प्रकार कविता बनाता और समाधान हो जाने के बाद गगा मे विसर्जित करता।

बडौदा मे हमारे घर के नजदीक एक कुम्हार का घर था। उसका एक गधा था। रात मे जब मै पढने बैठता तब चिल्लाने लगता। उससे मुझे तकलीफ होती। खास कर जब मै गणित के सवाल हल करने बैठता, तब तो उसके चिल्लाने से बिलकुल त्रस्त हो जाता। मै इसका इलाज ढूढने लगा। उसी वक्त एक घटना घटी। हमारे कॉलेज मे कुछ विदेशी सगीतकार आये थे, उनका सगीत का कार्यक्रम रखा था। मै सुनने गया, लेकिन मुझे उसमे बिलकुल रस नही आया, सारा कर्णकटु लगा। अब वह भी सगीत है, वहा के तमाम लोग उसको पसद करते है, पर मेरे कानों को उसकी आदत न होने के कारण मुझे वह मीठा नही लगा। तब मेरे मन मे विचार आया कि गधे के रेकने से मुझे तकलीफ होती है, परतु दूसरे गधो को क्या होता होगा ? उनको तो उससे आनद ही होता होगा। तो फिर उसे बुरा क्यो मानना चाहिए ? उस दिन से उस आवाज को अच्छा मानने का अभ्यास मैने शुरू कर दिया। जब भी गधे की आवाज सुनायी देती तब मै अपना पढना बद कर उस आवाज को मीठा मानने का प्रयत्न करने लगता। कभी-कभी उसके साथ एकरूप होने के लिए उसके साथ वैसे ही चिल्लाने लगता। फिर तो मुझे उस आवाज मे 'करुणा' सुनायी देने लगी और मैने उसे 'गर्दभराग' नाम दे दिया।

बचपन मे मेरा शरीर बहुत कमजोर था। कभी-कभी जोरदार सिरदर्द होता था। जब मुझे वह असहनीय हो जाता तब मै सोचने लगता और जोर-जोर से कहता भी रहता –"जो सिर दुख रहा है वह मै नही हू, मै दुखनेवाला सिर नही हू, मै सिर नही हू, मै सिर से अलग हू।" उससे मुझे बहुत लाभ होता। 'मै देह नही हू' इसका अभ्यास करने का मुझे आकर्षण था।

बचपन मे मैने योगशास्त्र पढा था। उसमे वर्णन था कि समाधिस्थ पुरुष कैसे बैठता है। मैने वैसा आसन लगा कर बैठना शुरू किया। मै कल्पना करता था कि मेरी समाधि लगी, लेकिन बीच मे ही चित्त दौड जाता था। बडौदा मे गरमी बहुत ज्यादा रहती है। तो मैने नल के नीचे बैठ कर आसन लगाना शुरू किया। ऊपर से बिलकुल बूद-बूद पानी सिर पर गिरता था, तो मै समझता था कि मै भगवान शिव हू और मेरी समाधि लग गयी है। ऐसा नाटक करते-करते कभी-कभी चित्त इतना शात हो जाता था, लगता था कि समाधि लग गयी। शास्त्र के मुताबिक वह समाधि थी या नही, पता नही, परतु आनद बहुत आता था। मन मे किसी प्रकार की कोई वासना रहती नही थी।

महाराज सयाजीराव गायकवाड ने बडौदा के एक बगीचे मे बुद्ध भगवान की एक मूर्ति स्थापित की थी। उस बाग को ज्युबिली गार्डन कहते थे। परतु मैने उसे नाम दिया था – 'बुद्धोद्यान'। मुझे बुद्ध की प्रतिमा का बहुत आकर्षण था, क्योकि मेरे मन मे गृहत्याग के विचार थे। वह विचार मुझे समर्थ रामदासस्वामी के जीवन और उपदेश से मिला था। शकराचार्य के विचारो का परिचय हुआ तो वह विचार दृढ होता गया। इसका नित्य दर्शन मुझे भगवान बुद्ध की मूर्ति मे होता था, जो अपना राज्यवैभव और सासारिक

सुखो को तुच्छ समझ कर जवानी मे ही वाहर निकल पडे । वुद्धोद्यान मे एकात नही रहता , फिर भी वहा जा कर मै मूर्ति को निरखता रहता, उसका ध्यान करता । उसका मुझ पर वहुत असर हुआ ।

घर छोडने से पहले मैने अपने मैट्रिक आदि के सारे सर्टिफिकेट जला दिये । पूरे रूप से रस्सी काट देना चाहता था । मा ने देखा तो उसे वडा दु.ख हुआ, वोली, क्यो जला रहे हो ? मैने कहा, मुझे अव इनकी जरूरत नही है । मा ने कहा, आज जरूरत नही है, फिर भी पडे रहते तो तेरा क्या विगडता ? मैने जवाव दिया, मुझे कोई नौकरी नही करनी है ।

घर छोडने का विचार मेरे मन मे पहली वार 1912 मे आया । परतु चार साल तक मै अपने को निश्चय की कसौटी पर कसता रहा । फिर जो निश्चय किया सो किया, उसमे पीछे मुड कर नही देखा । मै काशी जाना चाहता था । उसके दो हेतु थे । एक तो मैने पश्चिम का शिक्षाशास्त्र पढा था, सतो के जीवन पढे थे और मेरी मान्यता हुई थी कि प्रवास किये विना शिक्षण पूरा नही होता । काशी तो ज्ञान का भडार माना गया था, खास कर के सस्कृत और शास्त्रो का । तो वह एक मनशा थी कि वहा जा कर शास्त्रो का अध्ययन करू । और दूसरा, काशी से हिमालय और वगाल, दोनो के रास्ते थे, और इन दोनो का मुझे आकर्षण था ।

घर मे माता-पिता के लिए मेरे मन मे बहुत आदर था, भक्ति थी । मा का तो इतना आकर्षण था कि आगे, उसकी अतिम वीमारी मे (1918 मे) मै उसके पास आया था और उसकी मृत्यु के वाद उसकी दो चीजे अपने साथ ले गया था । एक उसकी साडी, वह साडी वहुत कीमती थी, क्योकि वह उसकी शादी की साडी थी । और दूसरी चीज थी अन्नपूर्णादेवी की मूर्ति, जिसकी पूजा मा रोज

[पिताजी – श्री नरहर शम्भुराव भावे]

*   *   *
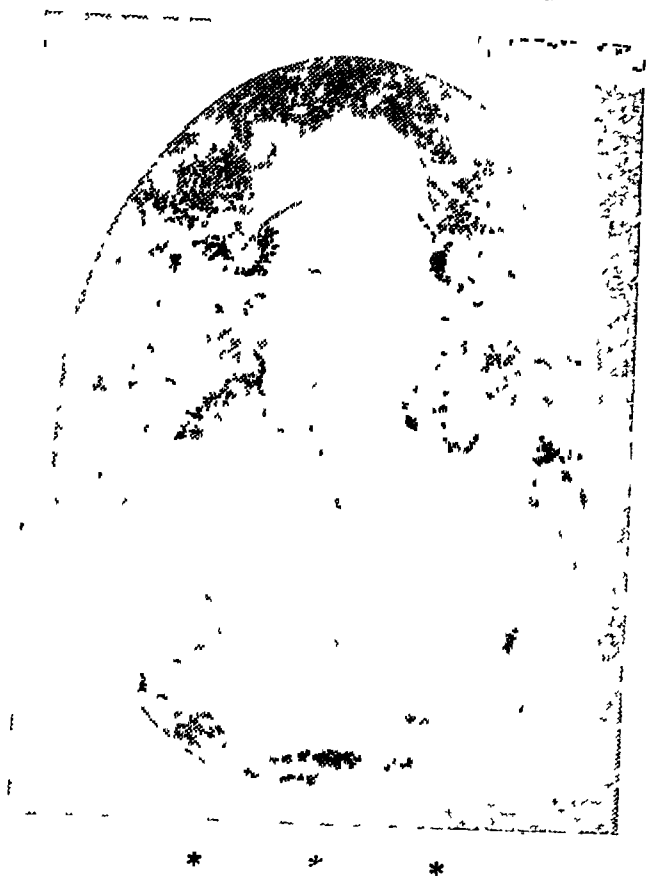
"मा कभी फोटो नहीं खिचवाने देती, कहती, 'फोटो खिचने से मनुष्य की तेजोहानि होती है।' एक बार मैंने पूछा, पिताजी तो खिचने देते हैं। तो हसते-हसते बोली, 'उनके पास बहुत तेज है।' इसलिए मा की एक भी फोटो नहीं है।"

किया करती थी । साडी का उपयोग मै सिरहाने के तकिये के रूप में करता था । बहुत दिन वह साडी मेरे पास थी । फिर आगे खादी की बात चली । साडी खादी की तो नही थी । तो क्या किया जाये ! मै गया साबरमती पर और स्नान कर के उस साडी को साबरमती के पानी मे विसर्जित कर दिया ।

अन्नपूर्णादेवी की मूर्ति कुछ दिन मैने अपने पास रखी । कभी-कभी ध्यान के लिए उसका उपयोग करता था । यो तो ध्यान ही पूजा है । लेकिन मूर्ति को नित्य पूजा की आदत थी, तो मै सोचता था कि ऐसी कोई स्त्री मिले, जो मा की तरह मूर्ति की नित्य पूजा करे, तो उस भक्तिवाली स्त्री को मूर्ति सौप कर मै नि शक हो जाऊ । ऐसी स्त्रिया तो बहुत मिल सकती थी, लेकिन मेरी भक्ति काशीबेन गाधी के लिए थी । मैने उनसे पूछा कि यह मेरी मा की पूजा की मूर्ति है, उसे आप लेगी और उसकी कायम पूजा करेगी ? उन्होने बहुत भक्तिपूर्वक और प्रीतिपूर्वक उसका स्वीकार किया ।

माता-पिता के प्रति मेरी इतनी भावना होते हुए भी, वह आसक्ति मुझे घर छोडने से रोक न सकी । ब्रह्मजिज्ञासा इतनी तीव्र थी कि उसके आगे बाकी सब फीका था ।

उन दिनो इटर की परीक्षा के लिए बबई जाना पडता था । हम दो-चार मित्र एकसाथ बबई जाने निकले । लेकिन मै अपने दो मित्रो (श्री बेडेकर तथा श्री तगारे) के साथ बीच मे सूरत स्टेशन उतर गया और काशी की ट्रेन मे बैठ गया । मैने पिताजी को पत्र लिख दिया – "मै परीक्षा देने के लिए बबई जाने के बदले अन्यत्र जा रहा हू । आप विश्वास रखे, मै कही भी जाऊ, मेरे हाथ से अनैतिक काम कभी नही होगा ।" वह दिन था, जिस दिन मै घर से निकला, 25 मार्च 1916 ।

युक्त :

द्वितीय खंड : सन् 1916 से 1951

यो तो एक परमेश्वर की ही हस्ती है, दूसरी कोई हस्ती नहीं । एक परमेश्वर का नाम हम लेते है, फिर उसके साथ दूसरा कोई नाम लेने को नही रहता । लेकिन परमेश्वर ने इतना व्यापक रूप धारण कर रखा है कि उसके अदर असख्य सत्पुरुष समाये है — जैसे दाडिम (अनार) के फल मे असख्य दाने होते है । हमारे भक्तिपूर्ण हृदय को भास होता है कि सतो का भी अपना मौलिक स्थान होता है ।

मारग में तारण मिले, सत राम दोई
सत सदा शीश ऊपर, राम हृदय होई

मीराबाई का यह वचन मुझ पर भी ठीक-ठीक लागू होता है । मुझे भी मार्ग मे दो ही तारण मिले । भगवान की कृपा से एक का आशीर्वाद मेरे सिर पर है और दूसरे का स्थान मेरे हृदय मे रहा है ।

संत-चरण-रज-सेवन

काशीवास

ब्रह्मसाक्षात्कार की जिज्ञासा से मैने घर छोडा और काशी पहुचा । काशी के दुर्गाघाट पर एक मकान मे तीसरी मजिल पर रहने के लिए जगह मिली । मेरे दो साथी मेरे साथ थे । उनमे से एक तो थोडे ही दिनो मे वापस घर चला गया । दूसरा मेरे साथ रहा ।

यद्यपि मै भूतकाल का स्मरण बहुत सारा भूलता हू और भविष्य की चिता छोड कर वर्तमान मे रहता हू, फिर भी भूतकाल का प्रभावी स्मरण टाला नही जा सकता । मैने अपने इस साथी को काशी मे खोया, यह काशी की मुख्य याद है । उसका नाम था बेडेकर, लेकिन उसे हम 'भोला' कहते थे । वह मन से सरल, बेफिक्र और शरीर से अच्छा, मजबूत था । मुझ पर उसकी निरपेक्ष प्रीति थी । वह तैर कर गगाजी को पार कर के फिर वापस किनारे पर आता था । मै तो केवल देखता ही रहता था ।

एकबार बडौदा मे केडगाव के नारायणमहाराज आये थे । भोला ने कहा, चलो, मिलने चलेगे । मै अक्सर बिना पूछताछ किये किसी को सत मान कर मिलने नही जाता था । पर भोला का बहुत आग्रह रहा, तो उसके साथ गया । वहा काफी लोग थे । मैंने कहा, हम दूर से ही देखेगे और सुनेगे । किसी ने सवाल पूछा, महाराज,

आप कहा से आये ? तो उन्होने जवाब दिया, नारायण का वास सर्वत्र है। यह सुनते ही मैने भोला का हाथ पकडा और वहा से निकल पडा। भोला पूछने लगा, तुम क्यो मुझे खीच कर लाये ? मैने कहा, तुमको यही सुनना था तो मै तुमको कब का उपनिषद सुनाता। कहा से आये, इस सादे प्रश्न को वैसा ही सीधा जवाव देना चाहिए था कि अमुक गाव से आया हू। तू तो भोला ही है।

काशी मे दो ही महीनो मे भोला बीमार हो गया। और बीमारी एकदम गभीर होती चली गयी। उसको वहा के रामकृष्ण मिशन के अस्पताल मे रखा। दीख रहा था कि वह अब दुरुस्त नही होगा। वह भी इस बात को समझ गया था। मैने उससे पूछा कि क्या घर पर खबर पहुचानी है ? तो कहने लगा कि क्या जरूरत है ? घर के साथ अब क्या सबध ? परलोक जाने पर कभी न कभी खबर पहुचेगी ही। फिर बात चली कि मृत देह को अग्नि कौन देगा ? मैने पूछा, तुम्हारी क्या इच्छा है ? तो कहने लगा, तुम ही देना। मैने कहा, ठीक है। दूसरे दिन उसकी मृत्यु हुई।

मेरे लिए यह पहला ही प्रसग था। कभी स्मशान मे जलाने के लिए गया नही था। मेरे पास (स्कूल मे पढाता था उसके) चार रुपये बचे थे। उतने मे चाहे जितनी स्मशानयात्राए हो सकती थी। मुख्य तो लकडी का खर्च करना था। गगा के किनारे मन्त्रोच्चारण के साथ अतिम विधि की। दूसरे दिन, जिस अन्नछत्र मे हम भोजन के लिए जाते थे वहा चर्चा चली कि इन लोगो ने भडाग्नि दी। मैने सबको जवाब दिया, गगा की महिमा अपार है, उसके किनारे भडाग्नि दी, तो कौआ भी स्वर्ग मे चला जायेगा, तो यह तो अब सीधा स्वर्ग मे जायेगा। इस तरह से हमारे भोला की विदाई हुई।

वहा प्रारभ मे हम एक अन्नछत्र मे सुबह का भोजन करते थे। वहा दक्षिणा के तौर पर दो पैसे मिलते थे। शाम को मै उसमे से एक पैसे का दही लेता था और एक पैसे के दो शकरकद। उस पर मेरा चल जाता था।

वहा एक अग्रेजी पढानेवाला खानगी स्कूल था। मैने देखा, वहा के शिक्षक को भी अग्रेजी नही आती थी। मैने वहा रोज घटा-दो घटा पढाना शुरू किया। उन्होने पूछा, कितनी तनख्वाह चाहिए? मैने कहा, महीने के दो रुपये। उन्होने पूछा, इतना बस है? मैने कहा, भोजन मुझे अन्नछत्र मे मिलता है, इसलिए इससे ज्यादा की मुझे जरूरत नही। दो महीने पढाया, तो चार रुपये मिले।

काशी की म्युअर सेट्रल लायब्ररी मे सस्कृत-हिंदी के काफी धर्मग्रथ थे। थोडे ही दिनो मे मैने वहा के लगभग सभी ग्रथ देख लिये। घटो वहा पढने मे बिताता था। मुझे सस्कृत भी सीखनी थी। मै एक पडित के पास गया और पूछा कि सस्कृत सीखने के लिए कितने दिन लगेगे? उसने कहा, बारह साल। मैने कहा, इतना समय मेरे पास नही है। उसने पूछा, कितने साल मे सीखना चाहते हो? मैने कहा, दो महीने मे। वह मेरी तरफ देखते ही रहा।

रोज रात को एक घटा गगा के किनारे बिताता था। कभी ध्यान करता। कभी जोरदार चिंतन चलता। कभी कविताए बनाता और फिर उसको गगा मे छोड देता।

वहा गगा के किनारे रोज ही पडितो की चर्चाए चलती, सभाए होती रहती। कभी-कभी मै वह सुनने बैठ जाता। एक दिन एक सभा मे द्वैती और अद्वैतियो के बीच विवाद चला और अद्वैतियो की जीत हुई। मै खडा हो गया और बोला, अध्यक्षमहाराज, मुझे कुछ बोलना है। अध्यक्ष को लगा, लडका है, बोलेगा कुछ, उन्होने मुझे

बोलने की इजाजत दी। मैंने कहा, आप लोगो ने अभी देखा कि अद्वैतियो की कैसी हार हुई। लोग देखने लगे कि यह क्या उलटा बोल रहा है! मैंने आगे कहा, जो अद्वैती है, वह विवाद के लिए खडा ही कैसे रहेगा? जो द्वैतियो के साथ चर्चा मे उतरते है, वे पहले से ही हारे हुए है। अद्वैती के मन मे द्वैत रहता है तभी तो विवाद का सवाल खडा होता है। इतना कह कर मै वहा से निकल आया।

एकबार मुझे ताले की जरूरत पडी। मै खरीदने गया। अन्नछत्र की ओर जानेवाले रास्ते पर ही दुकान थी। मैने ताले की कीमत पूछी। दुकानदार ने दस आना बतायी। मैने ताला खरीद लिया और उसे दस आने दे कर कहा, आप दस आने माग रहे है इसलिए दस आने दे रहा हू, परतु वास्तव मे इस ताले की कीमत दो आने है, आप बहुत ज्यादा माग रहे है। उस समय तो दुकानदार कुछ बोला नही। मै रोज ही उस रास्ते से जाता, परतु अपने रास्ते निकल जाता, उसकी तरफ देखता नही। दो-एक दिन के बाद उसने मुझे बुलाया और कहा, उस दिन मैने आपसे ताले के ज्यादा पैसे लिये थे, मेरी गलती हुई। उसने उतने पैसे मुझे वापस दे दिये। इसका मुझ पर बहुत असर हुआ और उसके लिए आदर लगा।

घर छोड कर निकला तब मैने अपने साथ एक पुस्तक ली थी – ज्ञानेश्वरी। ज्ञानेश्वरी पर मेरी बहुत श्रद्धा थी। एक दिन रात को स्वप्न आया। तो दूसरे दिन से मेने ज्ञानेश्वरी को सिरहाने ले कर सोना शुरू किया। तो स्वप्न आना बद हो गया।

इस तरह दो माह और कुछ दिन काशी मे रहना हुआ। और फिर मेरे पैर बापू की ओर मुडे।

☆☆☆

सत्याग्रहाश्रम

छोटा था तभी से मेरा ध्यान बगाल और हिमालय की ओर खिचा हुआ था। मैं हिमालय और बगाल जाने के सपने सजोया करता था। एक ओर बगाल की 'वदेमातरम्' की क्राति की भावना मुझे खीचती थी तो दूसरी ओर हिमालय का ज्ञानयोग मुझे खीचता। हिमालय और बगाल, दोनो के रास्ते मे काशी नगरी पडती थी। कर्मसयोग से मै वहा आ पहुचा था। पर न मै हिमालय गया, न बगाल ही। लेकिन अपने मन से दोनो जगह एकसाथ पहुच गया। मैं गाधीजी के पास गया और उनके पास मुझे हिमालय की शाति और बगाल की क्राति मिली। वहा जो पाया, उसमे क्राति और शाति, दोनो का अपूर्व सगम हुआ था।

जब मै काशी आया तो वहा बापू के एक व्याख्यान की चर्चा चल पडी थी। वहा के हिंदू विश्वविद्यालय मे बापू का यह व्याख्यान हुआ था। उस व्याख्यान मे उन्होने अहिसा के बारे मे बहुत-सी बाते बतायी थी। मुख्य बात यह थी कि निर्भयता के बिना अहिसा चल ही नही सकती। मन ही मन हिसा का भाव रखने की अपेक्षा खुल कर हिसा की जाये तो भी वह कम ही हिसा मानी जायेगी। यानी मानसिक अहिसा ही मुख्य अहिसा है। और वह बिना निर्भयता के आ नही सकती। उस भाषण मे उन्होने उन राजा-महाराजाओ की भी कस कर आलोचना की थी, जो तरह-तरह के आभूषणो से सज कर आये थे। मै वहा पहुचा तब इस ऐतिहासिक व्याख्यान को एक महीना हो चुका था, फिर भी नगर मे उसकी शोहरत थी। जब

मैने वह व्याख्यान पढा तो कितनी ही शकाए और जिज्ञासाए उठ खडी हुईं। इसलिए मैने बापू के नाम पत्र लिखा, जिसमे अपनी जिज्ञासाए उनके समक्ष प्रस्तुत की थी। उन्होने उस पत्र का मुझे बहुत ही अच्छा जवाब दिया।

दस-पद्रह दिनो के बाद मैने पुन उनसे शंकाए पूछी। तब उनका एक कार्ड आया कि अहिंसा के बारे मे जो जिज्ञासाए की है, उनका समाधान पत्राचार से नही हो सकता। इसके लिए जीवन से ही स्पर्श होना चाहिए। इसलिए कुछ दिन के लिए मेरे पास आश्रम मे आइए और रहिए तो धीरे-धीरे बातचीत हो सकती है। उनका यह जवाब कि **"समाधान बातो से नहीं, जीवन से होगा"** मुझे जच गया।

उस जवाब के साथ बापू ने आश्रम का एक नियम-पत्रक भी भेजा था, जो मेरे लिए और भी आकर्षक था। उस समय तक किसी भी सस्था का वैसा पत्रक मेरे पढने मे कभी आया नही था। उसमे लिखा था – 'इस आश्रम का ध्येय विश्वहित-अविरोधी देश-सेवा है और उसके लिए हम निम्नलिखित व्रत आवश्यक मानते है।' नीचे सत्य, अहिसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह, शरीरश्रम आदि एकादश-व्रतो के नाम लिखे थे। मुझे यह बहुत ही आश्चर्यकारक लगा। मैने बहुत-से इतिहास पढे, पर कही भी यह देखने को नही मिला कि देश के उद्धार के लिए व्रतो का विधान आवश्यक माना गया हो। ये सारी बाते योगशास्त्र मे, धर्मग्रथ मे, भक्तिमार्ग मे आती है, लेकिन देशसेवा के लिए भी आवश्यक होती है, यह बात उस पत्रक मे थी। इसलिए मेरा मन उसकी ओर आकृष्ट हो गया। मुझे लगा, यह पुरुष ऐसा है, जो देश की राजनैतिक स्वतत्रता और

आध्यात्मिक विकास, दोनो साथ-साथ साधना चाहता है। मुझे यही पसद था। वापू ने लिखा था, 'तुम यही चले आओ।' और मै वापू के पास पहुच गया।

वह दिन था 7 जून 1916। मै अहमदावाद स्टेशन पर उतरा। मेरे पास बहुत सामान था नही, तो खुद ही उठा लिया और रास्ता पूछते-पूछते पैदल ही चल पडा। एलिस ब्रिज के रास्ते से चल कर सुबह आठ बजे (कोचरव) आश्रम पहुचा। वापू को खबर पहुचायी गयी कि एक नये भाई आये है। उन्होने कहा, ठीक है, नहा-धो कर मुझसे मिलने आये। नहा-धो कर मै उनके पास पहुच गया। वे सब्जी काट रहे थे। मेरे लिए यह भी एक नया ही दृश्य था। सब्जी काटने-बनाने का काम भी राष्ट्रनेता करते है, यह मैने कभी सुना नही था। उनके प्रथम दर्शन मे ही मुझे श्रम का पाठ मिला। वापू ने एक चाकू मेरे हाथ मे भी दे दिया। मैने तो उससे पहले कभी यह काम किया नही था। पर उस दिन पाठ मिला। मेरी यह प्रथम दीक्षा थी, जो वहा मिली।

फिर सब्जी काटते हुए ही उन्होने मेरी पूछताछ की। फिर कहा, "यदि तुम्हे यहा का रहन-सहन अच्छा लगता हो और अपना जीवन तुम सेवा-कार्य मे लगाना चाहते हो तो यहा रहो। मुझे इससे खुशी होगी।" मेरी जिज्ञासा उन्होने परख ली थी। वोले, "लेकिन तुम बहुत दुर्बल दीखते हो। आत्मज्ञानी साधारणत शरीर से कमजोर रहते है, परतु तुम तो वीमार दीखते हो। आत्मज्ञानी कभी बीमार नही पडते।" यह दूसरा पाठ! वापू की यह वात मै कभी भूल नही सकता।

उस दिन सब्जी काटते-काटते वापू से जो वाते हुई सो हुई, उसके बाद सिर्फ काम की वाते होती थी। वाकी समय मै अपने

काम मे खोया रहता था । बापू की अनेको से बाते होती रहती थी, वह सुनता रहता था । बापू जानते थे कि लडका सद्भावना से आया है । लेकिन बाकी सबका ख्याल था कि यह एक जड जैसा है । एक दिन एक भाई के साथ बाते करते हुए बापू बोले, 'यह तो गौण भाषा है ।' तब मैने कहा, 'नही, यह भक्ति की भाषा है ।' बापू ने कहा, 'हा, यह बात ठीक है । ज्ञान की भाषा और भक्ति की भाषा ।' यह थे बापू कि मेरे जैसे बच्चे की बात को भी महत्त्व दे कर स्वीकार कर लेने की नम्रता उनके पास थी । तब सबको लगा कि इसको भी बोलना आता है ।

इसमे लोगो का भी कोई दोष नही था । उस समय मैं बहुत रूक्ष मनुष्य था । 21 साल का छोकरा था । मेरे मित्र जानते है कि जिसे सभ्यता, शिष्टता कहते है, वह मुझमे बहुत ही कम थी । किसी के साथ बातचीत भी न करता था । काम मे लगा रहता, या फिर अध्ययन, ध्यान, चिंतन आदि मे ।

एक दिन बडी फजर उठ कर मै अपने कमरे मे उपनिषद बोल रहा था । आश्रमवासियो ने सुना तो उन्होने बापू को खबर दी कि यह तो सस्कृत जानता है । फिर बापू ने पूछताछ की । बीच-बीच मे वे मुझे प्रार्थना मे कुछ कहने के लिए बताने लगे । ऐसा चला ।

बापू ने मुझे गढने का तय ही कर डाला था । लोगो को मेरे पास भेजते । वर्धा जाने के बाद सेवाग्राम मे जो भी जिज्ञासु आता उसे बापू पूछते कि आप विनोबा से मिल आये ? न मिले हो तो जरूर मिल लेना चाहिए । एक दिन बापू ने एक भाई को मेरे पास भेजा । वे भारत के एक प्रख्यात क्रातिकारी थे । बापू ने कहा था इसलिए वे पैदल चल कर पवनार तक आये थे । मै खेत मे खोद रहा था । नजर उठा कर देखता हू तो ये भाई सामने खडे है । मैने

पूछा, कैसे आना हुआ ? उन्होने जवाव दिया – ऐसे ही । दर्शन करने आया हू । फिर क्या ? दूसरी कोई बातचीत नहीं हुई । कुछ ही देर मे मेरे हाथ पुन काम मे लग गये । नजर काम पर चली गयी । वे भाई खडे रहे, पर कुछ बोले नही । वापस जा कर उन्होने बापू से शिकायत की कि आपने मुझे कैसे आदमी के पास भेज दिया । मेरे साथ उसने कोई बात तक नही की । बापू समझ गये । बोले, आप गये तब वह क्या करता था ? जमीन खोद रहे थे । तव बापू बोले, तो फिर उसमे नाराज होने की क्या बात है ? विनोबा अपना काम कर रहा था, तब वह आपके साथ बोलता कैसे ? भले मानुस, आपको पता नही कि किसी से मिलने जाना हो, तो पहले से समय माग लेना चाहिए । इस प्रकार बापू ने उनको तो समझा दिया, लेकिन बाद मे जब मुझसे मिले तो मुझे फटकारा कि भले आदमी, कोई आता है तो उससे मिलना और उसके साथ बातचीत करना भी एक प्रकार का काम ही है । इस तरह उनके हाथो मै धीरे-धीरे गढा गया हू । मै स्वभाव से एक जगली जानवर जैसा रहा हू । बापू ने मुझे पालतू जगली जानवर बनाया । उनके चरणो मे बैठ कर ही मै असभ्य मनुष्य से सेवक बना हू । बापू के साथ रह कर मुझे सेवा की लगन लगी । मै सेवा को भगवान की पूजा का साधन और जनता को अपना स्वामी मानता हू ।

बापू ने मेरी कसौटी की होगी या नही, मै नही जानता । लेकिन अपनी बुद्धि से मैने उनकी बहुत परीक्षा कर ली थी । और यदि उस परीक्षा मे वे कम उतरते तो उनके पास मै टिक नही पाता । मेरी परीक्षा कर के उन्होने मुझमे चाहे जितनी खामिया देखी होगी या देखते होगे, तो भी वे मुझे अपने साथ रखते थे । परतु अगर मुझे उनकी सत्यनिष्ठा मे कुछ भी कमी, न्यूनता या खामी दीखती तो

मैं उनके पास टीक नही पाता। मैने ऐसे बहुत-से महापुरुष देखे है, जिन्हे अपने बारे मे ऐसा भास होता है कि वे मुक्त पुरुष है, पूर्ण पुरुष है। फिर भी ऐसे किसी का मुझे आकर्षण नही हुआ। लेकिन सदैव अपने को अपूर्ण माननेवाले बापू का ही मुझे अनोखा आकर्षण रहा। वे हमेशा कहते थे कि मैं अभी पूर्ण सत्य से बहुत दूर हू। मुझ पर जितना असर बापू का पडा, उतना पूर्णता का दावा करनेवाले दूसरे सज्जनो का नही पडा।

मैं बापू से मिला और उन पर मुग्ध हो गया, सो उनकी आतर्बाह्य एकता की अवस्था के कारण। फिर, कर्मयोग की दीक्षा तो मुझे बापू से ही मिली। गीता मे तो वह कहा ही है, पर उसका साक्षात्कार हुआ बापू के जीवन मे। गीता के कर्मयोग का प्रत्यक्ष आचरण मैने बापू मे देखा। गीता मे स्थितप्रज्ञ लक्षण आते है। यह वर्णन जिसको लागू हो ऐसा स्थितप्रज्ञ देहधारी खोजने पर बडे भाग्य से ही मिलेगा। लेकिन इन लक्षणो के निकट पहुचे महापुरुष को मैने अपनी आखो से देखा।

बापू के पास आश्रम का जो कुछ जीवनस्वरूप अपनी दृष्टि से देखा, उससे मुझे बहुत कुछ मिला। परिणामस्वरूप मुझे अनुभव हुआ कि जीवन एकरस और अखड है। बापू कभी अपने को गुरु के तौर पर नही मानते थे। और अपने को किसी के शिष्य के तौर पर भी नहीं मानते थे। इसी तरह मैं भी न किसी का गुरु हू, न किसी का शिष्य, यद्यपि मै गुरु के महत्त्व को बहुत मानता हू। गुरु ऐसे हो सकते है, जो केवल स्पर्श से, दर्शन से अथवा वाणीमात्र से शिष्य का उद्धार कर सके। इतना ही नही, यह भी मानता हू कि केवल सकल्प से भी शिष्य का उद्धार करनेवाले पूर्णात्मा गुरु हो सकते है। फिर भी यह मै कल्पना मे ही मानता हू। वस्तुस्थिति मे एसे

किसी गुरु को मैं नही जानता । लेकिन गुरुत्व की यह भाषा छोड मैं इतना ही कहूगा कि मुझे बापू के आश्रय मे जो कुछ मिला, वही अब तक मेरे काम मे आ रहा है । बापू का आश्रय मेरे लिए दृष्टिदायी मातृस्थान है ।

एकबार बापू से बाते हो रही थी । खान अब्दुल गफारखा की मदद मे जाने की बात चल रही थी । तब उन्हे लगा कि ऐसा भी हो सकता है कि वापस लौटना न हो । इसलिए उन्होने मुझे बात करने के लिए बुलाया । लगभग 15 दिन तक हमारी बाते चली । दो-तीन दिन तो वे सवाल पूछते गये और मै जवाब देता गया । फिर एक दिन मैने उनसे ईश्वरविषयक अनुभव के बारे मे छेडा । मैने कहा, "आप 'सत्य ही परमेश्वर है' कहते है सो तो ठीक है, लेकिन उपवास के समय आपने कहा था कि आपको अदर की आवाज सुनायी दी है, यह क्या बात है? इसमे कोई रहस्य गूढता है?"

उन्होने जवाब दिया, "हा, इसमे कुछ ऐसा है जरूर । यह बिलकुल साधारण बात नही । मुझे आवाज साफ-साफ सुनायी दी थी । मेने पूछा, मुझे क्या करना चाहिए । तो जवाब मिला, उपवास करना चाहिए । मैने पूछा, कितने उपवास करना चाहिए? जवाब, इक्कीस ।"

इसमे एक शख्स पूछनेवाला था और दूसरा जवाब देनेवाला था । यानी बिलकुल कृष्णार्जुन सवाद ही था । बापू तो सत्यवादी थे, इसवास्ते यह कोई भ्रम तो हो नही सकता । उन्होने कहा कि साक्षात् ईश्वर ने मुझसे बात की । इसलिए फिर मैने पूछा, "ईश्वर का कोई रूप हो सकता है?"

उन्होने कहा, "रूप तो नही हो सकता, लेकिन मुझे आवाज सुनायी दी थी ।" मैने कहा, यह कैसे? रूप अनित्य है तो आवाज

भी अनित्य है । फिर भी आवाज सुनायी देती है, तो फिर रूप क्यों नही दीखता ? फिर मैने उनसे दुनिया मे दूसरो को हुए ऐसे गूढ अनुभव की बाते कही । अपने भी कुछ अनुभव कहे । ईश्वर-दर्शन क्यो नही होता, इस बारे मे भी बाते हुईं । आखिर उन्होने स्वीकार किया कि यद्यपि मुझे आवाज सुनायी दी, रूप का दर्शन नही हुआ, वह हो सकता है ।

जब बापू की आत्मकथा प्रकाशित हो रही थी, तब एकबार उन्होने मुझे उसके बारे मे पूछा । मैने बताया, आप सत्यवादी है, मिथ्या तो कुछ लिखेगे नही, इसलिए किसी का नुकसान तो नही होगा, लेकिन फायदा क्या होगा, मालूम नही, क्योकि जिसको जो लेना है, वही लेता है । बापू बोले, तुम्हारे जवाब से मुझे जो चाहिए था, वह मिल गया । 'नुकसान नही होगा' उतना बस है । जहा तक फायदे का ताल्लुक है, —वे गुजराती मे बोल रहे थे – **"आपणां बधां कामोनु परिणाम मींडुं छे"** (हमारे सभी कामो का परिणाम शून्य है), उन्होने हवा मे उगली से बडा गोल कर के दिखाया और आगे कहा – **"आपणे तो सेवा करी छूटीए"** (हमे तो सेवा कर छूट जाना है)। यह बात बिलकुल मेरे हृदय मे बैठ गयी । बापू का सारा का सारा तत्त्वज्ञान इसमे आ जाता है ।

☆☆☆

एक साल की छुट्टी

सन् 1917 की बात है । मै बापू से एक वर्ष की छुट्टी ले कर बाहर चला गया था । उसका एक कारण तो था स्वास्थ्य-सुधार और दूसरा अध्ययन । प्रथम वाई मे रह कर संस्कृत का अध्ययन करने का विचार था । ऐसे तो गीता पर मेरा जो प्रेम था उस कारण घर

मे ही अपने-आप ही मेरे मित्र गोपालराव की मदद से मेने सस्कृत का अध्ययन शुरू कर दिया था। अब वेदात और दर्शन का अध्ययन करना था। वाई मे मुझे इसका उत्तम अवसर मिला। वहा नारायण-शास्त्री मराठे नामक एक आजन्म ब्रह्मचारी विद्वान वेदात तथा दूसरे शास्त्र पढाने का काम करते थे। उनसे उपनिषद वगैरह पढने का 'लोभ' हुआ और वहा कुछ अधिक समय रह गया।

वहा मैने उपनिषद, गीता, ब्रह्मसूत्र और शाकरभाष्य, मनुस्मृति, पातजल योगदर्शन, इन ग्रथो का अध्ययन किया। अलावा इसके, न्यायसूत्र, वैशेषिक सूत्र, याज्ञवल्क्यस्मृति, ये ग्रथ पढ गया। फिर ज्यादा पढने का मोह नही रहा। लगा कि मै अब अपने-आप अधिक पढ सकूगा।

दूसरा काम था स्वास्थ्य सुधारना। उसके लिए पहले मैने दस-बारह मील घूमना रखा था। बाद मे छ से आठ सेर अनाज पीसना शुरू किया। फिर तीन-सौ सूर्यनमस्कार शुरू किये। इससे स्वास्थ्य सुधर गया।

आहार भी मै सोच-विचार कर लेता था। पहले छ महीनो तक नमक खाता था, पर बाद मे छोड दिया। मसाला वगैरह बिल-कुल नही खाया और न खाने का व्रत ले लिया। दूध शुरू किया। कई प्रयोग करने के बाद साबित हुआ कि दूध के बिना अच्छी तरह काम नही चल सकता। एक महीना केवल केले, नीबू और दूध पर रहा। ताकत कम हो गयी। तो खुराक निश्चित कर ली — दूध डेढ सेर (आठ तोला), रोटी दो (बीस तोले जवार की), केला चार-पाच, नीबू एक (जब मिल सके)।

स्वाद के लिए और कोई पदार्थ खाने की इच्छा नही होती थी, फिर भी हमेशा लगता रहता कि यह आहार भी काफी अमीराना

है। रोज का खर्च कुल ग्यारह पैसे होता था। केला और नीबू चार पैसे, जवार दो पैसे, दूध पाच पैसे।

यद्यपि यह सारा मैं स्वास्थ्य की दृष्टि से कर रहा था, उसमे एकादश-व्रतो के पालन की दृष्टि भी थी। मैं आश्रम से दूर था, पर सत्याग्रह-आश्रम के निवासी की हैसियत से ही अपना आचरण रखने की मेरी पूरी कोशिश थी। जैसे अस्वाद-व्रत का ख्याल रखा था, वैसे ही अपरिग्रह का भी। उस समय मेरे पास बहुत कम सामान था। लकडी की थाली, कटोरा, आश्रम का एक लोटा, धोती, कबल और पुस्तके, बस, इतना प्रपच रखा था। कुर्ता, कोट, टोपी वगैरह इस्तेमाल न करने का व्रत लिया था। करघे पर बुने हुए कपडे ही काम मे लेता था। इसलिए विदेशी का मेरे साथ कोई वास्ता ही नही रहता, तो स्वदेशी व्रत का पालन भी हो जाता था। और मुझे विश्वास है कि अपनी जानकारी के अनुसार सत्य-अहिंसा-ब्रह्मचर्य, इन तीन व्रतो का परिपालन मैंने अच्छी तरह किया।

यह सब करते हुए सेवा की दृष्टि से दूसरे कुछ काम भी कर रहा था। गीता का एक नि शुल्क वर्ग चलाया। उसमे छ विद्यार्थियो को पूरी गीता अर्थ के साथ पढायी। दूसरे एक वर्ग मे चार विद्यार्थियो को ज्ञानेश्वरी के छ अध्याय पढाये। दो विद्यार्थियो को नौ उपनिषद पढाये। मै खुद हिंदी अच्छी तरह नही जानता था, लेकिन हिंदी-प्रचार की दृष्टि से रोज विद्यार्थियो को साथ ले कर हिंदी अखबार पढने का कार्यक्रम रखा था।

वाई मे 'विद्यार्थी मडल' नाम की एक सस्था स्थापित की। उसमे वाचनालय की सहायता के लिए पीसने का एक वर्ग रखा। उसमे पद्रह विद्यार्थी और मै खुद पीसता था। जो लोग चक्की से पिसवा लाते, उनका काम दो सेर पर एक पैसा ले कर करना और

पैसा वाचनालय को देना । बडे साहूकारो के बच्चे भी इसमे भरती हुए थे । वाई पुराने विचार का स्थान होने के कारण और इस वर्ग मे हाईस्कूल मे पढनेवाले सारे ब्राह्मणो के लडके होने के कारण सभी ने हमारी मूर्खो मे गिनती कर ली । फिर भी यह क्लास दो महीने चली । वाचनालय मे 400 पुस्तके जमा हो गयी ।

इसी साल मैने लगभग 400 मील का पैदल प्रवास किया । ज्ञान-प्राप्ति की दृष्टि से महाराष्ट्र के चार-पाच जिलो मे मै पैदल घूमा था । घूमने के पीछे मेरा हेतु था किले देखना (रायगढ, सिहगढ, तोरणगढ आदि इतिहासप्रसिद्ध किले देखे), सतो के स्थानो का दर्शन करना, अच्छे लोगो से मिलना और लोक-निरीक्षण करना ।

उस समय मै लोगो के पास जा कर गुप्त ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करता था । किसी के घर मे पुराने ग्रथ हो तो उन ग्रथो को देखता । इतिहास-सशोधन, विशेषतः आध्यात्मिक ग्रथ देखने का मुझे शौक था । उस समय लोग मुझे खास जानते नही थे, इसलिए यह लाभ मिल सका । वह एक विशेष ही लाभ कहा जायेगा । तुकाराममहाराज ने कहा है, **रिघावे पोटात, पाया पडूनि घ्यावा अत** (पेट – हृदय मे प्रवेश करे और पैर पकड कर अदर की बात निकाल ले) । वैसे ही मै करता था । अब तो मुझे किसी के चरण पकडने का अवसर नही मिलता ।

जब मै महाराष्ट्र मे घूम रहा था, तब गीता पर प्रवचन करता था । उस समय मै कोई अनुभवी व्यक्ति था, ऐसी बात तो नही, २३ साल की मेरी उम्र थी । मै गीता को कितना समझा था, यह एक भगवान श्रीकृष्ण ही जाने, लेकिन बिलकुल तन्मय हो कर अत करण की छटपटाहट से बोलता था । उसमे मेरा केवल जप का

हेतु था। शिवजी के लिंग पर बूंद-बूंद अभिषक होता है, वैसे विचारो का सतत जप होता गया, तो विचार चित्त पर अकित होता है, इस भावना से व्याख्यान करता था। गीता के लिए मेरे अत करण मे ऐसी ही भक्ति है।

एक गाव मे अधिक से अधिक तीन दिन ठहरता था। पहला दिन परिचय मे जाता था। रात को नौ बजे प्रवचन होता था और लोगो को सुनने की इच्छा है, ऐसा दिखायी दिया तो और दो दिन ठहर जाता था। पहले दिन पद्रह-बीस भाई-बहन प्रवचन सुनने आते। उन पद्रह-बीस भाई-बहनो के सामने मै इस तरह बोलता था, मानो मै हजार लोगो के सामने बोल रहा हू। दूसरे दिन सख्या बढ जाती – दो-सौ तीन-सौ लोग आते।

एकबार एक गाव मे शकरेश्वर मठ के शकराचार्य मेरे साथ हो गये। उनका व्याख्यान सुबह होता था। उनको मालूम हुआ कि गाव मे कोई जवान साधु आया है, उसकी सभाए बहुत अच्छी हो रही है, तो उनकी ओर से मिलने के लिए इशारा हुआ। परतु मेरा दिनभर का बधा हुआ कार्यक्रम रहता था, समय नही था, तो प्रथम तो मै उनके पास गया ही नही। इतने मे उनकी चिट्ठी मिली, तो मै गया। मैने शकराचार्य को प्रणाम किया, तो वे कहने लगे, "तुझे मिल कर बहुत प्रसन्नता हुई। यदि बछडा गाय से मिलने नही आता तो गाय को बछडे के पास जाना पडता।" यह सुनते ही मेरी आखो मे आसू भर आये। आज भी वह वाक्य मुझे याद है। उस वाक्य ने मुझे जीत लिया। फिर उन्होने पूछा, शकराचार्य का भाष्य पढा है? मैने कहा, गीता-भाष्य पढा है, ब्रह्मसूत्र-भाष्य पढ रहा हू। तो उनको बहुत अच्छा लगा।

एक गाव (तासगाव) मे मुझे सात दिन रुकना पडा। कारण, वहा पहुचा तव मेरे पैर को एक फोडा हुआ था। इसलिए मै चल नही सकता था। पहले दिन तो वह सतत चौवीस घटे दुखता रहा। फिर उसका आपरेशन किया गया। इसलिए सातो दिन मै व्याख्यान की जगह वैलगाडी मे बैठ जाता था। लेकिन मजा यह कि श्रोता इकट्ठा हो जाते और मेरा व्याख्यान शुरू हो जाता तो फोडा दुखना बद हो जाता ओर व्याख्यान समाप्त होने पर श्रोता अपने-अपने घर चले जाते तो दुखना फिर शुरू हो जाता। उस सात दिन के मुकाम मे मैने ब्रह्मसूत्र शाकरभाष्य सपूर्ण पढ डाला। दिनभर पढता रहा।

जिस गाव मे ठहरता वहा के जवानो से सपर्क करता, उन्हे पदयात्रा का निमत्रण देता। वडे तडके नहा-धो कर घूमने निकल जाता। साथ मे कोई हो तो जोरदार चर्चा चलती। अक्सर जवान लोग साथ रहते ही। कभी अकेला ही रहता तो चितन चलता। दस-ग्यारह वजे तक घूमता रहता।

ऐसी मस्ती मे वह समय वीता। अपनी चर्चाओ मे तथा आचरण के द्वारा सत्याग्रह-आश्रम का प्रचार करने की मैने कोशिश की। चित्त मे एक ही विचार था। सपने आते तव भी एक ही विचार मन मे आता कि क्या ईश्वर मुझसे सेवा करा लेगा ? यही एक धुन थी कि यह शरीर ईश्वरसेवा मे समर्पित हो।

आश्रम मे वापस लौटने की मीयाद मैने वापू को दे रखी थी, ठीक उसी दिन मै वापस आश्रम मे पहुच गया। *

☆☆☆

---

* एक साल के अपने काम का व्योरा देनेवाला पत्र विनोवाजी ने वापू को लिखा था, जिसे पढ कर वापू के उद्गार थे – 'गोरख ने मछदर को हरा दिया! भीम है भीम!' – स

इस तरह बापू का प्रेम और विश्वास मैने बहुत पाया है। मैने भी अपना सर्वस्व उनके चरणो मे समर्पित किया था। बापू थे तब मै निश्चित हो कर अपने प्रयोग करता। लेकिन अब सोचता हू कि कुछ बरस पहले बाहर निकला होता तो बापू की जिंदगी जिस आग मे होम गयी, उस आग को झेलने का मौका तो शायद न आता, लेकिन बापू के पहले स्वय होम जाने का सतोष तो मुझे मिला होता। बापू पर गोली चलने के बाद मुझे ऐसा भास रहा है कि मै पाच-दस वर्ष पहले आगे आया होता तो सभव है कि कोई मदद होती। कुछ नही तो 1945 मे जेल से छूटने के बाद यदि मै बापू के पास व्यापक काम मे आ गया होता तो, मुझे ऐसा लगता है कि, बापू के ऊपर का प्रहार मै अपने ऊपर ले पाता।

जो कुछ होता है, सब भगवान की योजना के अनुसार होता है। दुर्भाग्य की बात है कि एक सिरफिरे आदमी ने गाधीजी की हत्या की। इस घटना के दो घटे बाद पवनार मे मुझे खबर मिली। दो-तीन दिन तक तो मेरा चित्त शात रहा। मेरी ऐसी आदत है कि किसी भी बात का मुझ पर एकदम असर नही होता। ऐसा ही इस घटना का हुआ। लेकिन दो-तीन दिन बाद असर होने लगा और चित्त मे व्याकुलता भी आयी। उन दिनो रोज प्रार्थना मे मुझे बोलना पडता था। सेवाग्राम-आश्रम मे एक दिन प्रार्थनाभूमि पर जब मै बोलने लगा तो मेरी आखो से आसू बहने लगे। यह देख कर किसी भाई ने पूछा, क्या विनोबा रोये? मैने कहा, हा भाई, मुझे भी भगवान ने हृदय दिया है। इसवास्ते मै भगवान का उपकार मानता हू।

लेकिन मेरी आखो मे जो आसू आये वे बापू की मृत्यु के लिए नही। क्योकि मै मानता हू कि उनकी मृत्यु तो ठीक वैसी ही हुई, जैसी किसी भी महापुरुष की हो सकती है। पर मुझे दु ख इस बात का था कि अपने भाइयो की इस हत्याकारी मनोवृत्ति को मै रोक नही सका।

बापू की मृत्यु के समाचार सुनते ही मेरे मन मे ऐसा लगा कि बापू अमर हो गये। और तब से आज की घडी तक मेरी सतत यही भावना रही है। बापू देह मे थे तब उनसे मिलने के लिए जाने मे कुछ न कुछ समय लगता ही था। लेकिन अब तो उनकी मुलाकात मे एक पल की भी देर नही लगती। आख बद की कि मुलाकात हुई समझो। जब बापू जीवित थे तब तो मैने उनके कामो मे अपने को गडा दिया था और कभी-कभार ही मै उनके साथ बात करता था। लेकिन अब तो नित्य उनसे बात करता हू और अनुभव करता हू कि वे मेरे आसपास ही है।

तुलसीदासजी ने गाया है – **जनम जनम मुनि जतनु कराहीं अत राम कछु आवत नाहीं।** गाधीजी के मुख से आखिरी शब्द निकला 'हे राम'। कोई भी भक्त इससे अधिक और क्या कर सकता है ?

गाधीजी के श्राद्धदिन पर पवनार मे धामनदी मे उनका अस्थिविसर्जन किया गया। उस दिन धामनदी के किनारे जो दृश्य देखा, वह किसी नये जन्म का ही दृश्य था। ईशावास्य उपनिषद बोलते समय मुझे जो अनुभव हुआ, उसका शब्दो मे वर्णन करने मे मै असमर्थ हू। ज्ञानी पुरुषो ने हमे आत्मा की व्यापकता का बोध दिया है। हमारी इस पर श्रद्धा बैठती है सही, लेकिन उस दिन उसका साक्षात्कार हुआ। जब महापुरुष अपनी देह मे होते है, तब उनकी शक्ति सीमित होती है, और जब वे देहमुक्त हो जाते है, तब उनकी शक्ति असीम हो जाती है

अंत्योदय की साधना

अप्रैल 1921 से फरवरी 1951.

हमारे सभी मित्र किसी न किसी कारण से राजनैतिक कार्य मे लगे हुए थे। जिनका रचनात्मक कार्य मे खिचाव था वे भी राजनीति के प्रवाह मे थे। व्यापक चिंतन होते हुए भी उस प्रवाह मे न होना – इसे एक योग ही कहना होगा और ईश्वर की कृपा से मुझे वह सध गया था। मानो दुनिया मे कुछ चल ही नहीं रहा है, इतनी तटस्थता से लेकिन दुनिया का निरीक्षण करते हुए तीस साल मेरा कार्य चलता रहा। कार्य के उस अनुभव और तटस्थ निरीक्षण के कारण कुछ ऐसी बातो का आकलन मुझे हो सका, जो उस प्रवाह मे पडे हुए लोगो को न हो सकता था।

साधना की भूमिका

सन् 1921 से 1951 तीस वर्ष, अपरिहार्य जेलयात्रा छोड कर मेरा सारा समय, और जीवन ही, विधायक और रचनात्मक कार्य मे बीता। उस समय भी मेरा ध्यान रचनात्मक कार्य के मूलभूत विचारो की तरफ अधिक था। शिक्षण, अध्ययन, अध्यापन, ध्यान, चिंतन, निरीक्षण इत्यादि कार्य मैं कर रहा था, फिर भी जिसे राजनैतिक आदोलन कहते है, उसमे मैने ज्यादा भाग नही लिया। कर्तव्यबुद्धि से झडा सत्याग्रह, व्यक्तिगत सत्याग्रह, 42 का आदोलन आदि जो अपरिहार्य था, वह किया। बाकी तीस वर्ष एक ही स्थान पर बैठ कर समूचे विश्व के साथ अनुसधान (सपर्क) रखने का ओर जिसे गीता 'अकर्म' कहती है उस अवस्था मे रह कर कर्म किस प्रकार हो सकता है, इसका प्रयोग मेरा वहा हो रहा था।

मै उस कार्य मे इतनी एकाग्रता से लगा था कि उसके लिए मिसाल मै ही हू। यानी वह मेरी अपनी एक चीज है। उस एकाग्रता मे मै यह कभी न भूल सका कि समग्रता भी आवश्यक होती है। एकाग्र और समग्र, दोनो मिल कर जीवन है। इसी लिए आश्रम मे काम करते हुए, ग्रामसेवा मे ध्यान देते हुए, विद्यार्थियो के अध्ययन-कार्य मे समय देते हुए तटस्थ बुद्धि से, मै कुल दुनिया मे जो हलचले चलती रही, उनका सतत निरीक्षण और अध्ययन करता रहा। मैने अपने को इन आदोलनो से निर्लिप्त रखा था। इसलिए जैसे खेल के बाहर रह कर देखनेवाला उस खेल को, खेल मे दाखिल हुए लोगो से ज्यादा पहचान पाता है, वैसे मुझे अनुभव आया। सेवाग्राम मे कोई भी नेता या चितन करनेवाला शख्स बापू के पास आता तो बापू उन्हे

मेरे पास भेज देते। यद्यपि मुझे आदत नही थी कि मै किसी पर अपने विचारो का आक्रमण करू, फिर भी मिलनेवाले के साथ कुछ सवाल-जवाब तो होते ही। तो बाहर के प्रवाहो की जानकारी प्राप्त करने का मौका मिल जाता। इस तरह वहा बैठे-बैठे चितन-निरीक्षण चलता रहा।

इन तीस वर्षो मे जो जीवनयापन किया उसमे मेरी एकातिका ध्याननिष्ठा थी। इसलिए वह स्थान मैने कभी छोडा नही। मै बिलकुल स्थाणु बन गया था। परधाम आश्रम और धामनदी को किसी गोह की तरह चिपक कर बैठा था। गाधीजी के निर्वाण के बाद महाराष्ट्र मे जो कुछ दु खदायी घटनाए हुई, उस समय सानेगुरुजी ने अत्यत छटपटाहट से, व्यथित और व्याकुल मन से मुझे पत्र लिखा था– "विनोबा, अब तो महाराष्ट्र मे आओ। यहा आपकी आवश्यकता है।" उन दिनो उन्होने 21 दिन का उपवास भी किया था। उनके जैसे सन्मित्र ने विशेष विपत्ति के समय व्याकुलता के साथ जो लिखा था, उसका मैने क्या उत्तर दिया? मैने लिखा कि मेरे पैर मे चक्र है। कभी न कभी घूमने-फिरने का योग मुझे है, वह अभी आया नही है। जब मेरा घूमना प्रारभ होगा तब मुझे रोकने की शक्ति ससार मे किसी की नही होगी। हा, भगवान ही मेरे पैर तोड कर मुझे रोक दे तो अलग बात है। उसी प्रकार मै आज जो बैठा हू तब मुझे उठाने की शक्ति भी किसी मे नही है। इतना कठोर, निर्लिप्त बन कर मै तन्मयता से रचनात्मक कार्य मे लगा हुआ था।

लेकिन रचनात्मक काम करते हुए भी मेरे सामने एक ही कसौटी थी कि यह व्यापक आत्मदर्शन का अल्प प्रयत्न है। इसलिए मैने यही प्रयत्न किया कि आसपास के लोगो मे अच्छी भावना पैदा हो और उत्तम कार्यकर्ता पैदा हो। समझने की बात है कि हम रचनात्मक काम करना जरूर चाहते है, लेकिन रचनात्मक काम तो सरकार भी

करना चाहती है और करेगी। उससे लोग सुखी होगे और अवश्य होने चाहिए, लेकिन मूल्य-परिवर्तन और समाज को सुखी बनाना, दोनो मे फर्क है। जब हम शाश्वत सुख की बात करेगे, तो दोनो मे फर्क नही रहेगा। लेकिन तात्कालिक सुख के बारे मे सोचेगे, तो सुखी बनाना एक बात है और मूल्य-परिवर्तन दूसरी बात है। इसी मूल्य-परिवर्तन को 'शातिमय क्राति' कहते है। क्राति 'शातिमय' ही हो सकती है। किसी भी प्रकार के बदल को क्राति नही कहा जाता। क्राति मे बुनियादी या मूलभूत परिवर्तन होना चाहिए, मूल्य बदलना चाहिए। मूल्य मे जो बदल होता है, वह शातिमय ही होता है, विचार से ही होता है। यह मेरे विचार की पक्की भूमिका थी और उसी के आधार पर मेरे प्रयोग चल रहे थे।

मै खुद अपने को मजदूर मानता हू। इसी लिए मैने अपने जीवन के, जवानी के 32 वर्ष, जो 'बेस्ट इयर्स' (सर्वोत्तम काल) कहे जाते है, मजदूरी मे बिताये। मैने तरह-तरह के काम किये। जिन कामो को समाज हीन और दीन मानता है, जिनकी कोई प्रतिष्ठा नही है, यद्यपि उनकी आवश्यकता बहुत है, ऐसे काम मैने किये है। जैसे भगी-काम, बुनाई, बढई-काम, खेती आदि। अगर गाधीजी होते, तो मैं बाहर कभी नही आता और दुनिया मुझे किसी मजदूरी मे मग्न पाती। कर्म से मैं मजदूर हू, यद्यपि जन्म से 'ब्राह्मण' यानी ब्रह्मनिष्ठ और अपरिग्रही हू। ब्रह्मनिष्ठा तो मैं छोड नही सकता। इसलिए इन सारे कामो के पीछे व्यापक आत्मदर्शन की साधना की ही दृष्टि थी।

जमनालालजी बजाज के आग्रह पर बापू ने सत्याग्रह-आश्रम की एक शाखा वर्धा मे खोलने का तय किया और उसके सचालन के लिए मुझे वहा जाने का आदेश दिया। अपने चार विद्यार्थी और एक साथी के साथ मै वर्धा पहुच गया (8 अप्रैल 1921)। और मेरा कार्य शुरू हो गया।

कताई-उपासना

गाधीजी के पास आने के बाद मैने अनेक प्रकार के काम किये । वापू की प्रेरणा से बुनाई सीखनेवाले सबसे पहले लोगो मे मै एक हू । उन दिनो मै निवार बुनने का काम करता था । दिनभर मे 25 गज निवार बुनने से जीवन-निर्वाह हो सकेगा, ऐसा सोच कर जोरो से निवार बुनने का काम चलाया था । सतत परिश्रम के बावजूद भी आठ घटो मे 25 गज निवार नही बुनी जा सकी । आखिर बहुत ज्यादा जोर लगाया, एक दिन रात को 9 30 बजे तक बुना, तब दस घटो मे 25 गज निवार बुनने की क्षमता हासिल हुई ।

उन दिनो (1916) सारा सूत मिल का होता था । उसके बाद ध्यान मे आया कि मिल के सूत से हिंदुस्तान को खास कोई लाभ नही होगा । इसी से धीरे-धीरे चरखे की ओर ध्यान आकृष्ट हुआ । हम लोग बैठ कर कातने लगे । फिर धुनने की प्रक्रिया शुरू हुई । उसके बाद तुनाई का काम सूझा । इस सबका सशोधन शुरू किया । घटो काता, घटो बुना । कताई की हर प्रक्रिया की तरफ ध्यान दिया, प्रयोग किये । फिर तो हिसाब चला कि कताई की मजदूरी क्या होनी चाहिए ।

जिन दिनो कताई की मजदूरी निर्धारित करने का प्रश्न उठा, उन दिनो मैने रोज चार-चार गुडिया कातना शुरू कर दिया । घटो बैठ कर कातता और उससे जितनी आय होती उसी मे अपना निर्वाह करता । एक साल तक प्रयोग किया । एक दिन भी इस प्रयोग को खडित नही होने दिया ।

जब यह महायज्ञ शुरू हुआ तब चार गुडिया पूरी करने मे साढे आठ-नौ घटे लग जाते थे । अलग-अलग तरीके से कातने का अभ्यास

करता था। कुछ समय तक – दो, ढाई घटो तक खडे हो कर कातना, फिर कुछ समय वैठ कर कातना, कुछ समय वाये हाथ से, कुछ समय दाये हाथ से, ऐसे कातने के चार प्रकार आजमाये थे। पाचवा भी एक प्रकार हो सकता था, वेच पर वैठ कर पैर नीचे छोड कर कातने का। कताई के समय कुछ देर तो मै लोगो को पढाता, वाकी समय मौन। तव नया धागा निकालते समय 'तत् सवितुवरे॰य भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न. प्रचोदयात्' और सूत तकुए पर भरते समय '॰ॐ भूर् भुव स्व' वोलता था। इस सवके कारण रोज 16 लटी (चार गुडिया) कातना हल्के फूल जैसी वात हो गयी, श्रम महसूस नही होता था।

उस समय मेरा दिनक्रम साधारणतया इस प्रकार था – कताई मे करीवन नौ घटे जाते थे। कातते समय दो घटे पढाने का काम करता। एकवार दिनभर का हिसाव देते समय मैने 26 घटे का हिसाव दिया था, क्योकि दो घटे कातना और पढाना दोनो काम एकसाथ चलते तो दो घटे अतिरिक्त मिल गये। चार-पाच घटे पत्र-लेखन आदि अन्य कामो मे देने की कोशिश रहती और दस घटे देहकृत्य के पीछे जाते (जिसमे निद्रा भी शामिल है)।

उन दिनो रात मे कन्याश्रम मे रहता था और दिन मे नालवाडी मे। शाम को छ वजे कन्याश्रम मे चला जाता था। वहा शाम को वापू, वावाजी, वालकोवा, शिवाजी इत्यादि के साथ वाते होती, फिर प्रार्थना, रात को सूत-कताई और फिर सोना। प्रात कालीन प्रार्थना के वाद उपनिपद का वर्ग लेता। उसमे आश्रम के लडके-लडकिया और कुछ शिक्षक आते थे। इस वर्ग के वाद छ वजे नालवाडी आ जाता था।

मैने वह नया उपक्रम तारीख 1-9-35 से शुरु किया। ऐसे

वह कोई नयी बात नही थी, पर प्रत्यक्ष मे नया था। कताई के कार्यक्रम मे वह गृहीत ही था कि सभवत अपना भोजन-खर्च अपनी मजदूरी पर निभा ले। मजदूरी अर्थात् मैने तय की हुई। खाद्य-वस्तुओ के भावो की भी निश्चित कल्पना कर ली थी। यानी तय किया था कि उनमे बाजार के अनुसार फरक नही माना जायेगा, एक निश्चित भाव माना जायेगा। सामान्यतया छ रुपयो मे (महीने का) भोजन हो जाये, ऐसी योजना थी। आहार मे य चीजे थी – (1) दूध 50 तोला, (2) भाजी 30 तोला, (3) गेहू 15 से 20 तोला, (4) तेल 4 तोला, (5) शहद या गुड या फल।

ऐसे अपनी मजदूरी पर गुजारा करने का माद्दा तो लगभग शुरू से (1922-23 से) ही रहा था। तब दोपहर के चार बजे तक काम होने के बाद हिसाब लगाया जाता था कि कितना काम हुआ, कितनी मजदूरी प्राप्त हुई। अगर यह हालत हो कि शाम के छः बजे तक (यानी 8 घटो मे) पूरी मजदूरी प्राप्त हो जायेगी तो शाम का भोजन बनाया जाता था, नही तो सवाल किया जाता था कि पूरी मजदूरी का काम हुआ नही है तो क्या करना है, शाम का भोजन छोड देना है या ज्यादा काम कर के पूरी मजदूरी प्राप्त करनी है? जवान लोग अक्सर पूरा भोजन चाहते तो ज्यादा काम किया जाता। कभी जितनी मजदूरी कम होती उतनी चीजें आहार से निकाल दी जाती। ऐसे बिलकुल उत्साह मे काम चल रहा था। मेरे पास जो विद्यार्थी थे वे बिलकुल जवान लडके थे, पर पूरी ताकत और उत्साह के साथ मजदूर के जीवन मे मेरे साथ लगे हुए थे।

रोज नौ घटो मे 16 लटी कातने के बाद भी चरखा सघ की मजदूरी के हिसाब से 5 रुपया मासिक मजदूरी होती थी। मेरे विचार से श्रम के हिसाब से मजदूरी चार आना अवश्य होनी

चाहिए थी। बापू के विचार से आठ आना। लेकिन इतनी मजदूरी दे कर खादी खरीदना हमारे श्रीमानो को पुसाता नही था। इसका क्या इलाज? यही कि मेरे जैसो ने ऐसी मजदूरी पर जीवन-निर्वाह करना। और वह मै प्रयोग के तौर पर कर ही रहा था।

एकबार मेरे इस प्रयोग की बात बापू को मालूम हुई। सेवाग्राम मे बैठ कर उनका ध्यान चारो ओर रहता ही था। फिर जब उनसे मिलना हुआ तब उन्होने उस बारे मे पूछताछ की और पूछा कि तुम इतना कातते हो तो चरखा सघ की मजदूरी के हिसाब से तुमको कितना मिलता है? मैने कहा, दो-सवा दो आना। फिर उन्होने पूछा, तुम्हारा रोज का खर्च कितना? मैने कहा, आठ आना। उस पर बापू ने कहा, "इसका अर्थ है कि पूरा दिन कातने-वाला अच्छा कारीगर भी इस पर अपनी आजीविका नही चला सकता।" उनके इन शब्दो मे उनकी व्यथा प्रकट हो रही थी। आखिर बापू के प्रयत्नो से कातनेवालो को पर्याप्त मजदूरी देने का सिद्धात स्वीकार हुआ, यद्यपि आज भी हम उस सिद्धात से बहुत दूर है।

पूर्ण मजदूरी के सिद्धात की चर्चा दो-तीन साल चली। प्रथम महाराष्ट्र चरखा सघ ने उस दिशा मे एक कदम उठाया। फिर यह देख कर कि उसका कोई अनिष्ट परिणाम नही निकला है, उन्होने कुछ ज्यादा मुक्त मन से दूसरा कदम उठाया। यह नयी भाववृद्धि पुरानी भाववृद्धि से लगभग दुगुनी थी। सर्वसाधारण कातनेवाले को आठ घटे मे चार आने और उत्तम कातनेवाले को उतने ही समय मे छ आने मिलने लगे। कोई एकाध सुदुर्लभ पुरुष, एक ही दिन के लिए क्यो न हो, जोर लगा कर आठ आना प्राप्त कर सकता। गाधीजी की न्यूनतम मजदूरी थी आठ आना। उसको क्वचित् किसी

का हस्तस्पर्श हो सकता था। यद्यपि महाराष्ट्र चरखा सघ ने यह नीति अपना ली थी, अन्य प्रदेशो के लोगो को वह अभी अव्यवहार्य ही लगती थी।

चरखे पर नौ घटे मे चार गुडी कातने के प्रयोग के बाद तकली पर वैसा प्रयोग करने का मेरा इरादा था। लेकिन मेरी तकली की गति अल्प होने के कारण चरखे के जैसा तकली पर उत्तम परिणाम निकालने की मेरी ताकत नही थी। इसलिए दूसरे किसी सामर्थ्यवान व्यक्ति को ऐसा प्रयोग करना चाहिए। ऐसे प्रयोगो मे ही खादी की कल्पना को तीव्र वेग देना सभव है। मैंने पूरे एक साल तकली पर बाये हाथ से कातने का प्रयोग किया। मेरे दाये और बाये हाथ की गति मे नौ तार का अतर रहा। इस अभ्यास का उद्देश्य यह था कि दोनो हाथ मिल कर आठ घटो मे तकली पर पूरा काता जा सके। सत्यव्रतन् ने तो यह दिखा ही दिया कि दाया-बाया, दोनो हाथ इस्तेमाल कर के चार घटे मे 20 नबर की 12 लटिया काती जा सकती है।

उन दिनो (1934 के आसपास) रोज दोपहर बारह बजे सामूहिक तकली-कताई होती थी। उसको मैंने उपासना माना था और कहा था कि मै किसी पर अपने विचारो का आक्रमण नही करना चाहता, पर मेरी अपेक्षा है कि भोजन की उपस्थिति से ज्यादा उपस्थिति तकली-उपासना मे हो। वह नही होती, उसका एक कारण यह है कि तकली-उपासना का तत्त्व हमारे ध्यान मे नही आता। उपासना व्यवहार और ज्ञान – आत्मज्ञान के बीच खडी है। दोनो के बीच पुल का काम देती है। हम, जो व्यवहार मे गिरफ्तार है, उन्हे परमार्थ मे ले जाना उपासना का काम है। उपासना व्यवहार के फायदे के लिए शुरू होती है और फायदा बताते-बताते

हमे शाति, समाधान, आत्मज्ञान के किनारे पर ले जाती है। जिसने यह बात समझ ली है कि तकली-चरखे का उपयोग हर भारतवासी करेगा, तो भारत के बहुत सारे दुःखो का इलाज हो सकता है और इस भावना से वह कातना शुरू करेगा तो उस कताई मे उसे शाति मिलेगी। जिस चीज का हम उपासना के तौर पर स्वीकार करते हैं उससे बाह्य और आतरिक, दोनो फायदे मिलते है और ऐसा अनुभव तकली के बारे मे है।

तकली के विषय मे काफी तपस्या की गयी। उन दिनो जेल में तकली रखने की इजाजत नही थी। जेल मे तकली के लिए दाडेकर ने उपवास किये तब उनको तकली रखने की इजाजत मिली। काकासाहेब को तो ग्यारह दिन उपवास करना पडा। ऐसे ही अनेक भाई-बहनो ने तपस्या की है। तकली के लिए यह जो त्याग किया गया उसकी कहानी राबीन्सन क्रूसो की कहानी के समान रसमय है। पुराणो की रसिक कथाओ के समान यह कथा लिखी जा सकती हैं।

मेरा निश्चित मत है उपासना के बिना राष्ट्र मे एकता नही होगी। एक राष्ट्र बनने के लिए सहविवाह, सहभोजन या सहभाषा काम नही देती, लेकिन सहभावना काम देती है। एक भावना से राष्ट्र बनता है। प्रार्थना और तकली के सिवा ऐसा कौनसा स्थान है, जहा पर हम सब समान होते है? बाकी स्थानो पर तो शिक्षक-विद्यार्थी, गरीब-अमीर, रोगी-निरोगी अनेक प्रकार के भेद पडे रहते है। मैं प्रार्थना और तकली (या चरखा), दोनो को एक ही शब्द **'उपासना'** लगाता हू। प्रार्थना वाङ्मयी उपासना है और तकली कर्ममयी उपासना है।

☆☆☆

'दो आने आहार' योजना

सन् 1924 की बात है। मैने अर्थशास्त्र का अध्ययन शुरू किया था। अपनी भाषा मे ज्यादा किताबे नही थी, इसलिए मैने तरह-तरह की अग्रेजी किताबे पढी। और उस अध्ययन की प्रेरणा के लिए उन दिनो मैने रोज का गुजारा दो आने मे किया, क्योकि उस सयय हिंदुस्तान मे प्रतिव्यक्ति (निम्नतम) उत्पन्न डेढ-दो आने का था। उस वक्त मै तीन दफा खाता था। सात पैसे का खाना और एक पैसे की लकडी। यही मेरा हिसाब था। सात पैसे मे ज्वार की रोटी, मूगफली, गुड, दाल, मुठ्ठीभर सब्जी, थोडा नमक-इमली, इतनी चीजे आती थी। उन्ही दिनो बापू के उपवास के कारण मुझे दिल्ली जाना पडा। वहा ज्वार नही मिलती थी, गेहू ही मिलता था, जो महगा था, इसलिए मुझे वहा मूगफली छोडना पडा। मेरा यह सिलसिला सालभर चला।

कोई भी पूछ सकता है कि अर्थशास्त्र के अध्ययन का इस तपस्या के साथ क्या सबध? मेरा मानना है कि अध्ययन तभी हजम होता है, जब हम अपने को उसके अनुकूल कर लेते है। अपनी इद्रियो को, प्राणो को कस लेते है। मैने एकदफा दो साल तक बहुत एकाग्रता से वेदो का अध्ययन किया था। उस वक्त भी मै दूधभात पर ही रहता था, तीसरी चीज लेता नही था। इस तरह विचारो के साथ जीवन का ताल्लुक जोडने की मुझे आदत है। उसे मै बहुत जरूरी समझता हू। इसलिए अर्थशास्त्र के अध्ययन के साथ मैने अपना जीवन भी जोड दिया। मुझे उस अध्ययन का बहुत लाभ हुआ और निकम्मा अर्थशास्त्र ध्यान मे रहा नही। टालस्टाय, रस्किन वगैरह के खास अर्थशास्त्र का अच्छा अध्ययन हुआ।

बापू का सिपाही

सन् 1925 की वात है। वेंक्कम् (केरल) मे मदिर-प्रवेश के लिए सत्याग्रह चल रहा था। हरिजनो के लिए मदिर-प्रवेश नही था। इतना ही नही मदिर की तरफ जानेवाले रास्ते पर भी उन्हे न जाने देते थे। इसलिए सत्याग्रह शुरू हुआ, जो लगातार कई दिन चला। परिणाम होता-सा दिखायी नही दिया। उन दिनो मै वर्धा के आश्रम मे था ओर वापू सावरमती मे थे। उन्होने मुझे आदेश दिया कि यह सत्याग्रह किस तरह चल रहा है, यह जरा देखो। मुझसे दो अपेक्षाए थी। एक तो विद्वान सनातनी लोगो से चर्चाए कर कुछ हो सके तो देखे और सत्याग्रह के तरीके मे कुछ सुझाव पेश करना हो तो करे। उस वक्त मुझे ज्ञान तो था ही नही, अनुभव भी नही था। फिर भी वापू की एक श्रद्धा थी। मैने भी श्रद्धा रख कर वहा जाने की हिम्मत की। जगह-जगह पडितो के साथ काफी चर्चा हुई। वे तो सस्कृत मे ही चर्चा करना पसद करते थे। इसलिए मै भी सस्कृत मे वोलने की कोशिश करता था। परन्तु मै उनके हृदय मे परिवर्तन लाने मे समर्थ न हुआ। मुख्य सवाल था, सत्याग्रह के तरीके मे कुछ सुझाव पेश करने का। शुद्ध दृष्टि से सत्याग्रह चलता है तो उसका असर होता ही है। उस समय मैने कुछ सुझाव पेश किये और वापू से भी उस वारे मे कहा। उसके वाद वापू स्वय वहा गय और आगे वह मसला हल हो गया।

वापू की तरफ देख कर सुझाये कार्यक्रमो मे यथाशक्ति शरीक होने की मेरी कोशिश तो रहती ही। 1921 मे उन्होने काग्रेस के एक करोड सदस्य वना कर एक करोड का तिलकफड खडा करने

का कार्यक्रम दिया था । उस समय मैं वर्धा मे ही था। वर्धा मे घूम कर इस काम मे योगदान देने लगा। घर-घर जाता था, काग्रेस के सिद्धात समझाता था, और जिसे वह जच जाये उसको सदस्य बना लेता था । रोज पाच-पाच, छ -छ घटे काम करने पर भी दस-पाच सदस्य ही बना पाता था और दूसरे लोग उतने ही समय मे डेढ-डेढ दो-दो सौ सदस्य बना लेते । इसका क्या कारण होगा, कुछ समझ नही पा रहा था । तो मैंने उन लोगो से कहा कि मै चारपाच दिन आप लोगो के साथ चलता हू और किस प्रकार काम करना सीख लेता हू । तब वे लोग हाथ जोड कर कहने लगे, कृपया आप हमारे साथ न आये, आपका ठीक ही चल रहा है, हम तो किसी जीन या ऐसी ही जगह जाते है, जहा मालिक से 50 रुपये ले कर 200 मजदूरो के नाम सदस्य के नाते लिख लेते है । बाद मे मैंने वह काम छोड ही दिया।

उस जमाने मे मैं खुद भी काग्रेस का सदस्य था। 1925 के बाद मै उससे मुक्त हुआ । बापू 1934 मे मुक्त हुए। उस जमाने मे मित्रो ने मुझसे पूछे वगैर मेरा नाम नागपुर काग्रेस कमिटी मे रखा। उसकी एक सभा के लिए मै वर्धा से नागपुर जाने के लिए दोपहर बारह बजे निकला। दोपहर तीन बजे सभा थी। ट्रेन मे पढने के लिए मैने ऋग्वेद की किताब साथ ली थी ।

तीन बजे सभा प्रारभ हुई । सब सदस्यो को सविधान की एक-एक किताब दी गयी थी। सभा के आरभ मे ही एक भाई ने आक्षेप उठाया कि 'इस सभा के लिए पूरी नोटिस नही मिली थी, इसलिए यह कानूनी सभा नही है । सभा के लिए कम से कम अमुक दिनो की नोटिस मिलनी चाहिए थी । देखो सविधान का पन्ना चार, नियम पाच ।' फिर हम सबने वह पन्ना खोला । दूसरे भाई ने कहा,

'नियम तो ठीक है, परतु विशेष परिस्थिति मे जल्दी सभा वुलाने का हक है। देखो पन्ना अमुक, नियम अमुक।' फिर चर्चा चली, जिसमे एक के वाद एक नियम का आधार लिया गया। मै भी किताव खोल कर नियम पढता गया। मैं सोचने लगा कि सभा गैरकानूनी सावित हो जाये तो हम सव मूरख सावित होगे। मेरा तो उन नियमो का कुछ अध्ययन नही था। आखिर निर्णय हुआ कि सभा गैरकानूनी नही है। चर्चा शुरू हुई। इतने मे भोजन का वक्त हुआ इसलिए सभा स्थगित हुई। रात मे फिर से सभा हुई, जिसमे मै नही गया। दूसरे दिन वर्धा पहुचने पर मैंने सीधा इस कमिटी की सदस्यता और काग्रेस की प्राथमिक सदस्यता का भी इस्तीफा दे दिया। क्योकि मैने देखा कि सभाओ मे एक-दूसरे के सामने वैठनेवाले व्यक्ति मनुष्यता को नही, वल्कि कानून को ले कर वैठते है। मुझे वह सारा शुष्क, नीरस मालूम हुआ।

वे (वापू) हुक्म दे और मै उनके हुक्म को उठाऊ, यही आज तक मेरा जीवन रहा है। देशसेवा की वेदी पर एकाध हिम्मक पराक्रम से अपनी आहुति चढ़ा कर प्रतिष्ठा पाने की मेरी पुरानी तमन्ना थी, वापू ने मेरे मन से उस भूत को भगा दिया। आश्रम मे मै नित्य अपने जीवन मे विकास पाता था। हर साल महाव्रतो मे से एकाध मुझे आत्मसात् होता जाता था। *

☆☆☆

---

* 1917 मे वापू ने दीनवधु एण्ड्रयूज से विनोवा के वारे मे कहा था—"वे आश्रम के दुलभ रत्नो में एक हैं। वे यहा लेने नही, देने आये है" —म

सन् 1932 से दो-तीन साल तक हम लोग ग्रामसेवा के निमित्त गाव-गाव घूमे। नालवाडी मे रह कर यह काम करते हुए ध्यान मे आया कि आसपास के गावो की सेवा के लिए – समग्र सेवा की दृष्टि से कुछ ठोस योजना वनानी होगी। इसी चितन मे से 1934 मे ग्राम-सेवा-मडल की स्थापना हुई और पूरे वर्धा तहसील के लिए ग्रामसेवा की योजना बनायी गयी। कुछ गावो को चुन कर वहा अपनी कल्पना के अनुसार खादी, हरिजनसेवा आदि लोकसेवा के काम शुरू किये।

सस्थाओ के बारे मे मुझे खास आसक्ति नही। आश्रमो मे मैं रहा। सावरमती मे रहा। वर्धा का आश्रम मैंने चलाया। आश्रमो ने मेरा जीवन गढा। आश्रम मुझे आत्मसात् हुआ। ये सब बाते तो है ही, तथापि इन आश्रमो की स्थापना की जिम्मेवारी मुझ पर नही। वह उधर गाधीजी की और इधर जमनालालजी की थी।

ग्राम-सेवा-मडल के 25 साल पूरे हुए (1959 मे), उस अवसर पर मैंने उनको लिखा था कि सस्थाओ के बारे मे ऐसी अनासक्त वृत्ति होते हुए भी अब तक तीन सस्थाओ की स्थापना मैंने की। बडौदा का विद्यार्थी-मडल 1911 या 12 मे, नालवाडी मे ग्राम-सेवा-मडल 1934 मे और 1959 मे ब्रह्मविद्या मदिर। एक बचपन मे, दूसरी युवावस्था मे और तीसरी वृद्धावस्था मे।

पहली सस्था हमारे विद्यार्थी-जीवन के लिए थी। उसे वर्षों तक चलने की कल्पना नही थी। हमारे विद्याध्ययन के काल मे पाच-छ सालो तक उसे हमने चलाया। वह सौ फीसदी सार्थक (सफल) हुई। उसी मे से मोघेजी, गोपालराव (काले), (रघुनाथ) धोत्रे, माधवराव देशपाडे, द्वारकानाथजी हरकरे आदि मेरे साथी

मेरे साथ सार्वजनिक काम मे लग गये और अत तक कुछ न कुछ काम करते ही रहे । मोघेजी तो ब्रह्मविद्या मदिर मे भी साथ रहे ।

दूसरी सस्था है ग्राम-सेवा-मडल । वास्तव मे इसकी स्थापना का वीज 1912 मे (विद्यार्थी-मडल) मे ही वोया गया । हमारी इस सस्था के वारे मे यह नही कह सकते कि वह सौ फी सदी सफल हुई । तथापि उसके द्वारा भी अनेक प्रकार की सेवा हुई है और कई अच्छे व्यक्ति मिले हे । मुझे इससे वहुत समाधान है ।

भूदान आदोलन के समय (1957 मे) मैने ग्राम-सेवा-मडल को सुझाया कि यह सस्था अहिसक तथा ग्रामोद्योगप्रधान शुरू से ही थी, लेकिन भूदानमूलक नही थी । अव समय आया है कि वह भूदानमूलक वने और जिले मे पक्षरहित समाजरचना कायम करने की कोशिश करे । इस दृष्टि से, जो साथी वर्धा जिले मे भूदान के काम मे लगे हुए है उन्हे भी सस्था मे शामिल कर लेना चाहिए आर ग्रामदान-ग्रामराज की जो क्राति लाना है उसका केद्र इस सस्था को वनाये । वहा जो उत्पादन का काम चलता है और स्वावलवन का जो माद्दा वहा हे, वह कायम रहे । और यह सव कायम रखते हुए जो व्यापक काम वन सके, वह किया जाये । यानी कार्य का एक अश स्थायी हो, जो स्वावलवी हो और दूसरा व्यापक हो, जिसका आधार सपत्तिदान भी हो सकता है ।

जीवन के वारे मे मेरी और एक दृष्टि है । एक शख्स जीवनभर एक ही काम करे, यह ठीक नही । कार्य को पूरा रूप आने के वाद, 20 /25 वर्ष सेवा करने के बाद धीरे-धीरे पुराने लोगो को वानप्रस्थ वनना चाहिए । मेरे सामने सदा यही दृष्टि रहती है । परधाम मे भी पुराने लोग कम ही रहे । वहा की नदी के नित्य नये रूप की तरह परधाम का भी रूप नित्य नया वनता गया है । मैने कहा था कि ग्राम-सेवा-मडल का भी वैसा वने ।

खंडित मूर्तियो की उपासना

ग्रामसेवा के निमित्त से गाव-गाव घूमते समय गावो की आवश्यकताओ का निरीक्षण और उन पर उपाय-योजना के विषय मे नियमितरूप से चर्चा चलती रही। इसकी कल्पना ही न थी कि इधर कुष्ठरोग का कितना भयानक प्रसार है। परतु इस निरीक्षण मे वह भलीभाति ध्यान मे आ गया। फिर क्या किया जाये, यह प्रश्न उठा। तय हुआ कि इसे बिना हाथ मे लिये कोई चारा ही नही। उस समय गाधीजी ने विधायक कार्यक्रमो मे कुष्ठरोगी-सेवा का परिगणन नही किया था। फिर भी समग्र सेवा की कल्पना मेरी आखो के सामने थी, तो इस सेवाक्षेत्र की उपेक्षा करना सभव नही था।

हमारे मित्र मनोहरजी (दिवाण) को इस कार्य को करने की प्रेरणा हुई। उनके मन मे उसके लिए तडपन थी। वे तो हमारे आश्रम मे ही थे। कताई, बुनाई, रसोई, सडास-सफाई आदि आश्रम के कामो मे लगे हुए थे। बाद मे कुछ वर्ष ग्रामसेवा का भी काम किया। कुष्ठेसवा करने की अपनी इच्छा उन्होने मेरे पास व्यक्त की तब मैने उनसे कहा कि इसको जरूर करना चाहिए। मनोहरजी की मा भी उनके पास रहती थी। उनको यह पसद नही था कि उनका बेटा इस काम मे जीवन समर्पित करे। वे मेरे पास आयी। मैने उनसे पूछा, मान लीजिए, आपको कुष्ठरोग हो जाये तो क्या आप कहेगी कि मनोहरजी आपकी सेवा न करे? उन्होने एक क्षण सोचा और तुरत कहा, मेरा उसको आशीर्वाद है।

सन् 1936 मे दत्तपुर का कुष्ठधाम शुरू हुआ। मनोहरजी

वहा बैठ गये । उस समय इन रोगियो का मुझे प्रथम परिचय हुआ। उसके दो वर्ष वाद मै पवनार आया । वहा जमीन खोदते समय कई मूर्तिया मिली । वे सारी मूर्तिया 1300-1400 वर्ष पुरानी थी और उनके चेहरे बिलकुल इन रोगियो से मिलते-जुलते थे । 1400 वर्ष मिट्टी मे पडे रहने के कारण किसी की नाक घिस गयी है तो किसी के हाथ को कुछ हो गया है । जब भी मै कुष्ठरोगियो को देखता हू तब मुझे इन मूर्तियो का स्मरण होता है । मालूम होता है कि ये भगवान की ही मूर्तिया है । और आज यदि कोई नयी, सुदर मूर्तिया बनवाये तो उनके बारे मे इतनी भक्ति नही होगी, जितनी जमीन मे से निकली इन मूर्तियो के बारे मे है । मेरे मन मे इस सेवा के प्रति अत्यत आदर है । और कुष्ठरोगियो के दर्शन मे मुझे परधाम की इन मूर्तियो के दर्शन होते ह ।

एकबार मै कुष्ठधाम गया और कहा कि मै इन लोगो के साथ कुछ काम करूगा । उन लोगो के साथ खेत मे कुछ समय बुवाई आदि काम किया । उस समय मुझे जो आनद मिला उसका वर्णन शब्दो मे करना सभव नही ।

जब ब्रह्मविद्या-मदिर की स्थापना हुई तब मैने मनोहरजी को सुझाया की आपने 25 साल सेवा कर ली, अब आप सेवा से मुक्त हो जाये और ब्रह्मविद्या-मदिर मे 'केवल रहे' । उन्होने उसको मान लिया । परतु बारह साल के बाद मैने उन्हे फिर से कुष्ठधाम जाने का अनुरोध किया और उसे भी उन्होने मान्य कर लिया । मुझे लगा कि कुष्ठरोगियो को ब्रह्मविद्या सिखाने का काम हमको करना चाहिए । किसी मनुष्य को चौबीसो घटे उन्ही मे रह कर उन्हे आध्यात्मिक शिक्षा देनी चाहिए । प्रार्थना, सतवचन, ऋग्वेद-उपनिषद, गीता के श्लोक, कुरआन की आयते, ईसा-बुद्ध-महावीर आदि के वचन,

इत्यादि सिखाये। आसन, ध्यान प्राणायाम भी सिखाये। फिर उन्हीं मे से कोई उत्तम सेवक भी बन सकता है। वह आध्यात्मिक प्रेरणा से जगह-जगह जा कर काम करेगा। इसलिए उनमे ब्रह्मविद्या का प्रवेश होना चाहिए। उन्हे मालूम हो जाये कि रोग देह को हुआ है और आत्मा देह से अलग है, **उद्धरेत् आत्मना आत्मानम्**। इसके बिना हमारी सेवा से उन्हे लाभ होगा नही।

☆☆☆

1935 मे मेरी उम्र के 40 साल पूर्ण हुए। सामान्यत जन्म-दिन का स्मरण मुझे नही रहता था। परतु अनेक कारणवश तब तीव्र आत्ममथन हुआ। अनेक सस्थाओ और व्यक्तियो की जिम्मेवारी मेरी मानी हुई थी। ऐसे व्यक्ति को अपनी शक्ति देख लेने का प्रसग बीच-बीच मे आता है, या बार-बार भी आये तो उसमे कुछ आश्चर्य नही। वैसे प्रसग मे उस बार सब भूत और वर्तमान को जाच लिया। इसी लिए 40 वर्ष समाप्त होने का भान हुआ। काल के अनत परिमाण मे एक तुच्छ मनुष्य के जीवन के 40 वर्ष यानी गणितशास्त्र की व्याख्या के अनुसार तो शून्याकार ही माना जायेगा। फिर भी उस व्यक्ति की सीमित और सापेक्ष दृष्टि मे तो 40 वर्ष भी विचारयोग्य काल मानना चाहिए।

उम्र के बीस वर्ष घर मे गये। उतने ही वर्ष बाहर आये पूरे हो रहे थे। अब उसके आगे के वर्ष कहा बिताये? भूतकाल के सबध मे मनुष्य लगडा होता है, भविष्यकाल के सबध मे वह अधा होता है। इसलिए उन दोनो को अलग रख कर वर्तमान के बारे मे ही सोचा जा सकता था।

अब मेरे जीवन के दो टुकडे समाप्त हो रहे थे (1935)। आगे का बचा हुआ टुकडा किस प्रकार बीते, इस विषय मे पूरा

मनोनिश्चय तो हो ही गया था। प्रत्यक्ष मे तो सारा भगवान पर ही निर्भर था। स्थूल दृष्टि से देखे तो पहले अदाजन वीस साल के टुकडे मे **ज्ञान-सग्रह** किया। दूसरे, उतने ही वर्ष के टुकडे मे **व्रत-सग्रह** का प्रयत्न किया। उसके बाद **'प्रेम-संग्रह'** करने का तय रहा। इस काम मे अनेको के शिवसकल्पो ने मेरी मदद की, ऐसी प्रतीति हुई। मै यह अपना महान भाग्य मानता हू कि मुझे प्रेमलो की और निर्मलो की सगति मिलती रही। वैसी सगति मे कितने ही जन्म बीते, हानि नही होगी।

☆☆☆

पवनार आगमन

सन् 1938 की बात है। मेरा शरीर अत्यत क्षीण हो गया था। वजन 88 पौड तक नीचे आ गया था। ईश्वर के पास जाने की घडी आ रही है, ऐसा लग रहा था। इसलिए मेरा मन प्रसन्न था, लेकिन मित्रो को दु ख होता था। बापू के पास फरियाद गयी। मुझ पर 'समन' आया। मै गया। बापू बोले – 'मेरे पास रहो, मैं सेवा करूगा।'

मैने कहा, आपकी सेवा पर मेरा जरा भी भरोसा नही। आपको पचास काम है। उनमे से एक काम बीमारो की सेवा का। और उसमे भी पचास रोगी। उनमे से एक मै। इससे क्या भला होगा ? बापू हसने लगे, बोले, ठीक है, डॉक्टर के पास जाओ। मैने कहा, उसकी अपेक्षा तो यमराज के पास जाना ठीक। तो बापू बोले, वायु-परिवर्तन के लिए कही जाओ। अलग-अलग स्थानो के नाम बताते गये नैनिताल, मसूरी और उत्साहपूर्वक एक-एक का वर्णन करते गये।

आखिर मैने कबूल किया कि आपकी बात मजूर है कि स्वास्थ्य सुधार के लिए कही जा कर रहू, लेकिन मेरा स्थान दूसरा है। वर्धा से छ मील दूर पवनार मे जमनालालजी का बगला खाली पडा है, वहा जा कर रहूगा। तब बापू ने कहा, ठीक ही है, ठडी हवा के स्थान तो श्रीमानो के लिए होते है, गरीब हवाफेर के लिए दूर कहा जा सकते है ? तुम पवनार जाओ, बशर्ते कि सभी कामो का बोझ छोड दो। तुम्हे सारा चितन बद करना पडेगा। आश्रम की अथवा दूसरे किसी काम के विषय मे चिता या विचार नही करना होगा। मैने कहा, जी हा, ऐसा ही करूगा।

मेरा स्वास्थ्य इतना अधिक कमजोर था कि पैदल चल नही सकता था। इसलिए नालवाडी से मोटर से पवनार गया। बापू के पास कबूल किया था, इसलिए जब मोटर पवनार पहुची और धामनदी का पुल पार कर रही थी, तब मैने तीन वार, "सन्यस्त मया, सन्यस्त मया, सन्यस्त मया" (मैने छोडा, मैने छोडा, मैने छोडा) कहा। सबकुछ छोड कर बिलकुल खाली मन से पवनार पहुचा (7 3.1938)। दिनभर कोई खास काम नही रखा था। हॉल मे घूमता था और कुछ थोडा खेत मे खोदता था। मेरा मुख्य काम खेत मे बैठ कर पत्थर चुन कर इकट्ठा करने का था। वह मेरे लिए ऐसा काम था कि दो साल भी चल सकता था। कोई मिलने आता तो वह भी मेरे साथ पत्थर इकट्ठा करने लगता।

फिर दोपहर मे कुछ समय वर्धा-नागपुर रास्ते की तरफ देखता रहता। कितनी मोटरे गयी, कितनी बैलगाडिया गयी, कितनी साइकिले, कितने लोग पैदल गये ? 11 से 12 बजे तक कितने गये ? 12 से 1 तक मे कितने गये ? इस प्रकार खेल चलता।

इन सारी क्रियाओ मे चित्त को अलग रखता था। वह अलग

रखना कोई क्रिया नही थी । नही तो एक वाह्य क्रिया और दूसरी चित्त को उससे अलग रखने की क्रिया, इस तरह दो क्रियाओ से पीडित हो जाता । दो वोझ उठाने की अपेक्षा एक ही उठाना ठीक है ।

व्यायाम के लिए खेत मे खोदने का काम मैने शुरू किया । पहले दिन पाच मिनट खोदा । दूसरे दिन दो मिनट वढाये । तीसरे दिन पाच मिनट वढाये । यो करते-करते दिनभर मे दो घटे खोदने लगा । खोदने की क्रिया भी वैज्ञानिक ढग से करता था । वीच-वीच मे रुक जाता था । फिर तो लगातार एक घटा खोद लेता था, लेकिन उसमे भी वीच-वीच मे कुछ सैकड रुक जाता था । इससे ताकत वनी रहती थी । इस व्यायाम से वहुत लाभ हुआ । दस महीने मे 40 पौड वजन वढा । 88 से 128 पौड हो गया ।

पवनार गाव धामनदी के इस ओर था और हमारा यह स्थान धाम के उस पार था । तो मैने इसको नाम दिया, 'परधाम' । गीता मे आता है, **यद् गत्वा न निवर्तन्ते तत् धाम परम मम** (जेथ गेला न परते माझे अतिम धाम ते –गीताई) । परधाम मे स्वास्थ्य सुधरता गया, वैसे धीरे-धीरे गाव से सपर्क वढाया । गाव में एक परिश्रमालय शुरू किया, जहा गाव के लोग सूत-कताई के लिए आते थे । परधाम मे एक शेडनुमा मकान वाध कर वहा करघे विठा दिये । वुनाई का काम शुरू किया । पवनार, कान्हापुर गाव के कुछ वच्चे बुनाई सीखने आने लगे । ये लोग आज भी परधाम में किसी न किसी काम मे लगे हुए है ।

एकवार मै पवनार के वाजार मे कवल खरीदने गया । कवल ले कर एक वहन वेचने वैठी थी । उसने भाव वताया, एक कवल का डेढ रुपया । मैने उससे पूरी जानकारी पूछी, ऊन क्या भाव पडी ? वुनाई मे कितना लगा ? भेडे पालने मे कितना

खर्च आता है ? वह पहचानती थी कि यह पवनार के आश्रम मे रहनेवाला आदमी है, इसलिए उसने मुझे सब बता दिया । फिर मैने हिसाब लगा कर कहा कि यह कबल पाच रुपये से कम मे पडता ही नही होगा, फिर तुम डेढ रुपयो मे कैसे दे रही हो ? कहने लगी, पाच रुपये कैसे वताऊ ? डेढ बताया तो सवा मे मागते है । मैने कबल ले लिया और पाच रुपये दे दिये । उसे लगा, यह कलियुग है या सत्ययुग ।

फिर क्या हुआ ? हमारे परिश्रमालय तथा आश्रम मे बच्चे कताई-बुनाई के लिए आया करते थे । वे रोज के तीन-चार आने कमा लेते थे । उन दिनो मजदूरो को भी दो-सवा दो आना मजदूरी मिलती थी । मैने उन बच्चो को कबल की कहानी बतायी और कहा कि तुम लोग बाजार-भाव बढाना सीखो, कारण बाजार-भाव न बढाना गरीबो को लूटना है । तुम लोगो को तीन-चार आना मजदूरी मिलती है, तो एक बात करो । बरसात के दिनो मे घास का बोझ बाध कर औरते आती है । तुम उसे दो आने मे खरीदो । बच्चों ने मान लिया और वे बाजार मे पहुचे । वहा घास बेचनेवाली कहती, तीन पैसा बोझ, तो दूसरे खरीददार कहते, दो पैसा । ये बच्चे कहने लगे, इसकी कीमत तो दो आना है । ग्राहक कहता, बहुत बढा-चढा कर बोल रहे हो, कौन इसे दो आना देगा ? बच्चे ने कहा, मै ही दूगा । और सचमुच दो आना दे कर उसने वह बोझ खरीद लिया ।

हम सभी इसी मे होते है कि दूसरे को कैसे लूटा जाये । सबका हित सधे यह भाव है नही । भगवान गीता मे हमसे कहते है कि एक-दूसरे की रक्षा कर कल्याण के भागी बनो । बच्चो को मै यही समझाता था । यह भाव समाज मे पनपना चाहिए ।

प्रसाद-दान

एकवार खोदते-खोदते जमीन मे पत्थर लगा। इधर-उधर कुदाल चला कर देखा कि पत्थर जरा लवा-सा है। मुझमे उस समय इतनी ताकत तो नही थी कि मै ही खोद कर उसको वाहर निकालू। तो दूसरो ने आ कर उस पत्थर को वाहर निकाला, तो क्या देखा? भरत-राम-मिलन का सुदर शिल्प! 1932 मे धुलिया जेल मे गीता पर मेरे प्रवचन हुए थे। वारहवे अध्याय मे सगुण-निर्गुण का वर्णन करते हुए मिसाल के तौर पर लक्ष्मण और भरत की भक्ति का जिक्र मैने किया था। और कहा था कि अगर मै चित्रकार होता तो चौदह साल के वाद भरत-राम प्यार से मिल रहे है, इसका ऐसा-ऐसा चित्र खीचता। यह शिल्प ठीक उसी प्रकार का था जैसा गीता-प्रवचन मे शब्दाकित किया था।

मै उस मूर्तिदर्शन से गद्‌गद हो गया। वह भगवान का प्रसाद मुझ पर हुआ मान कर, मैने उस पर मेरी श्रद्धा-भक्ति सवकी सव एकाग्र की। दो-तीन वरसो वाद उस मूर्ति की स्थापना वैदिक पद्धति से करायी। मैने भी कई वैदिक सूक्त और ज्ञानदेवमहाराज का 'धर्म जागो निवृत्तीचा' भजन गा कर मेरी श्रद्धाजलि समर्पित की। कई दिन मै वहा वैठ कर ज्ञानदेव-तुकाराम-नामदेव-एकनाथ-तुलसीदास आदि के मधुर भजन गाता रहा।

लोगो ने मुझसे पूछा, क्या आप मूर्ति-स्थापना मे मानते है? मैने जवाव दिया, योजनापूर्वक किसी मूर्ति की स्थापना करने की मेरी वृत्ति नही है, परतु जमीन मे से मेरे हाथ को प्राप्त हुई इस मूर्ति को पत्थर मानने जितना पत्थर मै नही हू। मैने इसको भगवत्-प्रसाद के रूप मे माना है इसलिए प्रतिष्ठापना की।

बापू का बुलावा

सन् 1940 की एक सुदर सुबह मुझे बापू की तरफ से बुलावा आया कि मिलने आओ। वैसे उनके और मेरे निवासस्थान मे पाच मिल का फासला था। लेकिन मिलने का मौका तो तब आता था जब वे बुलाये। साल मे दो-तीन पत्र आते-जाते होगे। वे जानते थे कि यह शख्स अपने काम मे मशगूल है, इसलिए इसे ज्यादा तकलीफ नही देनी चाहिए। लेकिन उस दिन अचानक बुलावा आया। इसलिए मै उनके पास पहुचा। बापू मुझसे कहने लगे कि इस वक्त मुझे तेरी सेवा की जरूरत है। मै नही जानता कि तू खाली है या नही। लेकिन अभी व्यक्तिगत सत्याग्रह करना है और मै चाहता हू कि अगर तू बिना कुछ विशेष तकलीफ के मुक्त हो सका तो तैयार हो जाओ।*

मैने विनोद मे कहा, मै आपका बुलावा और यमराज का बुलावा समान मानता हू। इसलिए मुझे जरूरत नही कि मै वापस जाऊ। सीधे यही से काम के लिए जा सकता हू। बापू को बहुत समाधान हुआ।

यद्यपि मै अनेकविध प्रवृत्तियो मे था – शायद ही बापू की ऐसी कोई रचनात्मक प्रवृत्ति हो, जिसमे मै कुछ न करता था, और

---

*उस समय महादेवभाई ने लिखा था –"बापू के शायद ही किसी अनुयायी ने सत्य-अहिंसा के पुजारी और कार्यरत सच्चे सेवक उतने पैदा किये हो, जितने कि विनोबा ने पैदा किये है। उनके विचार, वाणी और आचार मे जैसा एकराग है, वैसा एकराग बहुत कम लोगो मे होगा, इसलिए उनका जीवन मधुर सगीतमय है।" – स

मेरी अपनी बाते भी करता था – लेकिन मुझे समर्थ रामदासस्वामी का मार्गदर्शन मिला था । बचपन मे मैंने उनका यह वचन पढा था –**परस्परे चि उभारावे भक्ति-मार्गासी** । यानी भक्तिमार्ग की स्थापना सीधे, स्वय उसके अदर न फसते हुए करनी चाहिए । इसका मेरे चित्त पर गहरा असर था । उसके अलावा गीता का मार्गदर्शन तो था ही । उसके अनुसार मैंने जितने भी कार्य किये वे इस ढग से नहीं किये कि मेरे विना वे चल ही न सके । जब मैंने बापू से यह कहा तब उन्हे अच्छा लगा । फिर चद दिनो मे मै व्यक्तिगत सत्याग्रही के नाते निकल पडा और जेल मे पहुच गया ।

कारावास-आश्रम

सच्चे आश्रमी जीवन का अनुभव तो जेल मे ही हुआ । गिनती के कपडे, पानी का टमलर और एक कटोरा, बस इतना ही सामान । इससे अधिक असग्रह-व्रत का पालन और कहा हो सकता था ? नियमानुसार नहाना, खाना, काम करना और घटी की आवाज पर सोना और जागना । नियमित जीवन ! बीमार पडने की भी अनुमति नही । भोजन मे अस्वाद-व्रत का पालन तो प्रतिदिन होता ही था । इससे अधिक सयम का पालन हम आश्रम मे कहा कर पाते है ? और फिर चितन-मनन के लिए भरपूर समय ! जेल भी आश्रम-जीवन की साधना का अग बन सकता है ।

जेल मे सबके साथ रहने का जो मौका मिलता गया, उससे मुझे बहुत लाभ हुआ । व्यक्तिगत सत्याग्रह के पहले दो बार जेल जाना हुआ था । पहली बार 1923 मे नागपुर झडा सत्याग्रह के सिलसिले मे पकडा गया था । उस समय पहले मुझे नागपुर जेल मे

रखा, फिर वहा से अकोला जेल मे भेज दिया। उस समय अपराधी लोगो के लिए जो धारा लगायी जाती है, वही मुझ पर लगायी गयी थी, इस कारण जेल मे मुझे पत्थर तोडने की सख्त मजदूरी का काम दिया गया था।*

वहा मुझे एक दफा 'सालिटरी सेल' (एकात कोठडी) मे रखा। छोटा-सा आठ फीट चौडा और नौ फीट लबा कमरा था। एक ओर चक्की पडी थी और एक ओर पेशाब का मटका। काम कुछ दिया नही था। पढने के लिए किताबे, पेन्सिल, कागज कुछ भी साथ नही रखने देते थे। बाहर जाने की भी छूट नही। बिलकुल पागल बनने का ही कार्यक्रम था। परतु मैने तो अपना दिनभर का कार्यक्रम बना लिया था। कुल दस घटे सोता था। दो-तीन घटे ध्यान। तीन-एक घटे खाना-पीना, नहाना-धोना इत्यादि। और आठ घटे घूमना। दिनभर मे कम से कम दस मील घूमता था। मै मानता था कि मेरी गति डेढ मील घटे की थी। जो पद्य मुझे कठस्थ थे, वे गाता रहता था।

एकबार रात को एक बजे रोज की भाति मै चक्कर काट रहा था और मेरा चिंतन चल रहा था। उतने मे वार्डर आया। उसने

---

*स्व. श्री राजगोपालाचारी विनोबाजी से मिलने जेल गये थे और फिर एक लेख मे उन्होने लिखा— 'देवदूत के समान इनकी पवित्र आत्मा विद्वत्ता, तत्त्वज्ञान और धर्म के ऊचे शिखरो पर विहार करती है। इसके बावजूद इस आत्मा ने जो विनम्रता धारण कर रखी है, वह इतनी परिपूर्ण है और दिल की सचाई इतनी सहज है कि जो अधिकारी इन्हे नहीं पहचानता, उसे तो इनकी महानता का पता तक नही चलता। इनको जिस श्रेणी मे रखा है, उस श्रेणी के लिए निश्चित की गयी मजदूरी के अनुसार ये बराबर पत्थर तोडते रहते है। अदाज ही नहीं होता कि यह मनुष्य चुपचाप कितनी शारीरिक यातनाए सहन कर रहा है।'— स

मुझे चक्कर काटते हुए देख कर दरवाजा खटखटाया। मै तो चिंतन मे डूबा हुआ था, जवाब कौन देता? वह बेचारा घबडा गया, नजदीक आ कर हिला कर मुझे पूछने लगा, क्या हुआ हे? फिर मंने चितन का अर्थ, चिंतन के परिणाम आदि उसको समझाये, तो खुश हो गया। दूसरे ही दिन प्रसादरूप मे उसने मुझे थोडी देर खुली जगह घूम सकू ऐसी जगह दी।

उस कोठरी मे आराम मालूम होता था। रात को तीन घटे ध्यान करता था। एक सिपाही रोज मुझे देखता और वहा आ कर बैठ जाता। एक दिन लालटेन ले कर आया। मेरी आखे वद थी। थोडी देर राह देख कर उसने मुझे पुकारा, बाबूजी, मै कुछ बोलना चाहता हू। मेरी आखे खुल गयी। वह कहने लगा, मै कल जानेवाला हू, मुझे कुछ उपदेश दीजिए। उसने सोचा रोज आखे वद कर के बैठता हे, कोई साधु-योगी होगा। फिर मैने उसके समाधान के लिए कुछ बाते बतायी। वह प्रसन्न हो कर चला गया।

पद्रह दिन मुझे वहा रखा था। उस वक्त गीता का श्लोक मुझे खुल गया –

> कर्मण्यकर्म य. पश्येद अकर्मणि च कर्म य
> स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्त कृत्स्नकर्मकृत् [4 18]

आखिर जेलर ने देखा कि इसको यहा कोई तकलीफ नही, अपनी मस्ती मे रहता है, तो वापस जनरल वार्ड मे भेज दिया। मेरे लिए तो वहा भी आनद ही था।

1932 मे धुलिया जेल मे छ माह रहा। हमारे साथ बहुत-से साथी ऐसे होते थे, जिनको जेल का जीवन नीरस लगता था, क्योंकि उनको सातत्य की कला नही सधती थी। उनको मानसिक कष्ट भी हुआ करते थे। इसलिए जो भी कोई जेल मे थे, उनको आनद देना

मेरा काम होता था। हमारे साथ के भाइयो की हिम्मत न टूटे – माफी वगैरह मागने का तो सवाल ही नही था, पर उन्हे वहा के जीवन मे रुचि पैदा हो, इसकी कोशिश करना, यह मेरा धधा था। इस वास्ते जो भाई मुझसे पहले परिचित थे और बाद मे मेरे साथ जेल मे थे, वे कहते थे कि विनोबा जेल मे जाते है तो एकात का प्रेम वे बिलकुल भूल जाते है। धुलिया जेल मे ऐसा एक भी राजनैतिक कैदी नही था, जिससे मेरा व्यक्तिगत परिचय न हुआ हो। घटो बाते चलती थी। और मेरा उनको रिझाने का कार्यक्रम चलता था।

उस वक्त राजनैतिक कैदियो को काम दिया जाता था, लेकिन वह 'सी' क्लासवालो को दिया जाता था। मुझे 'बी' क्लास मिला था। लेकिन मैने 'बी' क्लास की सहूलियतो का स्वीकार नही किया और जेल मे जाते ही जेलर से काम मागा। जेलर कहने लगे कि आप तो पहले ही कमजोर है, आपको हम कैसे काम दे सकते है? मैने कहा, मै यहा खाना खाता हू, बिना श्रम किये खाना, यह मेरा धर्म नही है, इसलिए अगर काम न मिला तो कल से मुझे खाना छोडना पडेगा। जेलर बोले, ठीक है, लेकिन हम आपको काम नही देगे, आप ही जो चाहिए वह करिए।

उस समय सारे जेल को (राजनैतिक कैदियो को) मुझे मेरे हाथ मे लेना पडा, क्योकि स्थिति ऐसी थी कि वैसा न करता तो वहा कोई अनुशासन ही न रहता। लोग बगावत करने पर तुले थे, जिद पर अडे थे। कोई किसी की कुछ सुनता नही था। करीव 300 स्वतत्रता-सग्राम-कैदी वहा थे। मैने तय किया कि स्वराज्य के सिपाही को स्वराज्य के अनुशासन के तौर पर हररोज कुछ श्रम का काम करना होगा। उस समय जेल का 'टास्क' (काम) रोज 35

पौड आटा पीसने का था । मैने जेल के अधिकारियो से कहा कि ये लोग इतना 'टास्क' नही करेगे । आपने डडा-वेडी पहनाई तो भी नही सुनेगे । इसलिए आप 35 पौंड का आग्रह मत रखिए । पूरी जेल का आटा पीसने का ठेका हम ले लेते हे और रसोई का जिम्मा भी हम उठा लेते हे । जेल के अधिकारियो ने उस बात को स्वीकार किया । फिर मैने सवको कहा कि जिनको सादी सजा हुई है उन्हे भी 21 पौड पीसना होगा । पहले तो सव तैयार नही हुए, उन्हे लगा विनोवा को तो कुछ करना-धरना नही होगा, हम फस जायेगे । लेकिन मै खुद भी पीसने लग गया, तो सवके सव उत्साह से उस काम मे लग गये । छोटे-वडे सभी अपना हिस्सा पूरा कर देते थे, वीमार और वूढो का भी पूरा कर देते थे । पीसते समय ज्ञान-चर्चाए चलती । फिर तो वह जेल नही रही, आश्रम ही वन गया ।

रसोई वनाना भी हमने अपने हाथ मे ले लिया और उत्तम से उत्तम लोग उस काम मे लग गये । दाल पक जाने पर घोटी जाती थी । जितना समय पकाने को लगता, उतना ही समय दाल घोटने मे लगाया जाता । उस कारण सभी को उस दाल की याद रह गयी । वह दाल इतनी सुदर वनती थी कि जेल के लोग कहते थे कि ऐसी दाल और कही नही मिलेगी । उस समय हममे केवल 10-12 लोग फीका – विना मिर्च-मसाले का खानेवाले थे । वाकी सारे तीखा खानेवाले थे । परतु आहिस्ता-आहिस्ता असर ऐसा हुआ कि राज-नैतिक कैदी सभी फीकी दालवाले वने और फीकी दालवालो की ही पक्ति वनी । फिर दूसरे कैदी कहने लगे कि हम भी फीकी दाल खायेगे । फिर तो उनकी सख्या इतनी वढ गयी कि जेलर को कहना पडा कि इन कैदियो के स्वास्थ्य की जिम्मेदारी हम लोगो पर होती है, उन्हे निश्चित रेशन देना ही पडता है, जिसमे मिर्च भी शामिल

है, इसलिए आप इस बात को न उठाये । मैने उन कैदियो से कहा कि आप लोग घर जाने पर फीकी दाल खाइए, यहा तीखा ही खाइए।

ऐसा सारा धधा वहा करना पडता था। तो लोगो को आश्चर्य लगता था कि यह शख्स तो एकातप्रिय है, फिर जेल मे ही इतना समाजप्रेमी क्यो बनता है ? मै पूछता था कि क्या आप मुझे असामाजिक तत्त्व मे गिनते है ? वहा इस प्रकार करना पडता था, क्योकि सबका मनोरजन हो। कभी किसी को पत्र आता था, पर जेलर देते नही थे। मै जेलर से कहता, क्यो नही बेचारे का पत्र देते हो ? वह कहते, देनेलायक नही है। उसी प्रसग को ले कर मैने गीता-प्रवचन मे कहा था कि हवा आती है, सदेश दे कर जाती है। घर का पत्र नही आया तो क्यो इतनी बेचैनी होती है ? व्यक्तिगत भी समझाता कि ऐसी चिता करना यानी परमेश्वर नही है, ऐसा मानना है। इस तरह वे मजबूत रहे, ऐसी मेरी कोशिश रहती।

धुलिया जेल मे तो मुझे सतसमागम ही मिला। सानेगुरुजी, जमनालाल बजाज, आपटेगुरुजी जैसे लोग वहा थे। इन सबने सोचा कि विनोबा गीता पर रोज कुछ कहे। मैने कबूल किया और हर इतवार को मै गीता पर प्रवचन करने लगा। और सानेगुरुजी ने वे सारे प्रवचन शब्दश लिख लिये। यह भगवान की कृपा ही थी कि सानेगुरुजी जैसा सिद्धहस्त व्यक्ति प्रवचन लिख लेने के लिए मिला। उनके और मेरे हृदय मे इतना-सा भी अतर नही था, इतने हम भावना से एकरूप थे। ऐसे व्यक्ति ने गीता-प्रवचन लिख कर दुनिया पर बडा उपकार किया है। उस समय किसी को यह ख्याल तक नही था कि जेल मे हुए ये प्रवचन देशभर मे सभी भाषाओ मे फैलेगे। परतु ईश्वर जिस बात को करना चाहता है, वही होती है। अन्यथा, जेल के जीवन मे किसी बात की निश्चितता नही होती है।

किसी को भी, कभी भी, कही भी भेजा जाता है। सरकार मुझे कही भी भेज सकती थी या सानेगुरुजी को भी भेज सकती थी। छोड दे सकती थी। परतु ऐसा कुछ भी नही हुआ। अठारह अध्यायो पर प्रवचन वहा पूरे हुए। गीता तो रणक्षेत्र पर ही कही गयी थी। वहा भी यही भावना थी कि हम स्वतत्रता-सग्राम के सैनिक है।

वे पवित्र अनुभव मै कभी भूल नही सकता। गीता-प्रवचन करते हुए मेरी क्या वृत्ति थी, मै शब्दो मे कह नही सकता। परतु अगर कुछ शब्द परमेश्वर मनुष्य की ओर से बुलवा लेता है, ऐसा हो तो माना जायेगा कि वे सभी शब्द परमेश्वर ने ही बुलवा लिये ह। प्रवचन करते हुए मुझे ऐसा आभास नही होता था कि मै बोल रहा हू और सुननेवालो को भी ऐसा आभास नही होता था कि विनोबा बोल रहा है।

गीता-प्रवचन पुरुष कैदियो के सामने होते थे। तब स्त्री कैदियो ने जेलर से माग की कि हमे भी प्रवचन सुनने का अवसर मिले। पुरुप कैदियो को स्त्री-विभाग मे जाने की इजाजत कभी मिलती नही। परतु उस समय के वैष्णव नामक जेलर ने कहा कि विनोबा की गिनती स्त्रियो मे करने मे हर्ज नही। यो कह कर उस साहसी जेलर ने मुझे स्त्री कैदियो के सम्मुख प्रवचन देने की इजाजत दे दी। मैने उन्हे कहा, आप स्वय उस समय उपस्थित रहे। उसके मुताबिक वे खुद आते थे और अपनी पत्नी को भी साथ ले आते थे। इस प्रकार सप्ताह मे एक दिन स्त्रियो के बीच प्रवचन शुरू हुए। फिर दूसरे आम कैदियो ने भी माग की कि हमे भी विनोबाजी के प्रवचन सुनने को मिले। जेलर ने मुझे पूछा कि क्या आप यह करेगे? मैने कहा कि रविवार का दिन (उस दिन प्रवचन होते ही थे) छोड कर दूसरे किसी भी दिन आप उन्हे एक घटा छुट्टी दे तो मै उन्हे कुछ कहूगा।

आदोलन के उन दिनो मे भी उस बहादुर जेलर ने बुधवार को एक घटे की छुट्टी दे कर मेरे प्रवचन आम कैदियो मे करवाये। उनमे से कुछ कैदी बगीचे मे काम करते थे। वे प्रेम से फूलो की माला बनाते और मुझे देते थे। फासी के कैदियो को भी जेलर ने प्रवचन सुनने आने दिया।

उस समय जेल का सारा वायुमडल आध्यात्मिक भावना से भरा हुआ था। उसी समय 'गीताई' धुलिया मे छप रही थी। मै उसके प्रूफ जेल मे देखता था। मै जेल से रिहा हो रहा हू, यह बात आम कैदियो को मालूम हुई तब उन्होने जेल के सुपरिटेडट से माग की कि हमने अपनी मेहनत से कमाये पैसो से हमे दो आने दीजिए। किसलिए ? तो बोले, हमे गीताई खरीदनी है। एक आना गीताई के लिए और एक आना हमे विनोबा को दक्षिणा देनी है। इस प्रकार उन कैदियो का बहुत प्रेम मुझे मिला, जिसे मै कभी भूल नही सकता।

सन् 40 मे व्यक्तिगत सत्याग्रह मे तीन बार पकडा गया और लगभग पौने दो साल जेल मे गये। बापू ने मुझे भारत की ओर से व्यक्तिगत सत्याग्रही बनने का आदेश दिया था। जेल जाने के बाद सोचने लगा कि अखिल भारत का प्रतिनिधित्व करना है तो हिंदुस्तान की कुल भाषाए सीख लेनी होगी। परतु मुझे तो विश्व का प्रतिनिधित्व करना है इसलिए दुनिया की भाषाओ का ज्ञान भी प्राप्त करना होगा। इसलिए उस वक्त और फिर अगस्त आदोलन मे पाच साल का जो समय जेल मे मिला, उसमे मैने बहुत अध्ययन किया। अत्यत गहराई से किया। रोज 14-14, 15-15 घटे पढता था। नागपुर जेल मे तो मै अरबी उच्चारण के लिए रेडियो पर कुर्आन सुनता था।

42 के आदोलन के पहले की बात है। गाधीजी का विचार था कि इस बार जेल मे जाऊगा तो अदर पैर रखते ही उपवास शुरू कर दूगा। जेल मे पडे रहने की बात अब पुरानी हो गयी। हम

अंग्रेजो का राज्य मान्य नही करते और उनको यहा से चले जाने को ही कहते है, तो अब जेल मे जाते ही उपवास शुरू करना है। यह सब उनके मन मे मथन चल रहा था।

यह कौन कर सकता है, बलिदान वही कर सकता है, जिसके दिल मे प्रेम भरा हो। कोई एक व्यक्ति कर भी सकता है, लेकिन क्या उसका आदोलन भी चल सकता है ? सेना मे लाखो लोगो की भरती हो सकती है, तो क्या इसमे भी ऐसा हो सकता है ? गाधीजी को लगा कि ऐसा हो सकता है और इसका आरभ स्वय से ही होगा। यह बात मालूम होते ही सब घबरा गये। सब सोचने लगे कि किसी न किसी तरह से इसे रोका जाये। फिर, उपवास की शृखला आगे नही चल सकती, उपवास के लिए सेना नही बन सकती, आदेश से ऐसे काम नही होते – इस प्रकार के विचार बापू के आसपासवालो के रहे।

ऐसी स्थिति मे बापू ने मुझे सेवाग्राम बुलाया और अपनी बात मेरे सामने रखी। सवाल यह था कि जो काम ज्ञानी ज्ञानपूर्वक कर सकता है, क्या वही काम अनुयायी श्रद्धा से कर सकता है ? मैने जवाब दिया, जी हा, कर सकता है। जो काम रामजी ज्ञानपूर्वक कर सकते है, वही काम हनुमानजी श्रद्धापूर्वक कर सकते है। बात पूरी हो गयी और कुछ विचार करने को रहा नही। मै उठ कर चला गया।

फिर तो 9 अगस्त का दिन आया। बापू गिरफ्तार हो गये। लेकिन तब उनके मन मे था कि अभी उपवास न किया जाये, शुरू मे तो सरकार के साथ कुछ पत्रव्यवहार चलेगा इसलिए अभी उपवास का विचार नही हो सकता। मेरे साथ तो उनकी ऊपर उल्लेख आया है उतनी ही बात हुई थी। यह आगे की बात मै जानता नही था।

उस समय प्यारेलालजी वाहर थे। वापू ने उनसे कहा कि विनोबा के पास खबर पहुचाओ कि जेल मे प्रवेश करते ही उपवास शुरू नही करने हैं। वापू ने यह मान ही लिया था कि यह मनुष्य मेरे साथ इतनी चर्चा कर के गया है – यद्यपि मै कोई वचन से वधा नही था– इसलिए वह तो जेल मे जाते ही उपवास शुरू कर देगा। उन्होने कोई आज्ञा तो नही दी थी, लेकिन उन्होने मेरी राय पूछी थी कि क्या ऐसा हो सकता है और मैने कहा कि ऐसा हो सकता है। इसलिए आज्ञा से अधिक कीमती चीज मिल चुकी थी।

उन्ही दिनो मै भी जेल गया। जेल मे जाते ही मैने जेलर से कहा– आप तो मुझे जानते है। जेल के तमाम नियमो का मै वारीकी से पालन करनेवाला और दूसरो से करानेवाला भी हू। लेकिन इस वार ऐसा नही होगा। सवेरे तो मै खा कर आया हू। इसलिए दोपहर के भोजन का सवाल नही। लेकिन शाम से मै भोजन नही करूगा, कव तक नही करूगा यह नही जानता। यह आपका अनुशासन तोडने के खातिर नही, लेकिन मेरा अपना एक अनुशासन है उसके पालन के लिए करना है। इतना कह कर मै भीतर चला गया।

दो घटे वाद वुलावा आया। वापू का कहा हुआ सदेशा प्यारेलालजी ने किशोरलालभाई के पास भेजा था। किशोरलालभाई ने डिप्टी कमिशनर से पूछा और उन्होने गवर्नर से पूछा कि क्या ऐसा सदेश दे सकते हैं? गवर्नर ने कहा कि दे सकते है, पर इससे एक शव्द भी अधिक नही वोल सकते। डिप्टी कमिशनर ने कहा कि ठीक है, आपका सदेशा पहुचा दिया जायेगा। किशोरलालभाई ने कहा, यो तो वे आपके कहने से नही मानेगे। हममे से किसी को जाना पडेगा। वाद मे वालुजकर आये और उन्होने वापू का सदेशा मुझे सुनाया। इस तरह मेरा यह उपवास नही हुआ। लेकिन यहा

मैं अपने हृदय की अनुभूति व्यक्त करना चाहता हू कि जितने आनद से वापू उपवास करते, उससे लेशमात्र कम आनद मेरे उपवास मे नही होता, यह मेरा दावा है ।

ज्ञान तो मुझे नही था, वह तो वापू के पास था, लेकिन मैंने तो श्रद्धा से माना था । श्रद्धा से आज्ञा मान कर अत्यत आदरपूर्वक और प्रेमपूर्वक अपना वलिदान दिया जा सकता है, इसमे मुझे कोई शका नही ।

वर्धा से मुझे नागपुर जेल मे भेजा गया और फिर खतरनाक कैदी समझ कर नागपुर से वेलूर जेल मे लाया गया । वहा पहुचने पर जव जेलर ने पूछा कि आपकी आवश्यकताए क्या है, तो मैंने कहा कि आज मेरी दो आवश्यकताए है। एक तो मेरे वाल वढे है इसलिए हजामत करने के लिए हजाम चाहिए । दूसरा, मुझे तमिल पढानेवाला आदमी चाहिए, क्योकि मै तमिल प्रात मे आया हू और उसी का अन्न खानेवाला हू । आठ वजे हजामत हुई और स्नान कर के वैठा । तो जेलर ने वही के एक शख्स को मेरे पास भेजा । उसके पास खास कोई ज्ञान नही था । यद्यपि उस जेल मे तमिल जाननेवाले सैकडो थे, मुझे उनसे अलग रखा गया था । उस भाई को थोडी-सी अग्रेजी मालूम थी । उससे मैने तमिल सीखना शुरू किया । दस-वारह दिन के वाद तेलुगु शुरू किया । फिर दस-पाच दिन के वाद कन्नड और मलयालम् । इस तरह मैने एक महीने के अदर चारो भाषाए सीखना शुरू कर दिया । किसी ने पूछा, आप चारो भाषाओ का अध्ययन एकसाथ क्यो करते है ? मैने कहा, पाचवी नही है इसलिए । चारो भाषाओ का एकत्र अध्ययन करने से उनका तुलनात्मक अध्ययन मैं कर सका ।

वेलूर जेल मे सव प्रकार की सहूलियते मिलती थी । लोगो के

मागने पर सरकार की ओर से मदद मिलती थी । मुझे लगा, हमारे आदोलन को तेजोहीन वनाने के लिए यह बेहतर तरीका है । हम सहूलियते मागे और सरकार देती रहे, यह मुझे अच्छा नही लगा । लगा कि उससे हमारा जीवन निस्तेज वन रहा है । उधर वगाल मे अकाल पडा था, लेकिन इधर हम चौपाई, कुर्सी मागते । अगर वह न मिले तो उसके लिए झगडा करते और उसे लडने का नाम देते । आखिर सरकार कवूल कर ही लेती । तो लगता कि हमारी विजय हुई, फतह हुई । पर इसमे कैसी विजय और कैसी फतह ? इसमे तो निरी मूर्खता और हमारी पराजय थी ।

फिर अत मे मुझे वेलूर से सिवनी जेल भेजा गया । वहा दिवगत भारतन् कुमारप्पा हमारे साथ थे । उन्होने इच्छा व्यक्त की कि मै उनको हिंदी सिखाऊ । मैने वह मान्य किया । और उनको हिंदी सिखाने के माध्यम के तौर पर तुलसीरामायण ली । रामायण का महत्त्व मैने उनको आरभ मे एक सूत्रमय वाक्य मे कह दिया—जहा तक हिंदी का ताल्लुक है, तुलसीरामायण यानी वाइविल और शेक्सपीअर इकट्ठा । दो महीने अध्ययन करने के वाद उन्होने मुझसे कहा कि आपका वह प्रशसा-वाक्य सर्वथैव सत्य है । एक ही वाक्य मे आपने सारा सार वता दिया । मैने कहा, ईसाइयो का धर्मग्रथ वाइबिल है । उसकी भाषा मीठी और सरल है । शेक्सपीअर भी महान कवि और नाटककार हो गया है । अंग्रेजी भाषा मे उसका अद्वितीय स्थान है । साहित्य की दृष्टि से उसकी योग्यता महान और अध्यात्म की दृष्टि से वाइविल की योग्यता महान । इन दोनो गुणो का सुभग समन्वय तुलसीरामायण मे हुआ है ।

राजनैतिक कैदियो के लिए एक सहूलियत यह थी कि पढने के लिए कितावे मिलती थी । जेल का अफसर मागी हुई पुस्तको को

देख कर आपत्तिजनक पुस्तको पर रोक लगाता और देने जैसी कितावें दे देता । मेरी मागी हुई कितावो पर कभी रोक नही लगी, क्योकि मै तो गीता, उपनिषद ऐसी ही पुस्तके मगवाता । एक दिन किसी ने कहा, हम सत्रह कितावें मागते है, तव उनमे से एक-दो मिलती है और विनोवा की सवकी सव कितावे मजूर हो कर आ जाती हे ।

मैने कहा, यह सरकार मूर्ख हे । खतरनाक क्या हे, उसकी उसे कोई पहचान ही नही है । अक्ल होती तो उपनिषद-गीता को सरकार जरूर रोकती । गीता का आधार नही होता तो अग्रेज सरकार के लिए महा खतरनाक गाधी गाधी न वनते, तिलक तिलक न वनते, श्रीअरविंद अरविंद न वनते । जिन ग्रथो मे जीवन का अधिष्ठान है, वे ही ग्रथ जुल्मी सत्ता मे वारूद लगा सकते हे ।

सिवनी जेल मे, राजनैतिक कैदियो को अपने रिश्तेदारो को पत्र लिखने की इजाजत थी, लेकिन दूसरे किसी को नही लिख सकते थे । मुझे यह आप-पर भेद मान्य नही था, तो मैने वहा से तीन साल किसी को पत्र ही नही लिखा ।

एकवार जेलर मेरे पास आ कर वैठ गये और पूछने लगे कि क्या आपके जीवन मे दु ख जैसी कोई चीज ही नही है ? मै आपको हमेशा आनद मे देखता हू । मैने कहा, दु ख है, पर वह कौनसा दु ख है, यह आप ही ढूढिए । मै आपको सात दिन का समय देता हू । एक हफ्ते के वाद जेलर आये और कहने लगे, मुझे तो कुछ मिल नही रहा, आप ही वताइए, कौनसा दु ख आपको है । मैने कहा, इस जेल मे सूर्योदय और सूर्यास्त का दर्शन नही होता, यह मेरा सवसे वडा दु ख है ।

मुझे याद है, व्यक्तिगत सत्याग्रह के वाद जव मै जेल से छूट कर आया और वापू से मिला, तव उन्होने कहा, 'विनोवा, यह अतिम

जेलयात्रा नही है, फिर से जेल मे जाना पडेगा।' मैने कहा, जी हा, तैयार हू। फिर बात चली। उन्होने मुझसे पूछा, जेल से क्या कुछ नया सोच कर आये हो? मैने कहा, जी हा, सोचा है। मुझे सारी सस्थाओ से मुक्त होना है। उसके बिना अहिंसा मे मेरी आगे गति नही होती। तब वे तुरत बोले, बहुत ठीक कहा। फिर उन्होने अपनी मौलिक भाषा मे मेरी बात का तरजुमा किया – यानी तू सब सस्थाओ की सेवा करेगा, लेकिन पद नही स्वीकारेगा।

नजदीक ही आशादेवी बैठी थी। उन्होने आशादेवी से कहा, अच्छा है, विनोबा मुक्त हो जाये, यदि तमाम उपाधियो से मुक्त हो कर चिंतन हो, तो परिणाम अच्छा आता है। उपाधिया सिर पर ओढ कर चिंतन करते है, तो वह चिंतन मुक्त नही होता। परिणाम मे इस तरह किसी नयी चीज की शोध नही होती।

बापू की मुहर लग गयी इसलिए बाद मे किसी की बहुत चली नही। बापू ने ही सब सस्थावालो को मेरी तरफ से समझा दिया।

42 के आदोलन मे अतिम बार जेल की यात्रा हुई और 45 मे जेल से मुक्त हुआ। उस समय भी चिंतन हुआ था और मैने सोच लिया था कि अत्योदय के लिए मुझे भगीकाम करना है।

☆☆☆

हरिजन-उपासना

अगर कोई यह कहेगा कि यह शख्स हरिजनो को भूल गया, तो मै कहूगा कि फिर हरिजनो को याद रखनेवाला शायद ही दूसरा कोई होगा। सर्वोदय मे अत्योदय होता ही है। लेकिन मुझे यह पसद नही कि हरिजनो की अलग से सेवा की जाये, क्योकि अगर

केवल हरिजनो की सेवा करेगे, तो गाव मे पहुचने पर लोग कहेगे 'यह आया हरिजन-सेवक'। 'यह आया रे हरिजन-सेवक,' 'यह आया रे खादीवाला' ऐसे वटे हुए, कटे हुए सेवको से हमारा काम नही चलेगा। अगरचे मै इस प्रकार मानता हू, हरिजनो से एकरूप होने के लिए मैने खास तौर से वर्षो तीन काम किये –(१) भगीकाम, (२) चमडे का काम, (३) वुनाई का काम।

हरिजन-कार्य के साथ मेरा वहुत ही पुराना सवध रहा है। इस कार्य का श्रीगणेश सावरमती आश्रम मे हुआ। आरभ के दिनो मे वहा भी भगी रखे जाते थे। उन्हे कुछ पारिश्रमिक दिया जाता था। जव मुख्य भगी वीमार हो जाता था, तव उसी का लडका वह काम करता था। एकवार ऐसा ही हुआ। वेचारा भगी का एक छोटा-सा वच्चा मल-मूत्र से भरी वालटी ले कर खेतो के गढे मे डालने जा रहा था। उससे वह वालटी ढोयी नही जा रही थी। वह परेशान था, रो रहा था। मेरे छोटे भाई वालकोवा को उसे देख कर दया आयी और वह उसी समय लडके की मदद मे पहुच गया।

वाद मे वालकोवा ने मुझसे पूछा कि मै भगी-काम करना चाहता हू, क्या इसमे आपकी सम्मति है? मैने कहा, वहुत अच्छा, तुम यह काम करो और मै भी तुम्हारे साथ आऊगा। मै उसके साथ जाने लगा। और सुरेद्रजी भी हमारे साथ आने लगे। इस तरह भगी-काम करना शुरू हो गया।

व्राह्मण लडको का भगीकाम करना एकदम नयी वात थी। वा को यह वात विलकुल पसद नही आयी। उन्होने वापू के पास शिकायत की। वापू ने उन्हे समझाया कि व्राह्मण हो कर भगीकाम करे, इससे वढकर दूसरी कौनसी अच्छी वात हो सकती है? इस तरह भगीकाम का प्रारभ करने मे वालकोवा की मुख्य तपस्या

रही है और सुरेंद्रजी सहायक रहे है । तभी से इस काम के साथ मेरा घनिष्ठ सबंध रहा है ।

सन् 1932 मे जेल से छूटने के बाद मै वर्धा के नजदीक नालवाडी नाम के गाव मे जा बैठा । वहा 95 घर हरिजनो के थे और पाच दूसरे थे । वहा हरिजन-सेवा शुरू कर दी । वहा गाव का उद्योग हाथ मे लेने के लिए ढोर चीरने का काम सीखना जरूरी हो गया । तब हमने उस काम का प्रशिक्षण पाने के लिए दो ब्राह्मण लडको को भेजा । उन्हे अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा । उन कठिनाइयो के बावजूद वे उसमे प्रवीण हो गये । फिर दोनो ने मिल कर नालवाडी मे चर्मालय चलाया (1 7 1935 से) ।

फिर सन् 1946 मे तो मैने भगीकाम करने का सकल्प ही कर लिया था । उन दिनो मै पवनार मे रहता था । वहा से तीन मील दूर सुरगाव मे मैने भगीकाम करना शुरू कर दिया । रोज सुबह कंधे पर फावडा ले कर निकलता । आने-जाने मे डेढ-दो घटे लग जाते । वहां घटा-डेढ घटा काम कर के वापस आता था । सूर्यनारायण की एकाग्रता से मै वह काम करता था । बीच मे बीमारी के कारण तीन दिन नही जा सका । बाकी प्रतिदिन जाता था । सर्दी, गरमी, वर्षा किसी भी ऋतु मे मेरा यह क्रम भग नही हुआ ।

एक बार जोरो से बारिश आयी । सारे रास्ते मे कमरभर पानी हो गया था । बीच मे एक नाला था । उसे पार कर सुरगांव मे जाना होता था । नाले मे जोरो से पानी वह रहा था, उसे पार करना सभव नही था । नाले के किनारे खडे हो कर मैने गाव के एक आदमी को पुकारा । उससे कहा – "मंदिर मे भगवान् को सुना आओ कि गाव का भगी आया था, पर नाले मे पानी होने से गाव मे नही आ सका ।" उसने कहा, जी हा, बताऊगा । मैने पूछा, क्या

बताओगे ? बोला, पुजारी मे कहूगा कि बाबाजी आये थे । मैने कहा, तुम गलत समझे हो । भगवान से कहना है और यह कहना है कि गाव का भगी भगीकाम करने आया था, पर पानी होने से गाव मे नही आ सका । फिर मै लौटा ।

यह मैने क्या किया ? रास्ते मे कमरभर पानी था और जाहिर था कि हम गाव मे नही जा सकते थे, फिर भी निश्चय किया कि वहा पहुचे बिना नही लौटना है । वह उपासना थी । लोगो ने पूछा कि आपका यह कार्यक्रम कब तक चलेगा ? मैने कहा कि मेरा यह कार्यक्रम बीस साल का है, तब तक पीढी बदलेगी , क्योकि यह मनोवृत्ति बदलने की बात है । पौने दो साल तक काम चला । उसके बाद गाधीजी गये तो दूसरे काम मे आना पडा । सुबह के पाच-छ. घटे हमारे उस काम मे जाते थे । कभी लोग सलाह-मशविरा करना चाहते थे तो उनसे कह दिया था कि ग्यारह बजे के पहले समय नही है । क्योकि वह भगीकाम का – उपासना का समय था । लोगो की दृष्टि से यह छोटा काम है, लेकिन मैने एक दिन भी छुट्टी नही ली, क्योकि मै उसे उपासना समझता था ।

भगीकाम के साथ-साथ मै कई बाते सिखाता था । खास कर बच्चो को सिखाता । बच्चे आ कर कहते, बाबा, आज हमने मैले पर मिट्टी डाली । फिर मै उनके साथ देखने जाता । एक दफा गाव मे गणपति-उत्सव था । उस दिन सारा गाव साफ-सुथरा दीख पडा । मेरे लिए कुछ काम ही नही था । क्योकि उसके पहले दिन गाववालो ने तय किया था कि कल पवित्र दिन है तो हम सब भगीकाम करेगे और पूरा गाव उन लोगो ने साफ कर दिया । यह देखने पर मुझे लगा कि क्राति हो चुकी । आज गाधीजी होते तो मै सुरगाव मे भगीकाम ही करता होता ।

☆☆☆

ये सब रचनात्मक काम उठाये और उन्हे अपनी शक्ति के
मुताबिक करता भी रहा । लेकिन किसी भी काम मे शुद्ध चित्त की
इतनी अधिक आवश्यकता मालूम नही हुई जितनी गो-सेवा के काम
मे मालूम होती है । यह काम प्रेम-वृद्धि का काम है । प्रेम बढेगा तो
काम बढेगा, गाय की तरक्की होगी । मनुष्य के प्रेम पर गाय की
तरक्की निर्भर है । इसलिए बहुत जरूरी है कि गोसेवक को गाय
जितना ही गरीब बनना चाहिए । जिस गाय की वे उपासना करते
है, उसी के जैसा स्वभाव उनका बनना चाहिए । गाय के प्रति मेरी
जो भावना है, उसी के अनुरूप मैने 'उपासना' शब्द का प्रयोग किया
है । न पालन कहा, न सेवा ही ।

आश्रम के लिए दूध की आवश्यकता मानी गयी और उसके
निमित्त गोरक्षण शुरू हुआ । तब से आज तक यह स्थूल कार्यक्रम चल
रहा है, विकसित हो रहा है । परतु उसके पहले दूध पीना छोड कर
गाय की सेवा करने के विचार से मैने जीवन मे तीन दफा दूध छोडने
का प्रयोग किया । एक दफा दो साल के लिए, दूसरी दफा तीन साल के
लिए, तीसरी दफा दो साल के लिए, सात साल प्रयोग किया । उसमे
सफलता नही मिली । आखिर मैने वह छोड दिया । उसी को जीवन
का प्रधान कार्य समझ कर एकाग्रता से प्रयोग किया गया होता, तो
सभव है कि उसमे सफलता मिलती । लेकिन हमने तो आश्रमो मे
तरह-तरह के काम किये, उन्ही मे यह एक था । वह सफल नही
हुआ और शरीर काफी क्षीण हो गया । बापू को पता चला तो
उन्होने भी कहा कि यह काम तो ऐसा है, जिसमे एकाग्रतापूर्वक लग

कर प्रयोग करना चाहिए, अगर उसी को अपने जीवन का कार्य मानते हो तो अलग बात हे, परतु आज हमारे सामने ऐसे दूसरे जरूरी काम उपस्थित है, जिसमे हमको लगना होगा। इसलिए मैंने दूध लेना शुरू कर दिया और उनके साथ गो-उपासना की बात पर सोचने लगा।

हम लोग सुरगाव मे काम करते थे। वहा हम एक तेल का कोल्हू चलाते थे और उसका तेल गाववालो को देते थे। एक कोल्हू मे गाव का पूरा तेल नही होता था, तो दो कोल्हू चलाना शुरू कर दिया। सब तेल गाव मे तैयार होगा तो फिर बाहर से तेल नही आयेगा। मगर सवाल यह हुआ कि जो खली बनती हे, उसका क्या करे? क्योकि गाव मे उसकी माग थी नही। फिर जितनी खली तैयार होती थी उतनी गाये वहा रखने का निश्चय किया। इस तरह गो-सेवा को हमने वहा कोल्हू के साथ जोड दिया। हम खादी, कोल्हू और गाय, इन सबको मिला कर सोचेगे तब हमारी योजना असफल और अर्थहीन नही, बल्कि अर्थयुक्त और सफल होगी।

जब पवनार आया तब एक दफा चार महीने पवनार गाव मे रहा था। वहा मै देखता था, बहुत गाये गाव मे थी। उनके दूध का मक्खन बनाया जाता और लोग उसे सिर पर ले कर वर्धा जाते थे। वहा के व्यापारियो का, सबका मिल कर एक दाम तय रहता था। उसी दाम मे वे मक्खन खरीदते थे। उनको मक्खन बेच कर ये लोग कपडा खरीद कर लाते थे। वह पैसा भी व्यापारियो के पास ही जाता था। व्यापारी इनसे मक्खन सस्ते दाम मे खरीदते और शहर मे महगे दाम मे बेचते। इस तरह सब प्रकार से पैसा व्यापारियो के हाथ मे देना पडता। वह देख कर मुझे मत्र सूझा – 'मक्खन खाओ, कपडा बनाओ।' जो मक्खन खाने की चीज हे उसे बेचना पडता है,

वह ठीक नही । इसलिए तुलसीदासजी ने कहा है– **पराधीन सपनेंउ सुख नाहीं**– पराधीन को सपने मे भी सुख नही मिलता । इसलिए मुझे वह मत्र सूझा ।

☆☆☆

शांति-उपासना

बापू के जाने के बाद सन् 1948 मे सेवाग्राम मे गाधी परिवार इकट्ठा हुआ था । इधर मेरा चिंतन तो चल ही रहा था कि अब मेरा कर्तव्य क्या है और मेरे ध्यान मे आया था कि मुझे अपना स्थान छोडना पडेगा । सेवाग्राम के उस सम्मेलन मे पडित नेहरू की स्थिति देख कर और उनकी ओर से माग होने पर मैने जाहिर किया कि मै निराश्रितो की सेवा के लिए प्रयोग के तौर पर छ महीने दूगा । उस समय कुछ रचनात्मक कार्यकर्ताओ ने पडित नेहरू आदि राजकीय नेताओ के समक्ष रचनात्मक काम के लिए सरकारी मदद की अपेक्षा व्यक्त की थी । पर मैने, खास कर पडित नेहरू को सबोधित कर के कहा कि मै आपसे किसी प्रकार की मदद की अपेक्षा नही रखता, फिर भी आपके काम मे कुछ मदद कर सका, तो मुझे खुशी होगी ।

इसवास्ते मैने थोडे साथियो के साथ निराश्रितो को बसाने का काम किया । इन छ महीनो मे हम लोगो ने जो मजा देखा, उसका समग्र वर्णन करना हो तो एक ग्रथ ही लिखना पडेगा । मुझे 'लियेजॉ' का काम करना था । अपनी भाषा मे इसे नारदमुनि कह सकते है । यहा का वहा पहुचाना और वहा का यहा । मैने देखा, पडितजी कहते थे एक बात और जिनके मार्फत वह करवाना था, उनके विचार भिन्न थे, इसलिए वह बनती नही थी । मै कुछ कहता तो पडितजी

कहा करते कि यह मुझे मान्य ही है और इस बारे मे तीन महीने पहले आदेश निकाल चुका हू । फिर भी उस पर अमल नही होता था । उन दिनो मैने बहुत मेहनत की । काम कुछ हुआ भी । लेकिन मुझे वह चीज नही मिली, जिसकी तलाश मे मै था । तो छ माह के बाद मै वहा से निकल आया ।

दिल्ली से मै मेवो के पुनर्वसन के कार्य के लिए हरियाणा-राजस्थान गया, लेकिन वहा भी मुझे यह नही लगा कि इससे हमारा मतलब सधेगा । मुझे लगा था कि मेवो को बसाने के काम मे अहिसा की कुछ शक्ति प्रकट हो सकती है । ऐसा कोई तरीका हाथ मे आना चाहिए, जिसे अहिसात्मक क्राति का, सर्वोदय का क्रियात्मक आरभ कहा जा सके । मैने समझ लिया था कि अगर यह हो सके तो खादी-ग्रामोद्योग का काम भी आगे बढेगा, नही तो न कोई खादी को पूछेगा, न ग्रामोद्योग को ही । परतु वह चीज मुझे मिली नही ।

उन दिनो हिंदू-मुसलमानो के बीच बहुत झगडे चल रहे थे । अजमेर मे मुसलमानो को बडा खतरा मालूम हो रहा था । तो मै सात दिनो तक वहा रहा । मै रोज वहा के दर्गाशरीफ मे जाता था । वह स्थान हिदुस्तान का मक्का माना जाता है । मुसलमानो ने मेरा वहा बहुत प्रेम से स्वागत किया । मैने सबको (हिदू-मुसलमानो को) समझाया कि इस तरह झगडा करना ठीक नही । फलस्वरूप दोनो मान गये और मस्जिद मे ही प्रेम के साथ बैठ कर प्रार्थना की ।

दूसरे दिन नमाज के समय पुन मै वहा पहुचा । देखा, सारे भक्तजन बहुत शाति से बैठे थे । उन लोगो का मुझ पर बडा ही प्रेम और विश्वास रहा । हरएक ने आ कर मेरे हाथ का चुबन किया । यह कार्यक्रम आधा-पौन घटे तक चला ।

वहा एक भी स्त्री नही थी। आखिर मुझे जब चद बाते कहने के लिए कहा, तब मैने कहा, "आपकी शातिमय प्रार्थना देख मुझे बडी खुशी हुई। परतु मै यह न समझ सका कि ईश्वर की प्रार्थना मे भी स्त्री-पुरुष का भेद क्यो कायम रखा जाता है? मुसलमानो को अपने रिवाजो मे इतना सुधार करना ही होगा।

☆☆☆

काचन-मुक्ति का प्रयोग

सन् 1935-36 का समय था। उन दिनो मेरे मन मे धन के बारे मे तिरस्कार ही उत्पन्न हो गया था। वैसे वह था पहले से ही, और अपने जीवन मे धन-मुक्ति का अमल मै करता आया, लेकिन सार्वजनिक सस्थाए भी अपरिग्रही हो, पैसे का 'छेद' ही हो जाये और इस प्रयोग मे देह समर्पण हो, ऐसा लगने लगा। मैने कहा था कि मेरा विचार जिन्हे जचेगा वे भी इस प्रयोग को आजमा कर देखे। आजमाना यानी असफलता लेना कतई नही। सफलता ही लेना — सदेह या विदेह। उसके लिए जीवन-परिवर्तन की आवश्यकता है।

गाधीजी के बाद सारे देश मे जीवननिष्ठा लेकर काम करनेवाला एक सेवकवर्ग कायम हो और उसके द्वारा समाज की योग्य रचना बने, ऐसा मेरे मन मे चल रहा था। चारो ओर जो कुछ चल रहा था, उसके विषय मे मन मे तनिक भी सतोप नही था। लेकिन प्रकाश से ही अधकार दूर होगा, इसलिए असतोष की रटन नही किया करता। प्रकाश की उपासना करता। मै यद्यपि सस्था नही चाहता, फिर भी व्यवस्था चाहता हू। व्यक्तिगत स्वतत्रता चाहता हू, लेकिन असबद्धता नही। सीग काट कर मजदूरी मे घुसे हुए शिक्षित लोग मेरी इस व्यापक योजना का महत्त्व का हिस्सा थे।

पवनार मे मै मजदूरो के साथ बैठता था, बोलता था। मैने उनको सुझाया, तुम लोग अपनी सब मजदूरी इकट्ठा कर लो और उसका समान बटवारा कर लो। और आश्चर्य की बात, उन सब लोगो ने 'हा' कहा। उन्होने कहा, हमे इसमे कोई हरज नही, कर सकते है। लेकिन उस प्रस्ताव को प्रत्यक्ष मे, अमल मे कैसे लाया जाता? खुदको अलग रख कर? जब मै उनमे शरीक हो जाऊगा, तब वे और मै मिल कर उसे अमल मे ला सकते थे। मैने साथियो से कहा, आपके सैकडो आदोलन एक बाजू रख कर इस असली राजनीति की ओर ध्यान देना होगा।

किशोरलालभाई का आग्रह था कि शिक्षको को कम से कम 25 रुपये वेतन मिलना चाहिए। पवनार मे शिक्षको को 16 रुपये वेतन था और मजदूर उनकी ईर्ष्या करते थे। इससे कुछ समय पहले तो मेरे ही प्राण छूट ही चुके थे। कताई की मजदूरी के भावो मे वृद्धि हुई तब वे वापस देह मे आ कर बैठ गये। दस-दस घटे कात कर भी ज्यादा मे ज्यादा चार आना मजदूरी मिलती, और मेरा खर्च तो कम से कम छ आना, कैसे मै मजदूरो से एकरूप होऊ? श्रम को पूर्ण मजदूरी देना ही मजदूरी की असली प्रतिष्ठा बढाना है।

सन् 1949 की बात है। मै दो-चार दिनो के लिए महिलाश्रम मे ठहरा था। वहा से बिहार जाने का मेरा कार्यक्रम था। लेकिन स्वास्थ्य ठीक नही था, पेट मे दर्द होने लगा, इसलिए बिहार का मेरा कार्यक्रम स्थगित कर दिया गया। मै वापस पवनार आया और वहा जाहिर कर दिया कि आज समाज मे विषमता और उत्पात का एक मुख्य कारण है पैसा। पैसा हमारे सामाजिक जीवन को दूषित करता है। इसलिए जीवन मे से पैसे का उच्छेद करना आवश्यक है। हम यहा स्वावलबन के प्रयोग करनेवाले है। सतो ने आध्यात्मिक साधना

के लिए काचन का निषेध तो किया ही है। अब व्यावहारिक जीवन को शुद्ध बनाने के लिए भी काचन का निषेध आज जरूरी लगता है। अब हमारा काचन-मुक्ति का प्रयोग शुरू होगा।

प्रारभ सब्जी के स्वावलबन से हुआ। मैने यह भी कह दिया कि 1 जनवरी 1950 से आश्रम मे सब्जी पैसे से खरीदी नही जायेगी। उस समय मेरे पास कुछ शिक्षित नवजवान इकट्ठा हुए थे। सब मिल कर इस प्रयोग मे जुट गये।

सब्जी की खेती शुरू हो गयी। कुए से पानी लेना था। कुए पर रहँट था। हम लोग ही उसको चलाते थे। रहँट को सीने तक की ऊचाई की आठ-आठ बल्लिया लगायी थी, एक-एक बल्ली पर दो-दो व्यक्ति इस प्रकार सब मिल कर रहँट चलाते थे। हमारी प्रार्थना रहँट चलाते हुए ही होती। गीताई का पाठ भी रहँट चलाते-चलाते होता – गीताई के सात-सौ श्लोक पूरे हुए यानी सात-सौ चक्कर पुरे हुए। एकबार जयप्रकाशजी मुझसे मिलने आये। वे भी रहँट चलाने मे शरीक हो गये और बहुत प्रेरणा ले कर गये।*

जितनी जमीन हमने प्रयोग के लिए ली थी उतनी पर पूरा उत्पादन नही हो रहा था, इसलिए और थोडी जमीन ली। वहा पानी का प्रबध नही था। एक दिन मै उठा और कुदाल-फावडा ले कर उस खेत मे जा पहुचा और कुए के लिए जमीन खोदना प्रारभ कर दिया। फिर तो सभी उसमे जुट गये। ये सारे जवान तगडे लोग थे। पर मैने देखा, मुझसे दुगुनी ताकतवाले आदमी मुझसे आधा काम करते थे, क्योकि मेरा सारा काम गणित से चलता था। शाति से थोडी देर खोद कर बीच-बीच मे कुछ सैकड रुकता था। लेकिन दूसरे तगडे जवान जोर-जोर से कुदाली चलाते और फिर थक कर

* जे. पी. ने कहा था – "मैंने वहा प्रकाश की किरण देखी।" – स

रुक जाते । तो कुल मिला कर उन्हे मुझसे ज्यादा आराम करना पडता । कुदाल चलाते समय भी मै वैज्ञानिक ढग से चलाता । मैने देखा कि हमारे औजारो मे बहुत सुधार करना जरूरी है । मेरी हर क्रिया मे गणित रहता है और मुझे विश्वास हो गया है कि मै मरूगा तो भी गणित से मरूगा ।

चालू कुए का पानी खेत को पहुचाने के लिए हमने एक नाली बनायी थी । हम सभी उस काम मे नये थे । मेरे साथ काम करनेवाले सभी कॉलेज के विद्यार्थी थे और मै ऐसा था, जिसे शरीरश्रम की प्रीति थी, लेकिन उस बारे मे कोई ज्ञान नही था । तो हमने एक नाली बनायी और कुए का पानी उसमे छोडा खेत के लिए, लेकिन पानी खेत तक पहुचता ही नही था । हमारे ध्यान मे नही आता था कि ऐसा क्यो हो रहा है । निरीक्षण और अनुभव से ध्यान मे आया कि खेत की सतह दो इच ऊची है, नाली की नीची है, इसलिए पानी नाली ही पी जाती है और बहुत थोडा पानी खेत को पहुचता है । मुझे लगा कि भारत सरकार की योजनाओ की स्थिति ऐसी ही है । बहुत-सा पानी बीच की नाली ही पी जाती है ।

परधाम की इस 'ऋषि खेती'* ने सबका ध्यान खीच लिया था । एकबार वहा खानदेश के किसान कार्यकर्ताओ का एक शिविर हुआ । वे लोग कसे हुए किसान थे, खेती की उत्तम जानकारी रखते थे । उन्हे परधाम की खेती इतनी पसद आयी कि कहने लगे कि हमारे खेतो मे भी हम इसका प्रयोग करेगे ।

जब ऋषि-खेती की बात मैने सुझायी थी, तब लोगो को उसमे उतना यकीन नही था । एक तो शका थी कि बिना बैलो की मदद के हाथो के बल से खेती करने मे बहुत ज्यादा मेहनत करनी पडेगी । शायद इनसान की ताकत के बाहर वह चीज होगी । दूसरी शका थी उपज के बारे मे । उपज अधिक नही हो सकेगी, कुल सौदा बहुत

* बैलो की सहायता के बिना, की खेती, जैसे प्राचीन काल मे ऋषियों ने की थी ।

महगा पडेगा । लेकिन मेरे कहने पर हमारे जवानो ने काम उठा लिया । और दो साल प्रयोग कर के जो परिणाम निकला वह लोगो के सामने रखा ।

कुल सवा एकड जमीन मे खेती की गयी । 1140 घटे काम हुआ । रोज चार घटे के हिसाब से एक आदमी का 285 दिन का काम है । सालभर मे इतने दिन तो काम करना ही होगा । यानी एक आदमी रोज आठ घटे काम कर के साल भर मे हाथ से $2\frac{1}{2}$ एकड खेती मजे मे कर सकता है । मजे मे इसलिए कि 365 दिनो मे 80 दिन छुट्टी के तो छोड ही दिये है ।

केवल खोदने का काम ही कठिन परिश्रम माना जा सकता है। सवा एकड के लिए $337\frac{1}{2}$ घटे खोदने मे लगे । $2\frac{1}{2}$ एकड के लिए इससे दुगना यानी 675 घटे काम करना होगा । इस प्रयोग मे लगे हुए बहुत सारे हाइस्कूल-कॉलेज के लडके थे, जिन्हे खोदने का कोई अभ्यास पहले से नही था । इसलिए खोदने की यह गति बिलकुल ही कम समझनी चाहिए । देहात के काम करनेवालो के ख्याल से इसमे 100 घटे जरूर कम हो सकते है । यानी 575 घटे । इसके मानी ये हुए कि रोज दो घटा खोदे तो बस है । सुबह एक घटा और शाम को एक घटा खोदने का रखा जाये तो शरीर के लिए वह एक मुफीद व्यायाम होगा ।

खोदने का काम मैने वर्षो तक लगातार किया है । और उससे मेरे शरीर को बहुत लाभ पहुचा है । लोगो ने देखा है कि जिन दिनो मै खोदता था, उन दिनो एक पहलवान जैसा मेरा शरीर था । यह मै इसलिए कह रहा हू कि खोदने के काम का किसी को डर न हो । शारीरिक लाभ के अलावा मानसिक लाभ जो उससे होता है, वह तो एक विशेष अनुभव है । अनत आकाश, खुली हवा, रवि-किरणो का स्पर्श और सीधा खडा शरीर, यह एक चतुरग योग ही है ।

और एक वात है। हमने मनुष्य के पीछे ½ एकड हिसाव कर लिया, पर उतनी जमीन हिंदुस्तान मे है कहा ? इस वास्ते हमारा काम तो और ही आसान है। मै तो मानता हू कि उत्पादनशून्य व्यायामशालाए चलाने के वजाय खेतो मे खोदने का काम कसरत के तौर पर अगर किया जाये तो सव तरह से लाभदायी होगा।

इस प्रयोग के परिणाम की तरफ उपज की दृष्टि से देखना हो तो भी यह कोई छोटी वात नही है। (1953 के वाजार भाव के अनुसार) सवा एकड जमीन मे खर्च वाद कर के 285 रुपये आये। यानी घटे की मजदूरी 4 आना पडी। परधाम के आसपास के खेतो मे जो मजदूर खेती के काम के लिए वुलाये जाते ह, उन्हे आठ घटे के काम के लिए आदमी को 13 आने और औरत को 7 आने के करीव दिया जाता है। दोनो का औसत निकाले तो 10 आना आता है, यानी घटे का सवा आना। उसके तिगुनी से भी ज्यादा मजदूरी ऋषि-खेती मे मिली है। लेकिन यह तिगुनी नहीं मानना चाहिए। क्योकि परधाम मे जो काम करते हे, वे ही मजदूर और वे ही मालिक है। दोनो हैसियते मिल कर उनको चार आने घटा मिला है। मालिक मजदूर को जितना देता होगा, उससे अधिक, आज 1953 की हालत मे नही कमाता होगा। इसलिए मालिक और मजदूर, दोनो नाते जहा इकट्ठा हुए वहा दुगुनी मजदूरी की आशा हम कर सकते ह। मानी इसके ये हुए कि वैल की खेती से डेढ गुना कमाई ऋषि-खेती ने की है।

फिर यह भी ध्यान मे रखने की वात है कि ये काम करनेवाले खेती के विशेष जानकार थे, ऐसा नही कह सकते। और जिस जमीन पर उन्होने काम किया, वह दूसरे दरजे से कुछ उतरती है। जिस जमीन मे से ईंटे, पत्थर, मूर्तिया निकली है, ऐसी टीलेवाली वह जमीन है। दो साल उसमे मेहनत हुई इसलिए केवल तीसरे दरजे

की भी नही कही जायेगी । फिर यह काम केवल बारिश के आधार पर ही हुआ । अगर आबपाशी की सुविधा हो तो ऋषि-खेती काफी उपज देगी, इसमे मुझे कोई सदेह नही है । और जहा मनुष्य अपने शरीर से ही काम करता है, वहा वह कितना निश्चित होता है ! भगवान ने कहा ही है –

शारीर केवल कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्

ऋषि-खेती का ऋषभ-खेती से कोई विरोध नही है । विरोध होने का कारण भी नही है । परधाम मे दोनो प्रयोग चल रहे है । इतना ही नही, नदी के पानी का उपयोग कर लेने के लिए इजीन का भी प्रयोग चल रहा है । यह बात मुझे कतई मान्य नही कि बैलो को बेकार रख कर इजीन का सबदूर इस्तेमाल हो, फिर भी विशेष परिस्थिति मे नदी का पूरा उपयोग कर लेने के लिए प्रयोग के तौर पर इजीन को भी मैने मान्यता दी है । 'सर्वेषां अविरोधेन', समन्वय का सूत्र है । बैल हमारे कुटुब का अविभाज्य अग है, यह बात ध्यान मे रख कर, उसे बाधा न पहुचे इस मर्यादा मे एक ओर ऋषि-खेती और मर्यादित पैमाने पर आधुनिक सुधरे औजार, इनका उपयोग करना है । साराश, ऋषि-खेती, ऋषभ-खेती और इजीन की खेती, तीनो विभाग परधाम मे इकट्ठा काम कर रहे है । ऐसे हिम्मत के प्रयोग हम कर रहे है ।

इस प्रयोग मे बेकारी के मसले का आशिक हल है । साधन-हीन किसानो के लिए कुछ साधन है । खेती के गहरे प्रयोग के लिए सहूलियत है । और नयी तालीम के लिए वरदान है । इसके अलावा अहिंसा की बहुत दूरदृष्टि इसमे है ।

मनुष्य की सख्या बढ रही है । इसलिए हरएक मनुष्य के पीछे जमीन उत्तरोत्तर कम ही मिलनेवाली है । जपान जैसे देशो मे इसी लिए हाथो से खेती होती है । "मासाहारी डेढ एकड जमीन

खाता है, दुग्ध-मिश्र अन्नाहारी पौन एकड खाता है और दुग्ध-मुक्त अन्नाहारी को आधा एकड जमीन वस होती है।"* इस हिसाव की महिमा दिन-व-दिन मनुष्य के ध्यान मे आनेवाली है। उसके परिणामस्वरूप पहले मासाहार छूटेगा, पीछे दुग्धाहार सीमित होगा। फिर आगे गाय-वैलो को मुक्त करने की वात सामने आ सकती है। आज हमे एक वाजू से गोजाति का सवर्धन करना है और दूसरी तरफ से ऋषि-खेती का प्रयोग भी करना हे।

दुनिया मे अगर किन्ही दो शक्तियो का मुकावला होनेवाला है तो वह साम्यवाद और सर्वोदय विचारो मे होनेवाला है। दूसरी जो शक्तिया दुनिया मे काम करती दिखायी देती हे वे ज्यादा दिन टिकनेवाली नही हे। साम्यवाद और सर्वोदय मे साम्य भी वहुत है और विरोध भी उतना ही है। जमाने की माग वही है। हमे उस विचार को सिद्ध करना होगा। वताना होगा कि काचन-मुक्त समाज-रचना हो सकती है, सत्तारहित समाज वन सकता है। चाहे छोटे पैमाने पर ही क्यो न हो, हमे ऐसा नमूना दिखाना होगा। तभी साम्यवाद के मुकावले मे टिक सकेगे।

मै हमारे साथियो से वार-वार कहा करता था कि यदि यह काम ठीक-ठीक रूप धारण कर ले, तो हम सवकी चित्तशुद्धि होगी और समाज को भी कुछ शुद्धि प्राप्त होगी। कल्पना यह थी कि मुख्यत यहा का काम कुछ आकार ले ले और उसके वाद मै वाहर जाऊ। शायद वाहर जाने की जरूरत भी न रहे। परतु उस वीच हैदरावाद (शिवरामपल्ली) सम्मेलन के लिए जाने की वात वन गयी, तो वह भी परमेश्वर की इच्छा से ही प्रेरित हुई, ऐसा मैने देखा, क्योकि विलकुल अनपेक्षितरूप से सव कुछ हुआ।

---

* इसका एक हिसाव यह भी है – शाकाहारी के लिए एक एकड जमीन लगती हो, तो मासाहारी को चार एकड चाहिए। – स

मैने उस समय कहा था कि इस वक्त लोगो को सात्वना की बहुत जरूरत है। जिस प्रकार किसी का चित्त संत्रस्त हो गया हो और फिर उससे छुटकारा पानेयोग्य कोई मनोविनोद का साधन उसे मिले तो उसे सात्वना मिलती है, उसी तरह का हाल आम जनता का हो रहा है। इसमे अमुक किसी का दोष नही है। सबका मिल कर ही दोष है, परतु दोषो की चर्चा भी किस काम की ? दोष-निवारण की जरूरत है और उसका सीधा, सरल, सबके लिए सुलभ और परिणामकारी मार्ग वही है, जिसे हमने यहा परधाम मे अपनाया है। इसलिए यद्यपि उसने हमारी इच्छा के अनुरूप रूप अब तक नही लिया है, तथापि अच्छी भावना से तपस्या हो रही है और उतनी भी उकताये हुए मन को सतोष दिला सकती है।

तेलगना की यात्रा पूरी कर जब मै वापस परधाम आया था तब भी मैने यहा के साथियो के समक्ष बोलते हुए कहा था कि यात्रा मे मेरी वाणी मे जो आत्मविश्वास प्रकट हुआ, उसका आधार यहां का काम है। इस जगह जो प्रयोग हो रहा है – प्रचलित समाज-व्यवस्था पर कुठाराघात – उसे अगर हम अच्छी तरह पूरा कर सके, तो नि सदेह ससार का रूप पलटनेवाला है। और इस बात का महत्त्व जितना मुझे मान्य है, उतना ही इस बात का विचार करने-वाले दूसरे किसी को भी मान्य होगा।

यह जो मेरा काम है, यह आश्रम तक ही सीमित नही है। आश्रम मे मै दही बना रहा हू। यह तैयार होने पर उसे बहुत-से दूध मे मिलाना है और उसका भी दही बनाना है, ऐसी कल्पना है। पहले यह प्रयोग देहात मे बाटना है, और देहातो मे उसकी सिद्धि किस मात्रा मे होती है, इसका अनुभव प्राप्त करने पर, फिर उसे सारे देश के सामने रखना है। इस तरह रामराज्य स्थापित करना, ऐसी यह बहुत बडी प्रतिज्ञा मन मे है। यह 'बात' बहुत बडी है। लेकिन इससे छोटी बात ईश्वर मुझसे नही कहलवाता, इसमे मेरा कोई उपाय नही है।

वियुक्त :

तृतीय खंड : सन् 1951 से 1970

धर्मचक्र - प्रवर्तन

पदयात्रा-काल

. . . मैं कहना चाहता हूं कि मैं अत्यंत कठोर-हृदय हूं। मुझ पर न किसी की मृत्यु का परिणाम होता है, न किसी के जन्म की खुशी। कोई बीमार पड़ता है तो मुझे बहुत चिंता नहीं होती। लेकिन भूदान-यज्ञ में जो अनुभव आये, उनसे मैं अत्यंत कोमल बन गया, मेरा हृदय बहुत थोड़े में द्रवित होने लगा, मुझे भक्तिलाभ हुआ। जो भक्तिलाभ एकांत चिंतन और ध्यान-साधना में भी नहीं हुआ, वह इसमें हुआ। मेरा दिल कोमल और नम्र बन गया। बहुत ही पवित्र अनुभव आये। लोगों की चित्तशुद्धि का भान हुआ, तो ध्यान में आया कि अपने देश में एक शक्ति पड़ी है, जिसके आधार पर हम अपने देश को मजबूत बना सकते हैं।

* * *

प्रसुप्त भावना

स्वराज्य-प्राप्ति के वाद और विशेष कर गाधीजी के निर्वाण के वाद, हमे किस तरह प्रगति करनी चाहिए, क्या रास्ता लेना चाहिए, इसका वहुत मथन मेरे दिल मे चल रहा था। उन्ही दिनो ट्रेन मे प्रवास करना हुआ। ऊचे दर्जे मे, जो जीवन मे, किसी भी कारण से क्यो न हो, पहली वार मुझे करना पडा था। हिंदुस्तान के आधे से अधिक हिस्से मे घूमना हुआ। जिनके कामो और स्थानो को मैंने सिर्फ कानो से सुना था, उनके कामो का दर्शन हुआ, लाभ जरूर हुए। लेकिन निरतर चिंतन चलता रहा। क्या इस तरह घूमता रहू तो अहिंसा को गति हम दे सकते है? जो परिवर्तन समाज मे लाना चाहते है, वह ला सकते है? आखिर वह जो प्रवास था, वह भी कोई अहिंसा के आधार से होता था ऐसी वात नही है। रेल्वे वनी किस तरह, जिन पैसो के आधार पर हमने प्रवास किया वे आये कहा से, इत्यादि सव वाते मन मे आया करती थी। यह भी लगता था कि ऐसे गतिमान साधन, जो कि विचार की गभीरता नही वल्कि खलवली ही पैदा करते है, अहिंसा के प्रचार के लिए क्या काम देंगे? इन साधनो से आम जनता तक क्या हम कभी पहुच सकते ह?

इधर, गाधीजी के स्मरण मे उनके कामो को चलाने के लिए एक निधि अर्थात् पैसा इकट्ठा किया जा रहा था और यह वात मुझे हृदयगम नही हुई थी। गाधीजी के कामो के लिए ही क्यो न हो, लेकिन पैसा इकट्ठा करने से लाभ के वजाय हानि अधिक होगी, यह मेरे दिल मे हमेशा लगता था।

हमारे आश्रम हमने किस तरह चलाये, उसका भी मैने चिंतन किया। हमारा निज का जीवन किस तरह चला, वह भी सोचा। सब सोच कर के इस नतीजे पर आया कि अब जमाना बदल गया है, युग-परिवर्तन हुआ है। अब जो काम करना है, वह बहुत गहरा है और अत्यत कठिन है। राजनैतिक आजादी हमने प्राप्त कर ली। लेकिन अब उससे भी कठिन काम – सामाजिक और आर्थिक क्राति का काम हाथ मे लेना है। उसके लिए पुराने तरीके नही चल सकते।

उन दिनो (अप्रैल 1948) मै शरणार्थियो और मेवो लोगों की सेवा मे, पुनर्वसन के काम मे लगा हुआ था। पश्चिम पाकिस्तान से जो शरणार्थी आये थे, उनमे हरिजन बहुत थे। हरिजनो ने जमीन की माग की। उनकी माग मजूर नही हो रही थी। इस बारे मे कुछ चर्चा हुई। आखिर पजाब सरकार की तरफ से आश्वासन दिया गया कि हम हरिजनो के लिए कुछ लाख एकड जमीन देगे। यह आश्वासन राजेद्रबाबू और दूसरे सज्जनो के समक्ष दिया गया, जिनमे मै भी एक था।

वह शुक्रवार का दिन था। उसके बाद मुझे प्रार्थना के लिए राजघाट जाना था। वहा मैने जाहिर किया कि बहुत खुशी की बात है कि पजाब की सरकार ने हरिजनो के वास्ते जमीन देना मान्य किया है, इसलिए मै पजाब की सरकार का अभिनदन करता हू।

परतु उसके दो महीने बाद दूसरी ही बात सुनने को मिली कि यह हो नही सकता। इसके कई कारण होगे, लेकिन हरिजन इससे बहुत दु खी हुए। रामेश्वरी नेहरू को तीव्र वेदना हुई। वे मेरे पास आ कर कहने लगी कि हरिजन सत्याग्रह करना चाहते है, तो क्या

उन्हे सत्याग्रह करने देना चाहिए ? मै सोच मे पड गया। जो एक वादा किया गया, वचन दिया गया था, वह टूट गया था। मैने हरिजनो से कहा कि "देश की आज की हालत मे मै आपको सत्याग्रह करने की सलाह नही दे सकता। आपको इस मसले पर मै अभी मदद नही पहुचा सकता, इसका मुझे दुख है।" उनको मैने यह जवाब दिया, लेकिन मेरे मन मे यह बात, यह सुप्त भावना रही कि कोई ऐसी युक्ति सूझनी चाहिए, जिसमे बेजमीनो को जमीन मिले।

इधर हमारी रचनात्मक कार्यकर्ताओ की जमात भी सारी पस्तहिम्मत-सी हो गयी थी। सरदार वल्लभभाई पटेल ने एक व्याख्यान मे कहा कि हम खादी वगैरह रचनात्मक काम सतत करते है, – वे खुद रोज कातते थे और बडा महीन सूत कातते थे – पर आज कोई खादी को मानता नही। गाधीजी की बात लोगो ने नही मानी तो हमारी कौन मानेगा ? अब भारत आजाद हुआ है, तो हमको ऐसे उद्योग विकसित करने होगे, जिनमे 'वार पोटेंशियल' (समर-बल) होगा। उनके 'वार पोटेंशियल' शब्द पर मै सोचता रहा कि दुनिया मे 'वार पोटेंशियल' की जितनी आवश्यकता है, उससे ज्यादा 'पीस पोटेंशियल' (शाति-बल) की है। हमको ऐसे धधे खडे करने होगे, ऐसे कार्य खडे करने होगे, जिनमे 'पीस पोटेंशियल' हो। मै 'पीस पोटेंशियल' की बात सोचने लगा और तय किया कि उसके लिए एक दफा भारत की पदयात्रा करनी होगी। यह निश्चय मैने अपने मन मे रखा था, पर उसे प्रकट नही किया था। परतु बहुत ही सहजता से वह अवसर प्राप्त हुआ।

☆☆☆

भूदान-गंगा का उद्गम

सर्वोदय-यात्रा

हैदराबाद के नजदीक शिवरामपल्ली मे सर्वोदय सम्मेलन होनेवाला था। अगर ट्रेन से जाता तो वर्धा से हैदराबाद एक रात का सफर है। परतु हमने पदयात्रा करने का तय किया (मार्च 1951)।

लोग जरूर पूछेगे कि क्या ट्रेन या हवाई जहाज से नही जा सकते थे ? मुझे तो आज हवाई जहाज जिस वेग से जाते है, उससे कही अधिक वेग से उडनेवाले हवाई जहाज चाहिए। उसमे हम जरूर जा सकते थे। परतु हर बात का अपना-अपना स्थान होता है। चश्मे की कितनी ही महिमा क्यो न गायी जाये, आख से अधिक महिमा उसकी हो नही सकती। वैसे ही हवाई जहाज और दूसरे वेग से जानेवाले साधन हम जरूर चाहते है, फिर भी पाव की जो प्रतिष्ठा है, वह है ही। पैदल यात्रा के जो लाभ है, वे हवाई जहाज से कभी मिलनेवाले नही है।

एक सज्जन ने मुझसे कहा कि एक दिन के काम के लिए आप एक महीने का समय लगा रहे है, तो आपका कार्यक्रम क्या होगा ? मैने जवाब दिया– मेरा कार्यक्रम यही रहेगा कि मै हरिनाम लू और उसी प्रकार दूसरो को भी लेने को सिखाऊ। क्योकि मै अपने मे रामनाम के अलावा ऐसी दूसरी कोई भी ताकत नही देख रहा हू, जिससे कि काम बन सके।

मैने तय कर लिया कि घूमते समय मै अपनापन यानी अपनी अमुक कल्पना कुछ भी नही रखूगा। बिलकुल सहज भाव से जो होता जायेगा, उसे होने देने की अनुकूलता मै देता रहूगा।

एक अमुक प्रकार की यात्रा करनी, अमुक बात सिद्ध करनी, ऐसा कुछ मेरे मन मे नही था। जगह-जगह जो कोई सज्जन मिलेगे, उनसे मेल-मुलाकात करू और उस जगह के लोगो की कुछ कठिनाइया हो, उनको हल करने का मार्ग सहज दिखा सकू तो दिखाऊ, इतना ही मन मे था। आगे का कोई विचार निश्चित नही हुआ था। वह वहा जाने पर निश्चित हो सकता था।

* * *

पैदल यात्रा मे प्रकृति का और लोगो का जैसा और जितना निकट से दर्शन होता है वैसा अन्य किसी मार्ग से नही हो सकता। यही अनुभव लेने के लिए हम पैदल निकले थे। मैं मानता हू कि हमारे देश का जो दर्शन हमे हो रहा था, वह कल्पनातीत तो नही था, पर हम अगर पैदल यात्रा पर न निकल पडते तो वह न हो सकता।

देहात के लोगो मे उत्साह है। शहरो मे भी उत्साह कम नही। लेकिन देहात मे एक विशेष ही भावना देखी, जिससे हमारा वहा पहुचना कितना जरूरी था, इसका प्रत्यक्ष अनुभव आया। कोशिश यह रही कि छोटे-छोटे गावो मे मुकाम करे। जहा बन सका वहा गाव के घरो मे भी घूम आया। यद्यपि मै तेलुगु जानता हू, तेलुगु मे बात नही कर सकता। फिर भी तेलुगु का जितना कुछ ज्ञान था प्रेमभाव बढाने मे उसका बहुत उपयोग हुआ। प्रार्थना मे स्थितप्रज्ञ के लक्षण मै तेलुगु मे बोलता था, तो मैने देखा वे लक्षण उनके हृदय तक सीधे पहुच जाते थे। और उनको महसूस होता था कि अपना ही एक भाई बोल रहा है। बहुत प्रेम से लोगो ने हमारा स्वागत किया।

कई देहात ऐसे मिले कि अगर हमे शिवरामपल्ली पहुचने की आवश्यकता न होती तो वही चद रोज रह जाने की इच्छा हो जाती।

क्योंकि एक जगह देखना, वहा की कमिया महसूस करना, उनका हल हम कर सकते है ऐसा विश्वास करना और फिर भी उस स्थान को छोड कर के आगे बढना, यह अच्छा नही लगता । फिर भी वह करना पडा । जहा-जहा हो सका वहा स्थानिक लोग ही काम करनेवाले निकले, ऐसी कोशिश की । अनुभव का सार यह रहा कि हममे से हरएक के नाम पर एक देहात रहा और उसके साथ हमारा सपर्क बना रहा, तो बहुत भारी काम होगा ।

* * *

1949 मे राऊ के सर्वोदय सम्मेलन मे सब साथियो के दर्शन का सौभाग्य मिला था । उसके बाद शिवरामपल्ली मे दूसरा अवसर (7-14 अप्रैल 1951) मिला । अत्यत समाधान और अतरानद का अनुभव मुझे हुआ ।

उसके आगे मैने सोचा कि अगर ईश्वर की इच्छा होगी तो तेलगना मे, जहा कम्युनिस्ट लोगो ने काम किया है और कुछ ऊधम भी मचाया, ऐसा कहते है, उस सारे मुल्क मे पैदल घूम लू ।

वहा के कम्युनिस्टो के प्रश्न के बारे मे मै बराबर सोचता रहा था । वहा की खून आदि की घटनाओ के बारे मे मुझे जानकारी मिलती रहती थी, फिर भी मेरे मन मे कभी घबराहट नही हुई, क्योकि मानव-जीवन के विकास का कुछ दर्शन मुझे हुआ है । जब-जब मानव-जीवन मे नयी सस्कृति निर्माण हुई तब वहा कुछ सघर्ष भी हुआ है, रक्त की धारा बही है ।

तेलंगना मे शाति के लिए सरकार ने पुलिस भेज दी थी, लेकिन पुलिस कोई विचारक होती है, ऐसी बात नही है । पुलिस शेरो का शिकार कर हमे उन शेरो से बचा सकती है, लेकिन यह कम्युनिस्टो की तकलीफ शेरो की नही, मानवो की है । उनका तरीका चाहे गलत क्यो न हो, उनके जीवन मे कुछ विचार का उदय हुआ है

और जहा विचार का उदय होता है, वहा सिर्फ पुलिस से प्रतिकार नही हो सकता ।

तेलगना की प्रस्तुत समस्या के बारे मे इस तरह सोचता था तब मुझे सूझा कि इस मुल्क मे घूमना चाहिए । लेकिन घूमना हो तो कैसे घूमा जाये ? जहा विचार ढूढना है वहा शाति का साधन चाहिए । शकराचार्य, महावीर, बुद्ध, कबीर, चैतन्य, नामदेव जैसे लोग हिंदुस्तान मे घूमे, और पैदल घूमे । वे चाहते तो घोडे पर जा सकते थे, परतु उन्होने त्वरित साधन का सहारा नही लिया, क्योकि वे विचार का शोधन करना चाहते थे । और विचार-शोधन के लिए सबसे उत्तम साधन पैदल घूमना ही है । इस जमाने मे वह साधन एकदम सूझता नही, परतु शातिपूर्वक विचार करे, तो सूझेगा कि पैदल चले बिना चारा नही । मैने तय किया कि उस सारे इलाके मे मै पैदल घूमूगा ।

* * *

तेलगना मे कम्युनिस्टो के हृदय तक पहुचने की जितनी कोशिश हो सकती थी, उतनी मैने की । कम्युनिस्ट नेता हैदराबाद जेल मे थे । रामनवमी (15 अप्रैल 1951) के दिन उनसे मुलाकात करने की सहूलियत हमने सरकार से मागी थी । सरकार ने मजूर कर लिया और उनके साथ दो घटे बातचीत हुई । मेरा मानना है कि जेल मे तथा हमारी यात्रा मे जिनसे बात करने को मुझे मिला उनको और जिनके कानो तक मेरी बात पहुची उनको इतना तो नि सदेह यकीन हुआ होगा कि यह मनुष्य उनका भी भला चाहता है ।

वहा मुझे तीन प्रकार के लोगो से बाते करनी पडी, कम्यूनिस्ट आतकवादियो से, गाव के श्रीमानो से तथा आम जनता से ।

मैने कम्यूनिस्टो को यही बताया कि तुम्हारे जो दावे है, वे

कोई भी कौम अभी तक सफल नही कर सकी है। और कब करेगी, इसका भी कोई भरोसा नही है, यह एक बात तो कम से कम कबूल कर लो। दूसरी यह बात भी समझ लो कि हर हालत मे चाहे हिंसा खडित न की जाये, कुछ हालतो मे उसे मान्य भी कर ले, फिर भी स्वराज्यप्राप्ति के बाद, और जबकि 'अैडल्ट फ्रेंचाईज' (बालिग मताधिकार) दिया गया है उसके बाद, शस्त्रो का परित्याग ही करना चाहिए। अगर उतना नही किया है तो पहले दर्जे की गलती की है। यह बात उन्हे समझाने की कोशिश मैने की। मेरा मानना है कि इसका काफी असर हुआ है।

कई गाव के बडे-बडे लोग भय से गाव छोड कर शहर मे रहने के लिए चले गये थे। कुछ लोगो से मुलाकात हुई। उन्होने साफ दिल से चर्चा की और कहा कि हम अपने गाव नही जा सकते, जाना हो तो पुलिस को साथ ले कर जाना पडता है। मैने उनसे कहा, 'तुम श्रीमान हो, परमेश्वर तुम्हारी परीक्षा करता है कि तुम गरीबो की सेवा मे कैसे लगते हो। तो सेवा का व्रत ले लो और जहा से भाग कर आये हो वहा हिम्मतपूर्वक फिर बसो। वहा जाने के बाद अगर कत्ल हो जाओगे तो परमेश्वर का उपकार मानना। छिप कर, डर कर शहर मे आ कर जिंदा रहना मरने से बढ कर है। लेकिन निर्भय कौन बनेगा ? जो गरीबो पर प्रेम, सेवा करेगा।'

गाव के लोगो से मै कहता था कि गाव के बडे लोगो पर गाव के दूसरे लोगो का प्यार होना चाहिए और अपने गाव के बडे लोगो के रक्षण का जिम्मा सारा गाव उठाये, ऐसी हालत होनी चाहिए।

यह जो इतना साहस मैने किया उसका महत्त्व मेरे मन मे बहुत ज्यादा था। यद्यपि इसमे से कुछ नतीजा आयेगा, ऐसा ख्याल कर के मैने यह काम नही लिया था, लेकिन वर्धा से जब मै निकला

तब वहा एक छोटी-सी सभा लक्ष्मीनारायण मदिर मे हुई थी। वहा पर लोगो की इजाजत लेते समय मैने कहा था कि अभी तो यह आखिरी मुलाकात ही समझो, फिर कब मिलेगे, मालूम नही। मन मे तो ऐसा था कि खतरे के मुल्क मे जा रहे है। अगर इस खतरे का कोई उपाय मिल गया तो अच्छा है, अगर इस खतरे का खुदको ही अनुभव आया तो भी अच्छा है, क्योकि उससे शातिमय उपाय सहज ही सूझेगा। ऐसा कुछ मन मे रख कर निकले थे और परमेश्वर की कृपा हुई, जिससे सारा का सारा वातावरण ही बदल गया।

यात्रा के तीसरे ही दिन (18 अप्रेल 1951) पोचमपल्ली मे गाव के हरिजन लोग हमसे मिलने आये थे। उन लोगो ने कहा कि हमको अगर कुछ जमीन मिलती है तो हम मेहनत करेगे और मेहनत का खाना खायेगे। उन्हे 80 एकड जमीन चाहिए थी। मैने कहा कि अगर हम आपको जमीन दिलवायेगे तो आप सब लोगो को मिल कर काम करना होगा, अलग-अलग जमीन नही देगे। उन्होने कबूल किया कि हम सब एक होगे और जमीन पर मेहनत करेगे। मैने कहा, इस तरह हमे लिख दो, आपकी अर्जी हम सरकार मे पेश करेगे। परतु वही, उसी सभा मे एक भाई (श्री रामचद्र रेड्डी) सौ एकड जमीन हरिजनो को देने तैयार हो गये। उन्होने हमारे सामने हरिजनो को वचन दिया कि आपको सौ एकड जमीन दान देगे।

यह घटना साधारण घटना नही। जिस जमीन के लिए खून-कत्ल, कोर्ट-कचहरी होती रहती है, वह जमीन दान मे मिली, इसके पीछे कोई सकेत होना चाहिए। रातभर मेरा चितन चला और मुझे अनुभव हुआ कि यह एक इलहाम हो गया है। लोग प्रेम से जमीन दे सकते है।

पडित जवाहरलाल नेहरू ने एक चिट्ठी मुझे लिखी थी।

उसमे उन्होने वहा जो हो रहा था उसके लिए खुशी प्रकट की थी। उसके जवाब मे मैने लिखा था कि मेरा अपना विश्वास है कि हर कोई मसला अहिंसा से हल हो ही सकता है, लेकिन उसके लिए हृदयशुद्धि की आवश्यकता होती है। इस चीज को कल्पना और श्रद्धा से मै मानता ही था, इस मर्तबा उसका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ।

* * *

यह जो मसला है, वह एक अतर्राष्ट्रीय मसला है और उसका हल अगर हम शातिमय तरीके से कर लेते है, तो स्वराज्य प्राप्ति के बाद हमने एक बडी भारी खोज की, ऐसा कहना होगा। अगर हम अपनी कल्पना-शक्ति चलाये, तो यह बात ध्यान मे आ जायेगी कि इस काम मे जागतिक क्राति के बीज छिपे हुए है। मै कोई मसला हल कर रहा हू, ऐसा कोई आभास मुझे नही आया है, वह तो अहकार का लक्षण होगा, परतु इतना मै मानता हू और समझ गया हू कि इसमे जो दर्शन हुआ है, उसको अगर हम ठीक से ग्रहण करे और उस चीज के साथ अगर हम एकरूप होने की कोशिश करे, तो यह एक ऐसा साधन है, जिससे मसला हल हो सकता है।

कम्युनिस्टो के काम के पीछे जो विचार है, उसका सारभूत अश हमे ग्रहण करना होगा, उस पर अमल करना होगा। यह अमल कैसे किया जाये, इस बारे मे मै सोचता था, तो मुझे कुछ सूझ गया। ब्राह्मण तो मै था ही, वामनावतार मैने ले लिया और भूमिदान मांगना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे विचार बढता गया। परमेश्वर ने मेरे शब्दो मे कुछ शक्ति भर दी। लोग समझ गये कि यह जो काम चला रहा है, वह क्राति का है और सरकार की शक्ति के परे है, क्योकि यह काम तो जीवन बदलने का काम है।

यह यज्ञ, जिसे मैने 'भूदानयज्ञ' नाम दिया है, एक सामान्य यज्ञ नही है। नि सशय यह जो घटना इस युग मे बनी है वह

सामान्य घटना नही है, क्योकि इसमे लोगो ने जो दान दिया है, उसके पीछे लोगो की वहुत ही सद्‌भावना है, इसका मैं साक्षी हू ।

मैने हर जगह समझाया कि इसमे गरीवो पर उपकार करते है, ऐसी भावना दान देते समय रखोगे तो वह अहकार होगा। उससे जो लाभ हम चाहते है वह नही होगा । मेरा काम तो तव होगा जव यह समझोगे कि जैसे हवा-पानी-सूरज की रोशनी पर हरएक का हक है वैसे जमीन पर हरएक का हक है और जवकि कई लोगो के पास विलकुल जमीन नही है तव उस हालत मे वहुत ज्यादा जमीन अपने पास रखना गलत वात है । उस गलती से मुक्त होने के लिए हम जमीन देते है, इस खयाल से देना चाहिए । यह मैने वार-वार समझाया । और जहा मुझे जरा भी शका आयी कि जो दान दिया जा रहा है उसमे कुछ तामसता या राजसता का भाव है, वहा मैने वह दान नही लिया, क्योकि मेरा मतलव यह नही था कि किसी तरह से जमीन वटोरे ।

* * *

यात्रा मे अनुभव तो वहुत आये, लेकिन सव अनुभवो का सार दो शव्दो मे कह दूगा । मेरा अनुभव किस शव्द मे रखू, ऐसा जव मैने विचार किया तव मुझे 'साक्षात्कार' शव्द ही सूझा । मुझे ईश्वर का एक प्रकार का साक्षात्कार ही हुआ । मानव के दिल मे भलाई है, उसका आवाहन किया जा सकता है, ऐसा विश्वास रख कर मैने काम किया तो भगवान ने वैसा ही दर्शन प्रकट किया । मै यह भी मानता हू कि अगर मै यह मान कर जाता कि मानव का चित्त असूया, मत्सर, लोभ आदि प्रवृत्तियो से भरा है, तो वैसा ही दर्शन भगवान ने दिया होता । सो मैने इसमे से देख लिया कि भगवान कल्पतरु है, जैसी हम कल्पना करते है वैसा रूप प्रकट करते है ।

☆☆☆

भूदान-गंगा का ओघ

तुलसी-सूर की राह पर

तेलगना यात्रा के वाद चद रोज (27 जून 1951 – 11 सितवर 51) परधाम मे रह कर पुन उत्तर भारत की पदयात्रा पर निकल पडा (12 सितवर 1951), दिल्ली की तरफ जा रहा था। वैसे वारिश समाप्त होते-होते पदयात्रा पर निकलने का सोच ही रहा था कि इतने मे दिल्ली का बुलावा आ गया (योजना आयोग के सदस्यो के साथ चर्चा के लिए पडित नेहरू से निमत्रण मिला।), और कुछ जल्दी ही निकल पडा।

परधाम मे जो प्रयोग (काचनमुक्ति-ऋषिखेती) किया जा रहा था, वह अगर आरभ नही किया होता और उसका जो अनुभव एक सालभर लिया वह अगर नही लिया होता तो शायद तेलगना मे जो काम हुआ और लोगो के साथ जो नि सकोचता और निर्भयता का अनुभव हुआ, उस तरह का आत्मविश्वास रहा, वह नही रहता। परमेश्वर की वहुत ही कृपा हुई कि मेरे जैसे सभ्यता से अपरिचित मनुष्य के मुख से भी कही विनयरहित वाक्य उसने नही आने दिया। मै मानता हू, यह उस प्रयोग का परिणाम है, जिसमे हम लोगो ने किसान को गुरु समझ कर के मिट्टी मे काम करना अपना भाग्य समझा।

मैने कहा था, इस वक्त घूमते हुए एक प्रमुख काम मेरी नजर के सामने रहेगा। मुझे गरीबो को जमीने दिलवानी है। माता और पुत्रो का जो बिछोह हुआ है, उसे दूर कर के मुझे उनका सवध

जोडना है। मुल्क मे देने की वृत्ति बढानी है। एक हवा ही निर्माण करनी है। तेलगना मे कम्युनिस्टो का उपद्रव था, इसलिए जमीने मिली, ऐसी बात यदि हो तो अहिसक क्राति की आशा छोड देनी होगी। यदि भूदान-यज्ञ का मूल विचार समझा दिया जाये, तो लोग प्रेमपूर्वक जमीन देगे, ऐसी आशा मुझे है। यह आशा सिद्ध हुई तो अहिसक क्राति को बहुत बल मिलनेवाला है। अगर हम अपने सिद्धातो को मूर्त और व्यापक रूप नही दे सके तो हम प्रवाहपतित बन जायेगे। आज वक्त हमे ललकार रहा है, चुनौती दे रहा है।

* * *

राजघाट (दिल्ली) की सन्निधि मे मुझे अत्यत शाति और स्फूर्ति प्राप्त हुई। राजघाट पर निवास-स्थान का निश्चय करने के विषय मे मेरी एक भावना थी। हालाकि परमेश्वर की हस्ती हर जगह है और मै भी उसे हर जगह महसूस करता हू, बावजूद इसके कुछ स्थानो की महिमा अमिट रही है – और वही प्रेरणा मुझे रास्ता दिखा रही है। भूदान-यज्ञ मे गाधीजी की प्रेरणा रही है। इस काम मे जो अच्छाइया दिखायी पडती है वे उन्ही की है, जो त्रुटिया है, वे मेरी है।

राजघाट के ग्यारह दिन (13–23 नवबर 1951) सत्सगति मे बीते। सुबह की प्रार्थना, जो ठीक चार बजे शुरु होती थी, साधक-सज्जनो की सगति मे होती थी। उसमे तुलसीदासजी की विनय-पत्रिका के अमृत-मधुर भजनो का मै प्रकट चितन करता था। उसमे दिनभर के व्यस्त कार्यक्रम मे, बिना विश्राम का समय लिये ही, मुझे विश्राम मिल जाता था। शाम की राजघाट की जाहिर प्रार्थना मे भूदान-यज्ञ आदि पर मेरे विचार थोडे मे रखता था।

प्लैनिग कमिशन के साथ चर्चा हुई। मेरे सारे विचार, जो मैने वहुत स्पष्टता से रखे, सव मित्रो ने ध्यानपूर्वक सुने। मुझे आशा करने के लिए कारण था कि उस चर्चा के प्रकाश मे योजना मे यथा-सभव परिवर्तन किया जायेगा।

पवनार से दिल्ली तक की यात्रा मे तव तक करीव 35 हजार एकड जमीन मिल चुकी थी। तेलगना मे इसका दैनिक औसत 200 एकड था, अव 300 एकड रहा। गाधीजी की शिक्षा और भारत की सास्कृतिक परपरा के कारण इस शाति-योजना को जनता से हार्दिक सहकार मिला है। देश मे करीव 30 करोड एकड जमीन है। मैने उसका 1/6 वा हिस्सा मागा है, क्योकि एक भारतीय परिवार मे साधारणतया पाच सदस्य रहते हैं। उस परिवार का छठा सदस्य जनता ही है, इसलिए उस भूमिहीन जनता के लिए मैने छठे हिस्से की माग की है।

यह सव मै क्या कर रहा हू? मेरा उद्देश्य क्या है? मै परिवर्तन चाहता हू। प्रथम हृदय-परिवर्तन, फिर जीवन-परिवर्तन और वाद मे समाज-परिवर्तन। इस तरह त्रिविध परिवर्तन, तिहरा इन्कलाव मेरे मन मे है।

मै पहले से ही न्याय और हक की वुनियाद पर यह वात रख रहा हू। न्याय यानी कानूनी न्याय नही, वल्कि ईश्वर का न्याय। (मेरी 'स्वराज्य-शास्त्र' पुस्तक मे यह वात मैने स्पष्ट कर दी है।) हमे कानून से जमीन तकसीम करनी होगी। एक कानून वह होता है, जो जवरदस्ती का, हिंसा का प्रतिनिधि होता है। दूसरा वह जो अहिंसा का।

मै भूमि की समस्या शाति के साथ हल करना चाहता हू। मै लोगो से दान मे भूमि माग रहा हू, भीख नही माग रहा हू। एक

ब्राह्मण के नाते मैं भीख मागने का अधिकारी हू, लेकिन यह भीख मे व्यक्तिगत नाते ही माग सकता हू । पर जहा दरिद्रनारायण के प्रतिनिधि के तौर पर मागना होता है, वहा मुझे भिक्षा नही मागनी है, दीक्षा देनी हे । इसलिए मै इस नतीजे पर पहुच चुका हू कि भगवान जो काम वुद्ध के जरिये करवाना चाहते थे, वह काम उन्होने मेरे इन कमजोर कधो पर डाला है । मैं मानता हू कि यह **धर्मचक्र-प्रवर्तन** का कार्य है । (9 2 52 वुद्ध पूर्णिमा ।)

दो-ढाई हजार वर्षो से प्रसिद्ध इस कालसी (उ प्र) स्थान मे अश्वमेध-यज्ञ के घोडे की तरह मै भी भूदान-यज्ञ के अश्व की तरह घूम रहा हू । महाभारत मे राजसूय यज्ञ का वर्णन है । मेरा यज्ञ प्रजासूय यज्ञ है । इसमे प्रजा का अभिषेक होगा । ऐसा राज, जहा मजदूर, किसान, भगी आदि सव यह समझे कि हमारे लिए कुछ हुआ हे । ऐसे समाज का नाम सर्वोदय हे । वही से प्रेरणा ले कर म घूम रहा हू ।

एक साल हो गया, अद्भुत यात्रा चली । मै अकेला घूम रहा था । सारे भारत मे हररोज भूदान की सभा होती थी । जमीन की माग होती थी और लोग जमीन देते थे । सालभर मे एक लाख एकड जमीन प्राप्त हुई । मै विल्कुल मस्ती मे घूम रहा था । रवि-वावू का पद याद आता था – **एकला चलो रे ओरे अभागा** । मैंने उसमे अपने लिए थोडा फरक कर लिया – **एकला चलो रे ओरे भाग्यवान** । वेद मे है, स्व स्विद् एकाकी चरति ? सूर्य एकाकी चरति । इस प्रश्नोत्तर से वडा उत्साह आता था ।

मै अकेला घूम रहा था और हमारे साथी, सर्व सेवा सघ के लोग वडे कुतूहल से, वडी उत्सुकता से, वडी सहानुभूति से देख रहे थे । लेकिन उसके वाद सेवापुरी सर्वोदय सम्मेलन (12-19 अप्रैल 1952) मे सर्व सेवा सघ ने प्रस्ताव पास किया कि दो साल मे 25

लाख एकड जमीन हासिल करेगे । अलौकिक शब्द ! एक साल में एक लाख एकड जमीन मिली और दो साल मे 25 लाख एकड प्राप्त करने का प्रस्ताव जाहिर हो गया ।

वहा बिहार के लोग मुझसे मिलने आये । वे चाहते थे कि मैं बिहार जाऊ । मैंने उनसे कहा, मैं आगे के मेरे कार्यक्रम के बारे मे सोच ही रहा हू, बिहार मे चार लाख एकड जमीन मिलती हो तो वहा आऊगा, अन्यथा विंध्य प्रदेश या और कही चला जाऊगा । लक्ष्मीबाबू ने कहा, ठीक है, बिहार मे 75 हजार गाव है, हर गाव से पाच एकड जमीन मिलेगी तो हिसाब पूरा हो जायेगा । और मैं बिहार की ओर निकल पडा ।

* * *

बुद्ध-महावीर की विहार-भूमि

जिस दिन मैंने बिहार (दुर्गावती 12 सितबर 1952) मे प्रवेश किया उस दिन से रोज 50 लाख एकड जमीन की माग करने लगा । एक दिन एक भाई ने कहा कि आप छठा हिस्सा मागते है तो बिहार का छठा हिस्सा 40 लाख आयेगा, 50 नही । दूसरे दिन से मैंने 40 लाख की रट लगायी । हमारे वैद्यनाथबाबू हिसाबी आदमी है । उन्होने मुझे हिसाब बता कर 32 लाख पर राजी कर लिया ।

उस पुण्य पावन प्रदेश (बिहार) मे हमारी यह पैदल यात्रा सूर्यनारायण की नियमितता से और उसकी साक्षी मे चल रही थी । यह बात अब बिहार की हवा मे फैल गयी थी कि जमीन जल्दी ही बट कर रहेगी ।

बाढ-पीडित प्रदेश मे हमारे ढाई महीने बीते । वहा ऐसे भी मौके आय कि हम लोगो के भोजन का कोई भी इतजाम नही था ।

साढे तीन साल मे ऐसा मौका कभी नही आया, लेकिन बाढ-पीडित क्षेत्र होने के कारण ऐसा हुआ । बावजूद इसके हमारी सभा मे एक जगह करीब दो-सौ नौकाए आ पहुची थी । सैकडो स्त्री-पुरुष आये थे । गीली जमीन और ऊपर से बारिश, लेकिन सब उत्साहपूर्वक खडे-खडे शाति के साथ प्रार्थना मे सम्मिलित हुए ।

एक जगह तो यहा तक हुआ कि एक आदमी ने छठा हिस्सा जमीन दान दी । उसमे कुछ खराब जमीन भी थी । हमने उसको कहा कि भाई, यह तो तोड कर देनी होगी । तो उसने तत्काल मजूर कर लिया । यह घटना कलियुग की है, सत्ययुग की नही । अपने प्रति इतने अधिक सद्‌भाव से अगर हम लाभ न उठा सके, तो हतभागी ही कहलायेगे ।

आज तक मै सिर्फ भूमि का दान लेता था, अब मै सपत्ति का भी दान लूगा । पैसा तो दाता के ही पास रहेगा । सपत्तिदान मे दाता अपनी सपत्ति का हिस्सा हर साल समाज को देता रहेगा । मै सिर्फ वचनपत्र लूगा । दाता अपनी आत्मा को साक्षी रख कर उसका विनियोग करेगा । यह मेरा अजीब ढग है । अगर मै फड इकट्ठा करता तो मुझे हिसाब रखना पडता और उसी मे मेरा सारा समय जाता । पर मुझे तो क्राति करनी है । इसमे मेरी यह दृष्टि है कि मै दान देनेवालो से कहना चाहता हू कि हम आपका पैसा नही चाहते, बल्कि आपकी 'टैलट' और अक्कल चाहते है । मै खुद मुक्त रहना चाहता हू और आपको बाधना चाहता हू । अब मै भूमि और सपत्ति, दोनो का हिस्सा मागूगा । (पटना 23-10-1952)

चाडिल मे मै सख्त बीमार हो गया (दिसबर 1952) । मलेरिया का बुखार आ गया । मै सोच रहा था कि या तो ईश्वर मुझे इस देह से मुक्त करना चाहता होगा या फिर मेरी देहशुद्धि

करा के मुझे फिर से काम मे लगाना चाहता होगा । 1924 मे ऐसी ही सख्त बीमारी हुई थी । बाद मे अनुभव हुआ कि उस बीमारी से मेरा लाभ ही हुआ । ईश्वर यदि इस देह से मुक्त करना चाहता हो तो क्या दवा उसकी इच्छा के विरुद्ध काम करेगी ? और अगर वह मुझे इस शरीर मे रखना चाहता हो, तो उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई बात कैसे होगी ? इसलिए दवा की जरूरत नही है । मैने दवा लेने से इनकार कर दिया ।

लेकिन मित्र और सुहृद चिंतित हो गये । राजेद्रबाबू और पडित जवाहरलाल के तार आये । श्रीबाबू (श्रीकृष्णसिह, बिहार के मुख्य-मत्री) आये और बहुत आग्रह किया । मै देख रहा था कि इन सबको बहुत क्लेश हो रहे है । तो मैने दवा लेना मजूर कर लिया । दवा लेने से बुखार उतर गया और सबकी चिता दूर हुई ।

लोगो के सामने यह पहेली हो गयी कि पहले बाबा ने दवा लेने से इनकार कर दिया और फिर दवा ले भी ली । बहुत-से लोगो ने अपनी भावना मुझे लिख कर भेजी । उनमे एक मत है कि दवा ले कर मैने बडा पुण्यकार्य किया है, दूसरा मत है कि मुझसे महापाप हुआ है और ईश्वर पर की मेरी श्रद्धा ढह गयी है । तीसरा यह भी पक्ष है कि हुआ तो दोष ही है, पर लोकसेवा की भावना से हुआ इसलिए माफ किया जा सकता है । मुझे गीता का श्लोक याद आया,

> अनिष्टमिष्ट मिश्र च त्रिविध कर्मण फलम्
> भवत्यत्यागिना प्रेत्य न तु सन्यासिनां क्वचित्

अब यह त्रिविध कर्मफल मेरे सिर पर भी चढनेवाला है या नही, मै नही जानता । और जानने की मुझे उत्सुकता भी नही । भगवान ने जो कुछ कराया वह हुआ, ऐसी इस विषय मे मेरी भूमिका है, इस लिए मै निश्चित हू ।

मैंने चाडिल मे (7 3 53) कहा था कि "हमे स्वतत्र लोकशक्ति निर्माण करनी चाहिए। अर्थात् हिंसाशक्ति की विरोधी और दडशक्ति से भिन्न लोकशक्ति हमे प्रकट करनी चाहिए। हमारे देवता यह जनता जनार्दन है।" मै जो घूम रहा हू उसके पीछे मेरी नही, उन तपस्वियो की ताकत है, जो कारखानो, खेतो और खानो मे काम करते है। आधा पेट रह कर भी काम करते है और मस्त रहते है। किसी को तकलीफ नही देते, बल्कि स्वय सहन करते जाते है। यही उनकी तपस्या है, जो मुझे जगाती है।

बिहार मे तो मुझे भगवान का प्रसाद भी मिल गया। देवघर के वैद्यनाथधाम मे हरिजनो को ले कर हम महादेवजी के दर्शन के लिए गये थे (19 सितबर 195) । महादेवजी के दर्शन तो नही मिल सके, लेकिन प्रसादरूप उनके भक्तो के हाथ की मार अवश्य मिली। जिन्होने मारपीट की उन्होने अज्ञानवश वैसा किया। इसलिए मैने नही चाहा कि उनको कोई सजा मिले। परतु मुझे इस बात से बहुत ही सतोष हुआ कि जो सैकडो भाई-बहन मेरे साथ गये थे, वे सभी शात रहे। इतना ही नही, मेरे साथियो ने, जिन पर बहुत ज्यादा मार पडी थी, उन्होने कहा कि उस समय हमारे मन मे कोई गुस्सा नही था। मुझे विश्वास है कि यह भेदासुर का अत कालीन आक्रोश ही सिद्ध होगा।

जबरदस्ती से या केवल कानून के बल से मदिर मे प्रवेश करने की मेरी इच्छा नही थी। उलटे मैने यह रिवाज रखा है कि जहा हरिजनो को प्रवेश नही मिलता उस मदिर मे मैं जाता ही नहीं। पर यहा हमने जब पूछा तो कहा गया कि मदिर मे हरिजन जा सकते है। इसी लिए हम लोग शाम की प्रार्थना के बाद श्रद्धापूर्वक दर्शन के लिए निकले। रास्ते मे हम लोगो ने मौन रखा था। मैं तो मन ही

मन महादेव की स्तुति के वैदिक सूक्त का चिंतन करता जा रहा था। उस हालत मे जब हमारे ऊपर अनपेक्षित मार पडी तो उससे मुझ पर एक विशेष उत्साह चढा। साथियो ने मुझे घेर लिया था, इसलिए मारनेवाले मुझ पर जो भी सीधा प्रहार करते, उसे साथी लोग झेल लेते, फिर भी यज्ञशेष के तौर पर कुछ मुझे भी चखने को मिला। जिनके चरणो का मै दास कहलाता हू, उन पर भी इसी धाम मे ऐसा ही प्रहार किया गया था, वह घटना मुझे याद आ गयी। वही भाग्य मुझे प्राप्त हुआ, कुछ धन्यता अनुभूत हुई।

14 दिसबर 1952 से 31 सितबर 1954 तक बिहार की यात्रा हुई। 23 लाख एकड भूमि प्राप्त हुई। परतु इससे बडी बात यह है कि मै कह सकता हू कि बिहार मे घूमते हुए ईश्वरीय प्रेम का साक्षात्कार हुआ। बिहार के लिए मेरे मन मे एक स्वप्न था और है। मै आशा करता हू कि 'भूदान-यज्ञमूलक ग्रामोद्योगप्रधान अहिसक क्राति' बिहार की भूमि मे हो कर ही रहेगी। मै अपने को बहुत धन्य समझता हू कि वहा इतने दिन विचरने का सौभाग्य मुझे मिला। वहा के कण-कण मे आख भरके मैने परमेश्वर का दर्शन पाया। वहा की जनता की सरलता, उदारता हृदय को छूए बिना नही रह सकती। हम जिसे प्रातीय भावना कहते है, वह बिहार के लोगो मे दूसरे प्रातो की तुलना मे मुझे बहुत कम मालूम हुई। वहा के लोगो ने मुझे आत्मीय भाव से माना। बहुत आनद और अपार शाति का वहा अनुभव हुआ। मनुष्य की आत्मा मे केवल आनद है। जितना व्यापक आकाश है, उतना ही व्यापक आनद है। बिहार की भूमि मे वह आनद हमने बहुत लूटा। आकाश के समान विशाल हृदय का सर्वत्र स्पर्श हुआ। इसलिए हम इस यात्रा को आनदयात्रा कहते है।

* * *

चैतन्य महाप्रभु के आगन मे

(पश्चिम बगाल-उत्कल यात्रा)

विहार की स्नेहलाभ की शक्ति के साथ हमने बगाल मे प्रवेश किया। वुद्ध भगवान की भूमि छोड कर चैतन्य महाप्रभु की भूमि मे गये । वहा 25 दिन की प्रेमयात्रा हुई (1–25 जनवरी 1955)। हम श्रीरामकृष्ण परमहस के समाधिस्थान पर गये थे (जन 1955)। वहा मैंने कहा था कि इसके आगे व्यक्तिगत समाधि नही, सामूहिक समाधि की जरूरत है। इस महापुरुष ने अपने जीवन मे हमे सिखाया हे कि किस तरह क्लेशरहित समाधि सभव है और किस तरह काचन के सग्रह से वच सकते है । हमारा दावा है कि हम सामाजिक क्लेश-निर्मूलन तथा समाज मे सपत्ति और लक्ष्मी वितरित करने का काम कर रहे हे । रामकृष्ण परमहस को काचन का स्पर्श सह्य न होता था । उन्ही के मार्ग का अनुसरण करते हुए मै सामूहिक काचनमुक्ति का प्रयोग कर रहा हू ।

* * *

मुझे इस वात की वहुत खुशी हे कि वगाल के वाद वीर-भूमि (उत्कल) मे मेरा प्रवेश हो गया (26 जनवरी 1955) । यह वह भूमि है, जिसने चक्रवर्ती अशोक को अहिसा की दीक्षा दी । जिसने 'चड अशोक' का परिवर्तन कर उसे 'धर्म अशोक' वना दिया ।

मै जव उत्तरप्रदेश मे घूम रहा था, तव वहा एक (मगरोठ) ग्रामदान हुआ था (23 मई 1952), जो आकस्मिक था । विहार की यात्रा के वाद मैंने उडीसावालो से कहा कि भूदान का विनम विहारवालो ने किया, अव आपके वहा ग्रामदान होना चाहिए ।

परमेश्वर की ऐसी योजना थी कि बारिश के हमारे चार महीने कोरापुट जिले मे बीते । मै यात्रा मे, जबकि ऊपर से मेघ वरसते थे, एक वैदिक मत्र का बहुत बार पाठ करता था, जोरो से उद्घोप करता था –

स नो वृष्टि दिवस्परि
स नो वाजमनर्वाणम्
स न· सहस्रिणीरिष

मैं खूब जोरो से चिल्लाता और साथियो को बोलने को कहता । ऋषि भगवान से प्रार्थना करता है कि हम पर स्वर्ग से खूब वृष्टि हो । वह भगवान की हम पर कृपा है । इसलिए बारिश का हम निरतर स्वागत-सत्कार करते है ।

दूसरी वस्तु ऋषि कहता है, हमारी गति में कोई बाधा न आये । हमारे पाद-सचार मे भी इस बारिश से कोई बाधा नही आयी और कार्यकर्ताओ मे बडा आत्मविश्वास पैदा हुआ । अक्सर बारिश मे प्रचार-कार्य ढीला पडता है – खास कर कोरापुट जैसे जिले मे, जो मलेरिया के लिए प्रसिद्ध है, विशेष प्रचार होने का विश्वास नही था । लेकिन बावजूद इसके सचार-प्रचार मे कोई बाधा नही आयी और 600 ग्राम दान मे मिले ।

तीसरी प्रार्थना ऋषि करता है कि ये जो बारिश की हजारो बूदे है, उससे परमेश्वर का मानो हस्तस्पर्श होता है, इसलिए हमारी इच्छा-शक्ति सहस्रगुणित होनी चाहिए । इस जिले मे हमे जो अनुभव आया, उससे हमारी इच्छा-शक्ति अवश्य सहस्रगुणित हो गयी है । क्योकि जिस इच्छाशक्ति का अनुभव हम करते थे उसी का अनुभव सहस्र लोग करते थे । व्यक्तिगतरूप से भी हमारी इच्छाशक्ति को बहुत बल मिला ।

फिर हम सर्वोदय सम्मेलन के लिए जगन्नाथपुरी पहुचे । वहा हम जगन्नाथ के दर्शन के लिए मदिर तक गये थे (21 मार्च 1955)। वहा से हमको वापस लौटना पडा । मै तो बहुत भक्तिभाव मे गया था । मेरे साथ एक फ्रेंच बहन थी । अगर वह मदिर मे नही जा सकती है, तो फिर मै भी नही जा सकता हू, ऐसा मुझे मेरा धर्म लगा । मैने तो हिंदूधर्म का बचपन से आज तक सतत अध्ययन किया है । ऋग्वेद आदि से ले कर रामकृष्ण परमहस और महात्मा गाधी तक धर्म-विचार की जो परपरा यहा पर चली आयी है, सबका मने बहुत भक्तिपूर्वक अध्ययन किया है । मेरा नम्र दावा है कि हिंदूधर्म को मै जिस तरह समझा हू, उस रूप मे उसके नित्य आचरण का मेरा नम्र प्रयत्न रहा है । मुझे लगा कि उस फ्रेंच बहन को बाहर रख कर मै अदर जाता, तो मेरे लिए बडा अधर्म होता । हमने वहा के अधिष्ठाता से पूछा कि क्या इस बहन के साथ हमको अदर प्रवेश मिल सकता है ? जवाब मिला कि नही मिल सकता । तो, भगवान की जगह उन्ही को भक्तिभाव से प्रणाम कर के मै वापस लौटा ।

उस समय मैने कहा था, जिन्होने हमको अदर जाने से इनकार किया, उनके लिए मेरे मन मे किसी प्रकार का न्यूनभाव नहीं है । मै जानता हू कि उनको भी दु ख हुआ होगा, परतु वे एक सस्कार के वश थे, इसलिए लाचार थे । इसलिए उनको मै ज्यादा दोष भी नही देता । इतना ही कहता हू कि हमारे देश के लिए और हमारे धर्म के लिए यह बडी ही दु खदायक घटना है । बाबा नानक को यहा पर मदिर के अदर जाने का मौका नही मिला था और बाहर ही से उन्हे लौटना पडा था । लेकिन वह तो पुरानी घटना हुई । हम आशा करते है कि अब वह बात फिर से नही दुहरायी जायेगी ।

* * *

आचार्यों की भूमि मे

(दक्षिण भारत-यात्रा)

हमारे पुराने धार्मिक लोग यात्रा के लिए निकलते थे तब गगा का पानी ला कर रामेश्वर के सिर पर अभिषेक करते थे, तो आधी यात्रा हो जाती थी । फिर रामेश्वर से समुद्र का पानी ले कर काशी जाते थे, और वहा काशीविश्वनाथ पर उसका अभिषेक करते थे, तब यात्रा पूरी होती थी । इसी प्रकार भूदान-यज्ञ का उत्तर का यश ले कर हम दक्षिण (आध्र . 1 अक्तूबर 1955) पहुचे। बिहार की लाखों एकड जमीन, लाखो दाता और उडीसा के हजार ग्रामदान ले कर तमिलनाड (13 मई 1956) आये । **बिहार में यह सिद्ध हुआ कि एक प्रांत में लाखो लोग लाखो एकड जमीन दे सकते है। उडीसा में यह सिद्ध हुआ कि हजारो ग्रामदान हो सकते है।** अब एक तरह से हमारा काम खतम हुआ है । यानी इस पद्धति से काम हो सकता है, यह सिद्ध हो गया। इससे ज्यादा एक मनुष्य क्या कर सकता है ? इसलिए जहा तक हमारा ताल्लुक है हमारे काम की परिणति हो चुकी है । इसी लिए हमने भूदान के साथ दूसरे काम जोडने का सोचा । उसे ले कर हम फिर उधर जाना चाहते है ।

पाच साल हमारी यात्रा सातत्यपूर्वक चली । पहले साल बारिश के दो माह हमने यात्रा रोक कर काशी मे बिताये । पर अनुभव मे आया कि दो माह मे केवल तेरह दिन ही यात्रा के समय बारिश आयी । तो केवल तेरह दिन के लिए दो-ढाई महीना यात्रा बद रखे, यह हमे ठीक नही लगा और दूसरे साल से बारिश मे भी हमने यात्रा जारी रखी ।

अब तक हम हररोज एक पडाव करते थे, पर तमिलनाड मे दो पडाव करना शुरू किया। हिंदुस्थान मे पाच लाख गाव है, उन सभी गावो मे पहुच सके, इस आकाक्षा से मैने दो पडाव शुरू नही किये। अगर मैं मन मे ऐसी अहता रखता तो रजोगुण का काम हो जाता। मै रजोगुण को पसद नही करता, उसमे कोई धर्मकार्य नही होता। वास्तव मे मैने रोज के दो पडाव इसलिए शुरू किये कि मेरे मन मे एक तीव्रता थी। वह तीव्रता मुझमे कहती थी कि तुमसे जितना बन सके, उतना परिश्रम करो। सत्त्वगुण को इकट्ठा करने के लिए अधिक परिश्रम करना चाहिए। मै जानता हू कि भूदान-यज्ञ मेरी कृति से पूरा नही होगा। वह तो तब पूरा होगा जब जन-समाज उसे उठायेगा।

एक भाई ने कहा कि अब तो घूमना ही आपका मुख्य काम हो जायेगा, फिर गाव मे क्या काम होगा? मैने उनसे कहा कि जिसे आप घूमना कहते हैं, वह हमारी प्रार्थना है।

बगाल से चारुबाबू ने लिखा था कि 'आपने जो दो बार चलना शुरू किया है, मै समझता हू कि उससे आपने सौम्य सत्याग्रह को सौम्यतर सत्याग्रह मे परिवर्तित किया है और इससे हमे बल मिल रहा है।' मुझे यह बहुत ही अच्छा लगा। मै नही कह सकता कि इस तरह विचार कर मैने यह किया था, परतु सौम्यतर होने की वासना जरूर है और यह हो भी रहा है। दिनभर एक गाव मे रहते तो जरूर कुछ न कुछ कार्यशक्ति वहा लगानी पडती, कुछ दबाव भी पडता। परतु दो बार चलना शुरू किया तब होता यह था कि विचार समझा दिया और आगे बढे। यह प्रत्यक्ष सौम्यतर का ही रूप हो जाता है।

मुझे ज्यादा जमीन मिलती है तो खुशी नही होनी और कम मिलती है तो दुःख नही होता। हमारी बिहार-यात्रा मे हमे औसत प्रतिदिन तीन हजार एकड जमीन और तीन साढे तीन-सौ दानपत्र मिले। वकील की प्रैक्टिस वढती है, तो उसकी फीस भी वढती है, परतु यहा तमिलनाड मे लोगो ने हमे 'डीग्रेड' कर दिया। सेलम जिले मे 33 दिनो मे सिर्फ चार-साढे चार एकड जमीन मिली। नदी सूखने लगी, फिर भी अदर जो नदी वहती है, वह सूखी नही। भक्ति का प्रवाह अखड वह रहा है। चाहे वाहर की कावेरी सूख जाये लेकिन अदर का झरना नही सूखेगा।

पलनी मे मैने हमारे कार्यकर्ताओ के सामने **निधिमुक्ति** की वात रखी (16–22 नववर 1956)। मैने कहा – आज वहुतो के मन मे यह भ्रम है – जो निरा भ्रम नही, कुछ तथ्य भी है, लेकिन भ्रम ज्यादा–कि भूदान-आदोलन वैतनिक कार्यकर्ताओ के जरिये चल रहा है। मैने तमिलनाड मे देखा कि वहा करीव पाच-सौ कार्यकर्ता काम करते होगे, जिनमे से सिर्फ पचास ही वैतनिक कार्यकर्ता है। फिर भी यह आभास निर्माण करने मे हम भी जिम्मेवार है, क्योकि हम सोचते है कि वैतनिक कार्यकर्ताओ के विना हमारा काम चलेगा नही। इसका अर्थ यह है कि उनके भरोसे ही हमारा काम चलता है। इसलिए इसे एकदम तोडो और जाहिर करो कि इसी वर्ष की 31 दिसवर को सव वेतन वंद होगा। वजट वगैरह कुछ पेश न होगा। तव हमे प्राप्ति के कुछ दूसरे रास्ते सूझेगे। इस पर शका होती है कि इससे चारो ओर काम वद पडेगा। पर मै कहता हू कि उससे कुछ भी न विगडेगा। हम ऐसा सोच कर यह करे कि सव एक-दूसरो को सभालेगे, अपनी ओर से किसी का त्याग न करेगे, हमारे पास जो कुछ है वाट कर खायेगे।

निधिमुक्ति के साथ-साथ तंत्रमुक्ति भी हो गयी। भारतभर में भूदान का काम करने के लिए जिले-जिले में भूदान-समितियां थीं। हिंदुस्तान के 300 जिलों में से 250 जिलों में भूदान-समितियां काम कर रही थीं। उनके लिए गांधी-निधि से कुछ मदद भी मिलती थी। गांधी-निधिवाले मानते थे कि गांधी-विचारों का प्रचार जितनी अच्छी तरह इस ढंग से हो सकता है, उतना और किसी तरीके से हो नहीं सकता और बड़ी खुशी से भूदान के लिए पैसा देते थे।

परंतु ग्रामदान शुरू होने के बाद मुझे लगा कि अब और एक क्रांतिकारक कदम उठाना चाहिए। इसलिए भूदान के लिए जो गांधी-निधि से सहायता ली जाती थी, वह हमने बंद कर दी। सारी भूदान समितियां तोड़ डालीं। कोई भी पार्टी व्यापक बनती है तो अपना संगठन और मजबूत करना चाहती है, परंतु हमने उससे बिलकुल उलटी प्रक्रिया चलायी। कल्पना के विकास का इतिहास लिखनेवाला भविष्य का इतिहासकार इस कल्पना को बहुत महत्त्व देगा। वही वास्तव में इतिहास है, जिसमें मानव की कल्पना के क्रमिक विकास के संबंध में बताया जाता है।

मैंने यह सारा तंत्र क्यों तोड़ा? इसलिए कि संस्था से साधारण सेवा का काम हो सकता है, सत्ता बन सकती है परंतु जन-समाज में क्रांति नहीं लायी जा सकती। क्रांति मान्त्रिक होती है, तान्त्रिक नहीं।

भूदान-समितियां टूटने का परिणाम दोनों तरह का हुआ। कुछ प्रांतों में तो जहां पहले 40 / 50 कार्यकर्ता ही थे, वहां सैकड़ों हो गये और कुछ प्रांतों में जहां पहले 40 / 50 कार्यकर्ता थे, वे भी गिर गये। मैंने दोनों परिणामों की कल्पना कर रखी थी।

समितिया टूटने के बाद कुल हिंदुस्तान का काम गिर जाता तो भी हमे यही लगता कि हमने जो कदम उठाया वह सही है। क्योंकि यह एक शास्त्र है कि क्रांतिया कभी संस्थाओं के जरिये नही होती। संस्था का एक ढांचा होता है, एक अनुशासन की पद्धति होती है, उसके अंदर रह कर ही काम किया और लिया जाता है। ऐसा करने से बुद्धिस्वातंत्र्य नही रहता।

तमिलनाड मे कांची के शंकराचार्य से मिलना हुआ था। वे वृद्ध है। शंकराचार्य सन्यासी ही होते हैं, परंतु कुछ अरसों तक गद्दीनशीन रहने के बाद उन्हे लगा कि उसका भी संन्यास होना चाहिए। इसलिए उन्होंने अपने शिष्य को उस शास्ट्रगद्दी पर बिठा दिया और खुद कांची के पास एक गाव मे रहने लगे। मैंने देखा, उनकी झोंपडी मे एक घडे, दो-तीन किताबों और दो-तीन चटाइयों के सिवा कुछ भी दिखायी नही दिया। वे बिलकुल अपरिग्रही थे, महाविद्वान थे। तमिलनाड मे उनकी बहुत इज्जत थी। 1300 साल बाद भी शंकराचार्य की गद्दी पर वैसे व्यक्ति को देख कर तत्काल मेरे ध्यान मे आया कि हजारों साल से जो पुरानी संस्थाएं चलती हैं, उनका आधार क्या है।

यात्रा कन्याकुमारी पहुची। वहां हम दो दिन रहे। दूसरे दिन (16 अप्रैल 1957) हम समुद्र पर गये। सूर्यनारायण का उदय हो रहा था। समुद्र कन्याकुमारी के चरणों को धो रहा था। समुद्र के पानी का स्पर्श, सूर्यनारायण का दर्शन और कन्याकुमारी का स्मरण करते हुए मैंने अपनी प्रतिज्ञा दुहरायी कि* –

"हमारी देह तब तक इसी तरह से काम
में निरंतर लगी रहेगी, जब तक स्वराज्य
का रूपांतर ग्रामस्वराज्य मे नही होगा।"

---

* प्रथमबार प्रतिज्ञा राजघाट, दिल्ली पर ली गयी थी। – सं

प्रतिज्ञा के लिए ही दो दिन उस स्थान पर रहने का योजना था। उस समय हमारे साथ कुछ भाई भी थे। चाहता तो सबको समझा सकता था और प्रतिज्ञा लेने को कहता, पर वैसा नहीं किया। मैंने ही प्रतिज्ञा कर ली। फिर भी प्रतिज्ञा में मैंने "मैं" के बदले "हम" शब्द का ही उपयोग किया। पर वह तो मेरा रिवाज ही है। मैं अपने को एक व्यक्ति नहीं मानता, इसलिए 'मैं' के बदले 'हम' स्वाभाविक ही था। यह प्रतिज्ञा व्यक्तिगत हो सकती है, लेकिन मैं चाहता हूं कि सबके मन में वैसी प्रतिज्ञा हो।

* * *

तमिलनाड के बाद हम केरल पहुंचे। केरल-यात्रा की यह विशेषता है कि वहां शांति-सेना की स्थापना हो गयी। हिंसाशक्ति ऊपर न उठे, इसके लिए यह शांति-सेना जागृत रहेगी। शांति-सैनिक सामान्य समय में समाज-सेवा, ग्रामदान-प्राप्ति का काम करेंगे और विशिष्ट मौके पर शांति-स्थापना के लिए अपना सिर समर्पण करने की तैयारी रखेंगे।

सन् 1957 के बाद क्या होगा? हमारे काम का स्वरूप क्या रहेगा? मुझसे ऐसा एक सवाल पूछा जाता था। उसका जवाब देते हुए मैंने कहा था कि हमारा काम कालातीत है, स्थलातीत है। मुझे सूझा कि ग्रामस्वराज्य तो बन ही गया। रामदासस्वामी को दर्शन हुआ था कि परकीय सत्ता समाप्त हुई, "म्लेच्छ संहार जाहला।" रामदासस्वामी की मृत्यु के ठीक 25 साल बाद औरंगजेब की मृत्यु हुई। परंतु रामदास को उसका दर्शन हो चुका था और उन्होंने कहा कि अब स्नानसंध्या के लिए पानी खुल गया यानी काशीनगरी, जो परकीय सत्ता में थी, वह स्वराज्य में आ गयी।

समितिया टूटने के बाद कुल हिंदुस्तान का काम गिर जाता तो भी हमे यही लगता कि हमने जो कदम उठाया वह सही है। क्योंकि यह एक शास्त्र है कि क्रांतिया कभी संस्थाओं के जरिये नहीं होती। संस्था का एक ढाचा होता है, एक अनुशासन की पद्धति होती है, उसके अदर रह कर ही काम किया और लिया जाता है। ऐसा करने से बुद्धिस्वातंत्र्य नही रहता।

तमिलनाड मे काची के शकराचार्य से मिलना हुआ था। वे वृद्ध है। शंकराचार्य सन्यासी ही होते हैं, परतु कुछ अरसों तक गद्दीनशीन रहने के बाद उन्हे लगा कि उसका भी संन्यास होना चाहिए। इसलिए उन्होंने अपने शिष्य को उस राष्ट्रगद्दी पर बिठा दिया और खुद काची के पास एक गांव मे रहने लगे। मैंने देखा, उनकी झोंपडी मे एक घडे, दो-तीन किताबों और दो-तीन चटाइयों के सिवा कुछ भी दिखायी नही दिया। वे बिलकुल अपरिग्रही थे, महाविद्वान थे। तमिलनाड मे उनकी बहुत इज्जत थी। 1300 साल बाद भी शंकराचार्य की गद्दी पर वैसे व्यक्ति को देख कर तत्काल मेरे ध्यान मे आया कि हजारों साल से जो पुरानी संस्थाएं चलती हैं, उनका आधार क्या है।

यात्रा कन्याकुमारी पहुची। वहा हम दो दिन रहे। दूसरे दिन (16 अप्रैल 1957) हम समुद्र पर गये। सूर्यनारायण का उदय हो रहा था। समुद्र कन्याकुमारी के चरणों को धो रहा था। समुद्र के पानी का स्पर्श, सूर्यनारायण का दर्शन और कन्याकुमारी का स्मरण करते हुए मैंने अपनी प्रतिज्ञा दुहरायी कि * –

"हमारी देह तब तक इसी तरह से काम
मे निरंतर लगी रहेगी, जब तक स्वराज्य
का रूपांतर ग्रामस्वराज्य मे नही होगा।"

---

* प्रथमबार प्रतिज्ञा राजघाट, दिल्ली पर ली गयी थी। – सं

प्रतिज्ञा के लिए ही दो दिन उस स्थान पर रहने का सोचा था। उस समय हमारे साथ कुछ भाई भी थे। चाहता तो सबको समझा सकता था और प्रतिज्ञा लेने को कहता, पर वैसा नही किया। मैंने ही प्रतिज्ञा कर ली। फिर भी प्रतिज्ञा में मैंने "मैं" के बदले "हम" शब्द का ही उपयोग किया। पर वह तो मेरा रिवाज ही है। मैं अपने को एक व्यक्ति नही मानता, इसलिए 'मैं' के बदले 'हम' स्वाभाविक ही था। यह प्रतिज्ञा व्यक्तिगत हो सकती है, लेकिन मैं चाहता हू कि सबके मन मे वैसी प्रतिज्ञा हो।

* * *

तमिलनाड के बाद हम केरल पहुचे। केरल-यात्रा की यह विशेषता है कि वहा शाति-सेना की स्थापना हो गयी। हिंसाशक्ति ऊपर न उठे, इसके लिए यह शाति-सेना जागृत रहेगी। शाति-सैनिक सामान्य समय मे समाज-सेवा, ग्रामदान-प्राप्ति का काम करेगे और विशिष्ट मौके पर शाति-स्थापना के लिए अपना सिर समर्पण करने की तैयारी रखेंगे।

सन् 1957 के बाद क्या होगा? हमारे काम का स्वरूप क्या रहेगा? मुझसे ऐसा एक सवाल पूछा जाता था। उसका जवाब देते हुए मैंने कहा था कि हमारा काम कालातीत है, स्थलातीत है। मुझे सूझा कि ग्रामस्वराज्य तो बन ही गया। रामदासस्वामी को दर्शन हुआ था कि परकीय सत्ता समाप्त हुई, "म्लेच्छ संहार जाहला।" रामदासस्वामी की मृत्यु के ठीक 25 साल बाद औरंगजेब की मृत्यु हुई। परंतु रामदास को उसका दर्शन हो चुका था और उन्होंने कहा कि अब स्नानसंध्या के लिए पानी खुल गया यानी काशीनगरी, जो परकीय सत्ता मे थी, वह स्वराज्य मे आ गयी।

ऐसा ही मुझे लगा कि ग्रामस्वराज्य हो चुका है। उडीसा मे ग्रामदान हुए। तमिलनाड में भी हुए। और केरल में भी देखा गया कि वहां की जनता की उदारता दूसरे किसी प्रात की उदारता से कम नही है। वहा भी सैकडों ग्रामदान हुए। तो हमने अपने मन मे मान लिया कि यह बात हो चुकी है, अब उसके रक्षण के लिए शाति-सेना बननी चाहिए। गणित तो मेरा हमेशा चलता ही है। मैंने हिसाब लगाया कि पाच हजार मनुष्यों की सेवा के लिए एक शाति-सैनिक चाहिए। अर्थात् 35 करोड लोगों की सेवा के लिए 70 हजार सैनिक चाहिए। ऐसी एक सेना शांति-सेवको की भारत मे खडी हो जाये।

मैंने केरलवालो से कहा कि वे इसमे पहल करे। तो केलप्पन् जैसे नेता शाति-सेना के कमाडर होने के लिए तैयार हो गये। पहले तो वे किसी पक्ष मे थे। पर फिर भी उन्होने फौरन बिना किसी हिचकिचाहट के इस्तीफा दे दिया। उनके प्रति लोगों मे इज्जत है। ऐसा सेनापति केरल मे शाति-सेना के लिए मिला। वैसे ही उनका शब्द मानने के लिए सेना भी तैयार हुई। पचासों जवानो ने यह कह दिया कि हमे मजूर है। एक अजीब दृश्य केरल मे उपस्थित हुआ। एक सभा मे खडे हो कर आठ-नौ लोगों ने प्रतिज्ञा की कि हम शाति-सेना के लिए तैयार रहेगे और जहा ऐसा प्रसग आयेगा वहा मर मिटेंगे। और भी दस-बीस लोग इस तरह की प्रतिज्ञा करने के लिए तैयार हो सकते थे। परंतु हमने उनको रोका। हमने कहा कि हम अभी ज्यादा लोग नही चाहते, यह प्रथम दिन है। परखे हुए लोग, जिनसे हमारा सपर्क आया हैं, आरभ के लिए बस है। इस तरह केरल मे शाति-सेना की स्थापना हुई (कोलिक्कोड : 11 7 57)।

शांति-सेना की स्थापना के बाद मैंने कहा था कि सारे भारत की शांति-सेना के लिए कोई 'सुप्रीम कमांड' (सेनापति) चाहिए, यह परमेश्वर ही करेगा। जिस भाषा में मैं बोल सकता हूं, उससे दूसरी भाषा में बोलने की ताकत मुझमें नहीं है। फिर भी लक्षण यह दीखता है कि अखिल भारत में शांति-सेना के सेनापतित्व की जिम्मेदारी विनोबा को उठानी होगी और वैसी मानसिक तैयारी विनोबा ने कर ली है।

मैंने देश में 70 हजार शांति-सैनिकों की मांग की। इतने शांति सैनिक नहीं मिलने, तो हम हास्यास्पद बन जाते हैं। मुझे ऐसा हास्यास्पद बनना अच्छा लगता है। हास्य भी एक रस है। वह रस भी अगर लोगों को मिलता है तो अच्छा ही है।

मैं इस तरह के गणित करके जो आंकड़े रखता हूं वे इसलिए कि हमें कहां पहुंचना है, यह ध्यान में आ जाये। हमने पांच करोड़ एकड़ जमीन की मांग की थी। लोग पूछते हैं कि 40 लाख एकड़ जमीन ही आपको प्राप्त हुई। अब? यानी हमने स्वयं को हास्यास्पद बना लिया। अगर हम 25-30 लाख एकड़ जमीन हासिल करने की बात करते तो उससे भी ज्यादा जमीन मिल जाती। परंतु हमने पांच करोड़ एकड़ का तय किया। जो लोग हमारी हंसी उड़ाते हैं वे नहीं समझते कि इस देश में किस ढंग से चलना है। यो वै भूमा तत्सुखम्, नाल्पे सुखमस्ति। व्यापकता में सुख है, अल्प में नहीं। मैं असंभव दीखनेवाला ध्येय सामने रखता हूं। और उसे संभव बनाने का प्रयत्न करता हूं। इसी लिए मेरे पांव को गति मिलती है।

केरल में गुरुवायूर नाम का प्रसिद्ध मंदिर है। इतना प्रसिद्ध, मानो वह केरल का पंढरपुर ही है। कई वर्ष पूर्व वहां केलप्पन् ने उपवास किया था। केलप्पन् के उपवास में गांधीजी ने भाग लिया

था। गांधीजी ने केलप्पन् से कहा कि तुम उपवास मत करो, तुम्हारे बदले मैं करूंगा। गांधीजी ने उस उपवास को अपने ऊपर ओढ लिया। उसके बाद वह मंदिर हरिजनों के लिए खोल दिया गया। मै जब वहां गया तो मेरे साथ कुछ ईसाई साथी थे। मैंने मदिरवालो से पूछा, इनके साथ आप मुझे अंदर जाने देंगे ? उन्होंने कहा, इनके साथ नही आने देंगे। लेकिन अगर आप भीतर आयेगे तो हमे अत्यत आनंद होगा, और न आयेगे तो हमे बहुत दु.ख होगा। तब मैंने कहा, मै मजबूर हू। मै नही समझता कि अपने साथ आये हुए ईसाई मित्रो को छोड कर मदिर मे जा कर मैं ईश्वर-दर्शन कर सकूंगा। वहा मुझे देवता के दर्शन नही होगे। इसलिए मैं नही आता। मै अदर गया नही।

गुरुवायूर मे मुझे नही जाने दिया गया, इसके लिए मलयालम् समाचारपत्रो मे लगातार प्रखर आलोचना हुई। प्रचड लोकमत इस घटना के खिलाफ था। केवल एक-दो समाचार पत्रों ने मेरी टीका की कि अन्यधर्मियों को ले जाने का आग्रह रखना गलत है। बाकी के बीस-पचीस समाचारपत्रो ने यही कहा कि मेरा विचार उचित था और मुझे मदिर मे न जाने देने मे बडी भूल हुई है और हिंदूधर्म पर बडा आघात हुआ है।

कुछ स्थानो पर इससे उलटा भी अनुभव आया। मेलकोट मे रामानुजाचार्य का मदिर है, जिसमें रामानुजाचार्य पद्रह साल तक रहे थे। रामानुजाचार्य एक अत्यत उदार आचार्य हैं। उन्होने जगदुद्धार का प्रचड कार्य किया है। मेलकोट सारे दक्षिणभारत का प्रसिद्ध स्थान है। मैं वहा गया था ; हमारे साथियों में कुछ ईसाई थे। उनके साथ मैं अदर गया। यह आनद का विषय है कि मेलकोट मे उन्होंने हमे प्रवेश दिया।

* * *

इसके बाद हमारी भूदान-यात्रा कर्नाटक पहुची। वहा के प्रसिद्ध गोकर्ण-महाबलेश्वर मे फिर वही प्रसग आया। वहा हमारे साथियों में सलीम नाम का एक मुसलमान भाई था। बडा प्रेमल, बडा भावुक। मैंने मदिर के मालिको से और पुजारियो से पूछा, क्या आप हमे अदर जाने देगे? इस प्रकार का एक व्यक्ति हमारे साथ है। उन्होने कहा, आप अपने सब साथियो के साथ अदर आइए। हमे आपके यहा आने मे कुछ भी आपत्ति नही है। मुझे इससे बहुत आनद हुआ। गोकर्ण-महाबलेश्वर मे मैं अन्य धर्मियो के साथ गया और उन लोगो ने हमे प्रवेश करने दिया, फिर भी वह देवता भ्रष्ट नही हुआ। गोकर्ण-महाबलेश्वर कोई छोटा तीर्थक्षेत्र नही है।

मदिर-प्रवेश का आग्रह यदि मै न रखू, तो ससार मे हिंदूधर्म की साख नही रहेगी। मुसलमानो ने अपनी मस्जिदों मे, ईसाइयो ने अपने गिरजाघरो मे, सिखो ने गुरुद्वारो मे, सभी जगहो पर मेरा अत्यत प्रेम से स्वागत किया है। जिस मनुष्य के हृदय मे प्रेम ही भरा हो, उसको कौन प्रेम नही करेगा?

कर्नाटक मे सयुक्त कर्नाटक के प्रथम वर्षदिन पर हमने नये मत्र का उद्घोष किया – 'जय जगत्' (1 नवबर 1957)। सयुक्त कर्नाटक पहला कदम है, इसके बाद सयुक्त भारत और उसके बाद सयुक्त विश्व बनाना है। पद्रह साल पहले 'जय हिद' का नारा निकला था। अब वह 'जय जगत्' तक पहुच गया। दुनिया मे वेग से विचार आगे बढ रहे हैं। धीरे-धीरे सभी देशों की सरहदे टूटनेवाली हैं। अब विश्व को सम्मिलित परिवार बनाने की सभावनाए बढ रही हैं। भावना विशाल हो रही है। इसलिए हमने कहा कि इसके आगे हमारा मत्र 'जय जगत्' रहेगा।

बहुत पुरानी बात है। एकबार पवनार आश्रम में आजाद हिंद सेना के कुछ भाई मुझसे मिलने आये थे। उन्होंने सलाम करते हुए कहा, 'जय हिंद'। मुझे भी जवाब में सलाम करना चाहिए था। पर मैंने कहा, 'जय हिंद, जय दुनिया, जय हरि'। यानी मैं सुझाना चाहता था कि 'जय हिंद' भी छोटा नारा साबित हो सकता है, ऐसा जमाना आ गया है। मैंने आगे कहा था कि 'जय हिंद' तभी सही है, जबकि उसके साथ 'जय दुनिया' भी जुड़ा हो। अपने देश की जय में दूसरे देश की पराजय न हो। फिर सारी दुनिया इतनी पागल बन सकती है कि परमेश्वर को भी भूल जाये। इसलिए उसके साथ 'जय हरि' भी जोड़ दिया। 'जय हरि' गहराई है और 'जय दुनिया' व्यापकता है। 'जय हिंद' तो आज बहुत छोटी चीज हो गयी है। यह बात मैंने सात-आठ साल पहले उन लोगों को कही थी। अब तो कर्नाटक का बच्चा-बच्चा 'जय जगत्' बोल रहा है।

इन्हीं दिनों मेरा जोरदार चिंतन चला था कि छह साल हुए अच्छा काम चला, भूदान से ग्रामदान निकला। क्या यह सब मेरा खब्त है? 'फैड' है? पागलपन है? अथवा इसमें कोई तथ्य है? मुझे लगा, इसकी परीक्षा होनी चाहिए। मैंने सर्व सेवा संघ के द्वारा नेताओं को आवाहन किया कि इसकी परीक्षा कीजिए और सुझाव दीजिए।

यलवाल (कर्नाटक) में ऐसी सर्वपक्षीय राजनैतिक नेताओं की ग्रामदान-परिषद हुई (21, 22 सितंबर 1957)। उसमें ऐसे नेता * उपस्थित थे, जो व्यवहार का उत्तम विचार करनेवाले के नाते

---

* सर्वश्री राजेंद्रप्रसाद, पंडित नेहरू, गुलजारीलाल नंदा, मुरारजी देसाई, कामराज नाडर, सैयद अहमद, नंबूद्रीपाद, निजलिंगप्पा, श्रीमती कृपलानी आदि

सर्वमान्य थे। उन्होने एकमति से ग्रामदान के विचार को बल दिया और 'मेगनाचार्टा' दिया, जिसमे लिखा है कि "ग्रामदान के विचार को सबको उत्तेजन देना चाहिए, क्योकि उससे नैतिक उन्नति के साथ भौतिक उन्नति होगी।" इस पर मैं सोचने लगा कि इन दो उन्नतियो को छोड कर मानव के लिए तीसरी क्या उन्नति शेष रही ? मतलब केवल धर्म प्रवचन करनेवालो से ही नही, व्यावहारिक नेताओ से भी उस प्रकार का आश्वासन मिला। तब मैं समझ गया कि ग्रामदान का विचार लोकमान्य हुआ है। उस परिषद मे मैंने यह विचार रखा था कि ग्रामदान 'डिफेन्स मेजर' (संरक्षण का साधन) है।

इस परिषद मे मैंने मेरा यह विचार भी रखा था कि मेरी एक मूलभूत श्रद्धा है कि हर मनुष्य के हृदय मे अतर्यामी है। ऊपर-ऊपर से जो बुराइया दीखती है, वे गहराई मे नही होती। इसलिए मनुष्य-हृदय की गहराई मे प्रवेश कर के वहा जो अच्छाइया भरी हैं, उनको बाहर लाने की कोई तरकीब मिलनी चाहिए। दूसरी बात, इस दुनिया मे कुल के कुल 'हैव्ज' ('हैं' वाले) हैं, 'हैवनाट्स' ('नही' वाले), परमेश्वर की कृपा से दुनिया मे कोई नही है। इसलिए जिसके पास जो है – जमीन, सपत्ति, श्रम, बुद्धि, प्रेम, वह ग्राम को समर्पण करे, अपने घर तक सीमित न रखे। नही तो कुछ लोगो का देने का धर्म और कुछ लोगो का लेने का धर्म हो जायेगा। ऐसा नही हो सकता, क्योकि धर्म वही होता है, जो सबको लागू होता है।

सर्वोदय-पात्र का विचार भी कर्नाटक की यात्रा मे ही मैने प्रथम बार प्रस्तुत किया। (धारवाड : 1 फरवरी 1958)

गीता में आता है, अधिष्ठान तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्। किसी भी कार्य के लिए पहले चाहिए अधिष्ठान और अधिष्ठान के बाद चाहिए कर्ता। अहिंसा के सामाजिक प्रचार के लिए अधिष्ठान मिल गया – भूदान का प्रारम्भ हो गया। उसके बाद, सारे देश में पाच हजार मनुष्य के लिए एक सेवक के हिसाब से 70 हजार विचारवान आचारवान लोकसेवक चाहिए। उनकी एक सेवा-सेना – शाति-सेना बनेगी, जो गाव-गाव की, घर-घर की सेवा करेगी और देश मे शाति की रक्षा करेगी। केरल मे ऐसी शाति-सेना का प्रारंभ हो गया। अब इसके आगे 'करण च पृथक् विधम्' – तरह-तरह के साधन चाहिए।

मैंने दो प्रकार के साधनो की माग की – सपत्तिदान और सम्मतिदान। सपत्तिदान यानी अपनी सपत्ति के कुछ हिस्से का दान। भगवान ने, कम या अधिक जो भी सपत्ति हमे दी है, उसका एक अश समाज को समर्पण कर के बचे हुए का भोगने का अधिकार मनुष्य को है। उपनिषद की आज्ञा है, 'तेन त्यक्तेन भुजीथाः।' श्रम हो, सपत्ति हो, वुद्धि हो, कुछ न कुछ देने की हर-एक से मैंने माग की : इससे बहुत बडी आध्यात्मिक और उतनी ही बडी भौतिक शक्ति इस भारत में पैदा होगी।

सम्मतिदान का मतलब है सर्वोदय, शाति-सेवा, ग्रामदान, खादी-काम मे अपनी सम्मति प्रकट करना। उसमे हम यथाशक्ति योग देंगे, ऐसी भावना लोगो मे आये और उसके चिह्न के तौर पर रोज थोडा-थोडा समाज को दें। सपत्तिदान मे तो छठा हिस्सा देने की बात है। सम्मतिदान मे एक मुट्ठी अनाज हर घर से मिलना चाहिए।

एक मुट्ठी अनाज हर घर से मिले और वह भी छोटे बच्चे की

मुट्ठी से। यह मेरा एक दर्शन है। घर का बड़ा मनुष्य या मां सर्वोदय के नाम से एक मुट्ठी अनाज डाले तो ज्यादा अनाज आयेगा। इसलिए वह नही चाहिए। छोटे बच्चे या बच्ची की मुट्ठी से अनाज डाला जाये। क्यो? इसलिए कि रोज भोजन के पहले मा बच्चे से पूछेगी, अरे, सर्वोदय के मटके मे अनाज डाला? बच्चा भूल गया हो तो वह कहेगी, जा, पहले डाल कर आ। इससे बड़ी भारी धर्म-संस्थापना होगी, ऐसी मेरी भावना है। इससे सर्वोदय को अनाज मिलेगा, सम्मति मिलेगी, परतु इससे भी बडी बात यह होगी कि बच्चो को शिक्षण मिलेगा। ऐसी धर्मविधि हर घर मे होगी। वह सब पर लागू होगा। वह मानव-धर्म ही है। उसमे हिंदू, मुसलमान, ईसाई सब आ जाते है।

थोडे मे, सर्वोदय-पात्र के तीन उद्देश्य हुए – (1) अशाति के कामो मे भाग न लेने की निषेधात्मक प्रतिज्ञा, (2) सर्वोदय-विचार के लिए सक्रिय मतदान और (3) सारे हिंदुस्तान मे छोटे बच्चो के शिक्षण की व्यवस्था।

आज जो दान-धर्म किया जाता है, वह समाज को थोडा सा सुख देता है। लेकिन उससे समाज-रचना नही बदलती। सर्वोदय-पात्र से मिलनेवाले अनाज का उपयोग क्राति के लिए यानी नयी समाज-रचना निर्माण करने के लिए होगा। पुरानी समाज-रचना कायम रख कर थोडा-सा दु ख मिटाना इसका उद्देश्य कदापि नही। दु ख-निवारण का काम अच्छा होता है, लेकिन उससे दु ख की जड नही कटती। लेकिन सर्वोदय-पात्र द्वारा नीवसहित नयी इमारत खडी करनी है। जिस दिन सर्वोदय-पात्र का विचार मुझे सूझा उस दिन मुझे लगा, मै ऋषि हो गया। भूदान का विचार सूझा तब ऐसा नही लगा। पर सर्वोदय-पात्र का विचार एक दर्शन है।

उपनिषद में एक दृष्टांत आया है। गुरु शिष्य से कहता है – 'बरगद का फल ले आओ, उसे तोडो और देखो कि उसमे क्या है।' उसे छोटा-सा बीज दीख पडा। गुरु ने कहा – 'उसे भी तोडो और देखो, क्या दीखता है?' शिष्य ने तोडा और कहा – 'अब कुछ नही दीखता।' फिर गुरु ने कहा – 'जो कुछ नही दिखायी पडता, उसी से यह महान वृक्ष निर्माण हुआ है। यह जो बीज-शक्ति है बीज की अतर्यामी जो शक्ति है, वही आत्मा है और वही तू है – 'स आत्मा। तत्त्वमसि श्वेतकेतो।' इस तरह मुट्ठीभर अनाज मे जो बीज-शक्ति है, उसी से जनशक्ति निर्माण होगी।

कर्नाटक मे मैंने कहा था, इसके बाद हमारी ऐसी वृत्ति है कि हम घूमते चले जाये। कही शिविर हो तो शिविर के लिए जायें, कहीं चर्चा हो तो चर्चा के लिए जायें और सर्वोदय आदि पर चर्चा तो हमारी चले ही। फिर भी मेरी मुक्त विहार करने की इच्छा है। इसलिए कि मुक्त विहार से ही इसके आगे हमारा काम अधिक अच्छा बनेगा। खास कर जब हम महाराष्ट्र और गुजरात जायेंगे तब हमारे मन मे आया है कि यह भूदान आदि सारा कवच नीचे उतार देंगे। जैसे नग्न लडका मा के पास पहुचता है, उसी तरह नग्न रूप मे हम वहा पहुचे।

हम समझते हैं कि इसके आगे और व्यक्तिगत पुण्य संपादन करने की कोई जरूरत न होगी। यद्यपि यह जो पुण्य सपादन किया, वह व्यक्तिगत नही, फिर भी उसमे व्यक्तिगत स्वरूप आ ही जाता है। वह व्यक्तिगत स्वरूप बिलकुल छूट जाये, और मैं 'केवल' हो कर रहू।

* * *

ज्ञानोबा-तुकोबा के चरणचिह्नों पर
(महाराष्ट्र-यात्रा)

सात साल हिंदुस्तान की यात्रा कर के मैं महाराष्ट्र मे आया। (23 मार्च 1958)। वहा मैंने कहा कि यहा मुझे प्रेम के सिवा और कुछ चाहिए नही। मै अनेक प्रकार के दान प्रवृत्त कर चुका हू। वे सभी अत्यत जरूरी हैं। परतु उन्हे प्रेम के चिह्न के तौर पर ही देना है। मैं सबके प्रेम का भूखा हू। विचार और प्रेम, इन दो के अलावा तीसरी कोई भी वस्तु जिसके पास नही है, ऐसा एक शख्स महाराष्ट्र के लोगो के सामने उपस्थित हुआ है। मैं यहा इतना कुछ मुक्त हो कर आया हू कि जिन सिद्धातों को पूरी नि:शकता से अपने मन मे निश्चित कर लिया है, उन्हे भी पुनः खोल कर रखने और उन पर पुनर्विचार करने की मेरी तैयारी है। मेरी अपनी कोई सस्था नही है। मैं किसी भी सस्था का सदस्य नही हू। मै एक सादा-सा मनुष्य हू। जैसा भगवान ने भेजा वैसा ही हू। सिर्फ दो उपाधिया हैं — एक चश्मा और दूसरी धोती। उन उपाधियों की भी मुझे पीडा होती है। लेकिन लोकलाज के कारण, या और किसी कारण से कहिए, उनको सभालता रहता हू।

चालीस साल पहले (1918) की बात है, मैं महाराष्ट्र के कुछ जिलो मे पैदल घूमा था। ऐतिहासिक स्थान तथा ऐतिहासिक कागजात देखने मे उस समय मुझे बहुत रुचि थी। जहा भी वैसा अवसर मिलता, वहा उसका लाभ उठाता। लेकिन इस समय मैं इतिहास-सशोधन (अनुसधान) नही, वर्तमान-सशोधन कर रहा हू। आज के युग की आवश्यकता क्या है, और उसकी पूर्ति कैसे

हो सकती है, इसमें एक-एक खोज हो रही है। पहले मैं कहता था कि थोड़ा भूदान दो। फिर छठा हिस्सा जमीन मांगने लगा। उसके बाद कहने लगा कि गांव मे कोई भी भूमिहीन न रहे, इसका खयाल करो। फिर तो समझाने लगा कि जमीन की मिलकियत रखना गलत बात है। हवा-पानी-सूरज की रोशनी के जैसे ही जमीन भी सबकी है। फिर ग्रामस्वराज्य, शांति-सेना और अब सर्वोदय-पात्र की बात कहता रहता हू। एकबार रास्ते मे एक वटवृक्ष देखा। मेरे मन मे विचार आया कि भूदान का काम इस वृक्ष के समान ही है – नयी-नयी शाखाएं फूटनेवाला, नित्यनूतन पल्लवित होनेवाला चैतन्य वृक्ष !

सर्वोदय सम्मेलन के निमित्त से, 63 साल की उम्र मे जीवन मे पहली बार पढरपुर आया। लेकिन अगर कोई यह मानता हो कि इतने दिन मै यहा गैरहाजिर था, तो कहना पड़ेगा कि उसे मेरे जीवन का कुछ भी पता नही है। मेरा दावा है कि जबसे मैने होश संभाला है तबसे आज तक मैं पढरपुर मे ही हूं। फिर भी मैं मानता हू कि सभी स्थानों पर पाडुरंग का निवास है, इसलिए सभी स्थान मुझे यात्रा के ही स्थान लगते हैं। हमारा तीर्थक्षेत्र केवल पढरपुर या रामेश्वर, या मक्का जेरुसलेम ही नही, प्रत्येक गाव और प्रत्येक घर हमारा तीर्थक्षेत्र है।

कुछ लोगो ने जाहिर किया कि अब विनोबा पढरपुर आ रहा है तो अन्य जाति-धर्म के लोगो के साथ मदिर मे जायेगा और मदिर को भ्रष्ट कर देगा। कैसे मालूम होगी उन लोगों को मेरी भक्ति ! सत्याग्रह की यह मेरी रीति नही। जहां मनाही है, श्रद्धा होने के बावजूद मैं वहा न जाऊगा। यही मेरा सत्याग्रह है। परतु रास्ते मे एक पडाव पर पुडलीक के मंदिर के लोग मुझसे मिलने

के लिए आये थे। उन्होंने मुझे सभी लोगों को साथ लेकर मंदिर में आने का आमंत्रण दिया। लिखित आमंत्रण दिया। उसके दो दिन बाद रुक्मिणी-मंदिर के भक्त मेरे पास आये। उन्होंने भी रुक्मिणी-मंदिर का वैसा ही लिखित आमंत्रण दिया। फिर तो मैं सोचने लगा कि भक्त पुंडलीक और माता रुक्मिणी जब मेरे हाथ में आ गये तब अब विठोबा कैसे दूर रहेगा! यह तो कुंजी ही मेरे हाथ में आ गयी है. अब विठोबा के मंदिर को भले ही ताला क्यों न लगा हो! और फिर विठ्ठल-मंदिर के लोगों ने भी लिखित आमंत्रण दिया। पंढरपुर के लोगों ने मुझे पूरी तरह जीत लिया।

विठोबा के चरणों के सामने मैं खड़ा था, तब मुझे जो अनुभव आया, उसको मैं शब्दों में नहीं रख सकता। वहां के मेरे प्रवचन में मैंने कहा कि आज जो दान मुझे मिला और जो उपकार मुझ पर हुआ उससे श्रेष्ठ दान और उससे अधिक उपकार कभी नहीं हुआ था। हमारे साथ क्रिश्चन, मुस्लिम और पारसी बहनें थीं। उन सभी धर्म जाति के लोगों के साथ हमने विठोबा का दर्शन किया (29 मई 1958)। इस दान के द्वारा महाराष्ट्र ने जो अधिक से अधिक देना संभव था, वह दे दिया है। यह घटना, मेरी दृष्टि से, सर्वोदय में अपूर्व घटना है। एम् आर् ए वाले मेरे पास आये तब मैंने उन्हें कहा कि पंढरपुरवासियों ने नैतिक शस्त्रागार बहुत मजबूत किया है। उन्होंने भी कहा कि "निःसंदेह ही नैतिक शस्त्रागार मजबूत करनेवाली यह घटना है।" विज्ञानयुग में साम्ययोग केवल समाधि में अनुभव लेने की बात नहीं रही। पूरे समाज को साम्ययोग का अनुभव होना चाहिए। पहले साम्ययोग शिखर था, परंतु अब वह नींव बना है। अब जीवन की रचना उसके आधार पर होनी चाहिए, विज्ञान-युग की यह मांग है।

* *

गांधीजनों के घर

(गुजरात-यात्रा)

बहुत वर्षों की वासना थी, वह अवसर आ गया, मैं गुजरात की भूमि में पहुंच गया (22 सितंबर 1958)। गांधीजनों के दर्शन से मुझे जो आनंद हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। गुजरात में गांधीजनों के सिवा और कौन रहता है, इसका मुझे पता नहीं है। वैसे तो सारी दुनिया गांधीजी की थी और वे सारी दुनिया के थे। हिंदुस्तान के तो वे थे ही, परंतु, उसके अलावा गुजरात के भी थे। और मैं इन सबका बंधु बहुत साल तक बाहर ही, दूसरे प्रांतों में रहा, अब घर पहुंचा।

मैंने सोचा कि गुजरात की यात्रा में मैं गुजराती में ही बोलूंगा। आरंभ में जब मैं बापू से मिलता था, तब हिंदी में बातें करनी पड़ती थीं। तब मैंने देखा कि उस वक्त वे हिंदी बहुत अच्छी नहीं जानते थे। इसलिए मैंने बहुत थोड़े दिनों में गुजराती का अध्ययन किया और उनके साथ मेरी बातचीत हमेशा गुजराती में होती रही। मैंने गुजरात से बहुत पाया है। इसलिए मैंने वहां बताया कि यहां मुझसे ज्ञान की अपेक्षा न रखी जाये। मुझसे बन सकेगी उतनी सबकी सेवा करने की कोशिश मैं करूंगा।

वहां पर सब पक्षों और अपक्ष के भी सारे लोग मुझे बल देने के लिए आये। उनसे बातें करते हुए मैंने कहा था कि जो विचार ले कर मैं यहां आया हूं, वह विचार उन सबके विविध विचारों का महत्तम साधारण अंश है। दुनिया में बहुत मतभेद हैं, परंतु जो मुख्य विचार ले कर मैं हिंदुस्तान में पदसंचार कर रहा हूं, वह विचार लोकमान्य हो गया है। अभी उसे लोकप्रिय बनाना बाकी है।

पिछले साल जब मैं केरल गया था, तो मेरे जाने के पहले वहा के चार ईसाई चर्चवालों ने एक निवेदन प्रजा के सामने रखा था कि "यह शख्स ईसा मसीह का काम करता है, इसलिए सारे ईसाई भाइयों को चाहिए कि वे उसे पूरा सहयोग दें।" उत्तर प्रदेश की यात्रा मे जब मैं सारनाथ पहुचा था, तब वहा के बौद्ध भिक्षुओ ने मेरा स्वागत करते हुए कहा था कि "बाबा का जो दावा है कि वे बुद्धभगवान के धर्मचक्र-प्रवर्तन को आगे चला रहे हैं, वह दावा हमे मान्य है।" यह कह कर उन्होने मुझे प्रेमोपहार के तौर पर धम्मपद दिया और वही ले कर मैं बिहार पहुचा। जब मैं भूदान-यात्रा मे मलबार पहुचा तब वहा के मुसलमानो ने मुझसे कहा कि "आप जो कहते हैं, वे ही बाते कुरआन मे हैं।" मैंने उनसे कहा कि मैंने कुर्आन पढी है और भक्तिपूर्वक पढी है, इसलिए आपका दावा मान्य करने मे मुझे खुशी होती है। तमिलनाड मे वहा के सर्वश्रेष्ठ पुरुष तिरुवल्लूवर का जिक्र करते हुए एक भाई ने किताब लिखी कि 'तिरुवल्लूवर जो बात कहते थे, उसी का प्रचार विनोबा करता है, इसलिए सब तमिलो को चाहिए कि वे विनोबा को सहयोग दे।" इस तरह जो भिन्न-भिन्न विचार दुनिया मे अपना असर रखते हैं, उनकी मान्यता इस विचार को मिल गयी है। अब इस विचार को लोकप्रिय बनाने का काम बाकी है।

मैं जब बारडोली पहुचा तब वहा यही बात कही कि गुजरात का हृदय वैष्णव और बुद्धि व्यावहारिक है। दोनो का योग होता है, वहा योगेश्वर कृष्ण और धनुर्धर अर्जुन एक होते है। तो श्री विजय, भूति मिलते ही है। ग्रामदान यानी अभयदान ही है। साबरमती हरिजन आश्रम मे मैंने कहा कि यह एक गांव ही बन गया है और गाव के मसले यहा भी हैं, इसलिए इसका भी ग्रामदान हो जाये तो मसले हल हो जायेंगे।

* * *

दरगाहशरीफ मे
(राजस्थान-यात्रा)

राजस्थान की यात्रा में, अजमेर में सर्वोदय सम्मेलन का आयोजन किया गया था। वह इसी लिए कि अजमेर का दरगाहशरीफ मुसलमानों का प्रसिद्ध पवित्र स्थान है।* फिलिस्तान मे सम्मेलन करने का अवसर आये तो वह जेरूशलेम मे होगा। मै पंथ का अभिमानी नही। इन स्थानों का महत्त्व है; क्योंकि यहा शुद्धतापूर्वक कठिन तपश्चर्या हुई है।

वहां दरगाहशरीफ के नाजिम का निमत्रण मुझे मिला। उन्होंने हमारे साथी को लिखा था कि हम बहुत चाहते हैं कि विनोबाजी दरगाह मे पधारे, हम उनका स्वागत करना चाहते हैं, क्योंकि हमारे महान सत का आदर्श शाति और प्रेम ही था। विनोबाजी के साथ मैं उनके साथ के बाकी सभी लोगो को भी निमत्रण दे रहा हू, सभी का यहा स्वागत होगा। इस निमत्रण के आधार से मैंने सम्मेलन की बैठक मे सभी को मेरे साथ चलने का निमत्रण दिया। मैंने कहा कि स्त्रिया भी अवश्य चले। जैसे पढपुर के मदिर मे सभी जाति और धर्म के लोग आये, वैसे ही यहां भी सभी आयें। इस्लाम का सदेश बडा पवित्र है। वह गरीब और श्रीमान का भेद नही मानता। सूदखोरी का उसने तीव्र निषेध किया है। वह लोकतत्र का एक आदर्श है। मैं घोषित करना

---

*भारत की मुस्लिम जनता के लिए मक्काशरीफ के बाद दूसरा पवित्र स्थान है अजमेर का दरगाहशरीफ — स.

चाहता हूं कि 'मैं मुसलमान हूं और ईसाई भी हूं'। दस साल पहले मैं एक दफा इस दरगाह मे आया था। वे दिन ऐसे थे कि लोगो का दिमाग ठिकाने पर नही था। इसलिए मैं यहा आया था और सात दिन ठहरा था। यहा मेरी प्रार्थना हुआ करती थी।

दूसरे दिन हजारों, सभी जाति-धर्म के लोगो के साथ मैं वहा गया। बहुत ही प्रेमपूर्वक हमारा स्वागत हुआ। मैंने वहा कहा कि कही-कही मंदिरों-मसजिदो मे सब लोगो के जाने की मनाही रहती है। यह ठीक नही। ऐसा होना चाहिए कि सभी इबादतगाहो मे बिना किसी भेदभाव के सभी लोग जा सके। यों इबादत के लिए न मंदिर की जरूरत है, न मसजिद की। हर जगह इबादत की जा सकती है। इसलिए भेदभाव मिट जाना चाहिए। भक्ति के लिए सिर्फ तीन चीजों की जरूरत है – कुरानशरीफ मे कहा गया है – सब्र, रहम और हक। मैं इन्हे प्रेम, करुणा और सत्य कहता हूं।

लल्ला का खूबसूरत प्रदेश

(जम्मू-कश्मीर-यात्रा)

जब मैं कश्मीर पहुचा तब मुझे कितनी खुशी हो रही थी, इसका बयान लफ्जो मे नही हो सकता। पठानकोट मे कुछ मुसलमानभाई मुझसे मिलने आये थे। उन्होने अपनी तरफ से हमे एक ऐसी भेंट दी, जिससे बेहतरीन दूसरी कोई चीज हो ही नही

सकती। उन्होंने एक बड़ी खूबसूरत कुर्आन की प्रति भेंट दी। मैं समझता हूं कि कश्मीर-प्रवेश (22 मई 1959) के लिए आशीर्वाद हमे हासिल हो गया। और अब वहां पहुंचने पर तो हमारे बख्शीजी (मुख्यमंत्री) ने जाहिर ही कर दिया कि कुल रियासत का ही दान दिया जा सकता है। यह हो सकता है। कुल रियासत गरीबो की मदद करती है, गरीबों के लिए काम करती है, ऐसा होना चाहिए।

वहां मैंने कहा, मैं यहां आ कर क्या करना चाहता हूं? अपनी ओर से कुछ भी नही चाहता। वह जो चाहेगा वही होगा। मैंने देखा कि भगवान जो चाहता है, वही होता है। मैंने अपना सारा भार या जीवन उसी पर सौंपा है। कभी भी मेरे लिए ऐसी चीज नहीं हुई, जो मेरे लिए और देश के लिए मुफीद न हो। मेरा उस पर भरोसा है। इसलिए इन्शा अल्लाह मैं तीन बाते करना चाहता हूं – (1) मैं देखना चाहता हूं, (2) मैं सुनना चाहता हूं और (3) मै प्यार करना चाहता हूं। जितना प्यार करने की ताकत भगवान ने मुझे दी है, वह सब मैं यहां इस्तेमाल करना चाहता हूं।

पदयात्रा मे रोजाना नौ-दस मील चलना होता, तो मैं बड़ी फजर मे थोड़ा-सा खा लेता। लेकिन कश्मीर मे प्रवेश हो रहा था इसलिए उस दिन मैंने एक समय का खाना छोड दिया। मेरा पेट ऐसा है कि एक समय का खाना छोडने से दूसरी बार मैं भरपेट नही खा सकता हूं, न दुगना ही खा सकता हूं। फिर भी सोचा कि थोडा-सा फाका कर लूं, तो शुद्धि हो जाये। तो मैने कश्मीर का नाम ले कर एक खाना छोड दिया।

हम पीरपंजाल लांघ कर गये। उसके उस पार मंडी लोरेन है। बारिश की वजह से हमें मंडी में छः दिन रुकना पड़ा। वहां मेरे दिल में खयाल आया कि इसी तरह बारिश रही और हम पहाड़ लांघ न सके, तो उसे परमात्मा का इशारा समझ कर कश्मीर न जायेंगे, वापस पंजाब लौट जायेंगे। मैं तो उसी के इशारे पर चलता हूं। इसलिए मैंने तय किया कि मैं पहाड़ के रास्ते न जा सका तो दूसरे तरीके से कश्मीर न जाऊंगा। लेकिन आखिर बारिश रुक गयी और हम पहाड़ लांघ कर आगे बढ़ सके।

तब हमारा पांच बार नमाज पढ़ना होता था। सुबह चलते समय हमारी काफी चर्चा चलती, जिससे इलम बढ़ता, जो हमारी पहली नमाज हो जाती। फिर पड़ाव पर पहुंचने पर तकरीर होती। उस तकरीर में हम प्रेम की बातें करते। वह दूसरी नमाज हो जाती। ग्यारह बजे हम कुर्आनशरीफ पढ़ते और सुनते। वह तीसरी नमाज हो जाती। दोपहर को अक्सर बूढ़े लोग ज्यादा मिलने आते, जो हमारे साथ पैदल चल नहीं सकते। उनसे मुलाकातें यानी चौथी नमाज। और शाम को तकरीर में पांचवीं नमाज।

सुबह ग्यारह बजे कुर्आनशरीफ की तिलावत (पठन) करने के लिए लोग आते। बहुत-से लोग कुर्आन पढ़ना जानते तो हैं, पर कुछ बेचारे नहीं जानते। इसलिए गलतियां भी कुछ होती हैं। लेकिन अल्लाह् तो 'गफूरर्रहीम' कहलाते हैं। इसलिए वे तो मुआफ कर ही देंगे। बच्चा जब ठीक नहीं बोलता, तब भी उसकी टूटी-फूटी जबान मां को प्यारी लगती है। इसी तरह से अल्लाह् को भी यह सारा प्यारा लगता होगा। ऐसे प्रोग्राम मैं इसलिए करता कि वहां के भाइयों से वाकिफ हो जाऊं।

इस प्रकार तिलावत करना मैंने पूछ से शुरू किया। वैसे इसके पहले भी, जब मै हिंदुस्तान मे मेवात के मुसलमानों को बसाने का काम करता था तब भी तिलावत का यह काम करता था। जब से इस प्रकार तिलावत करना शुरू किया है, तब से मैने देखा कि हर मजलिस मे 'सूरे हश्र' का जिक्र हुआ ही है। इस बात की मुझे बेहद खुशी होती है। इससे जाहिर होता है कि कौनसी चीज लोगो के दिलों को प्यारी लगती है।

एक दिन एक भाई दान देने आये थे, जिनकी औरत ने उन्हे दान देने के लिए कहा था। उस बहन ने किसी अखबार में एक फोटो देखा, जिसमे मै किसी का हाथ पकड कर कठिन रास्ते से गुजर रहा था। वह फोटो देख कर उस बहन को लगा कि यह शख्स गरीबों के वास्ते इतनी तकलीफ उठाता है, इसलिए इसे जमीन न दे तो ठीक नही होगा। जिस औरत को वह तसवीर देख कर अदर से यह सूझ आयी कि हमे गरीबो के वास्ते कुछ करना चाहिए, उसके तमद्दुन (सभ्यता) में कुछ कमी है? मै मानता हू कि मैं पोरपजाल की 13½ हजार फुट की ऊचाई पर चढा था, उस पहाड से भी उस बहन की ऊचाई ज्यादा है।

मुझे यह कहने मे खुशी होती है कि जिस किसी जमाअत के साथ मिलने का मौका आया, चाहे वह सियासी जमाअत हो, मजहबी हो या समाजी जमाअत हो, चाहे चद व्यक्ति हों, उन सब ने यह महसूस किया कि यह अपना ही आदमी है और इसके सामने दिल खोल कर बात रखने मे कोई खतरा नही है। ऐसा विश्वास रख कर लोगो ने मेरे सामने बाते रखी और सुनने की जो मशा थी, उसमे मै पूरा कामयाब हुआ।

मेरी देखने की जो मंशा थी, उसमें कुछ कामयाब हुआ हूं, पूरा

नहीं हुआ हूं। क्योंकि सैलाव की वजह से कुछ हिस्सा देखने का रह गया। लेकिन चावल पका है या नहीं यह देखने के लिए चावल का हर दाना देखने की जरूरत नहीं होती। मैंने जितना देखा, वह हालत का अंदाज करने में काफी था।

मेरा तीसरा काम था प्यार करना। इन चार महीनों में एक भी मौका मुझे मालूम नहीं जबकि प्यार के सिवा और कोई ख्याल मेरे मन में आया हो। परमात्मा की कृपा थी कि प्यार करने का मेरा इरादा पूरा हुआ।

वहां के लोगों ने तीन-चार दफा मुझे याद दिलाया कि इसी प्रकार का मिशन ले कर भगवान शंकराचार्य कश्मीर आये थे। मैंने कबूल किया कि शंकराचार्य के मिशन का जो स्वरूप था, उससे मेरे मिशन का स्वरूप मिलता-जुलता है। उन्होंने अद्वैत का विचार कहा था। मुझे यह देख कर खुशी हुई कि श्रीनगर में एक पहाड पर उनकी याददाश्त में भगवान शंकर का मंदिर बनवाया है। परमात्मा, इनसान और कुदरत, तीनों एक ही नूर की चीजें है, तीनों में एक ही माद्दा है, सिर्फ यही बात समझाने के लिए वह शख्स यहां आया और उसने हिमालय में – कैलाश में जा कर देह छोडी। उनके साथ मेरी कोई तुलना ही नहीं हो सकती। वे बडे आलिम थे, मैं तो एक खिदमतगार हूं, अल्लाह् का बंदा हूं। मैं इल्म का दावा नहीं कर सकता हूं, बल्कि मुझमें जितना इल्म है, उसके अमल का दावा करता हूं। मैं तो नाचीज हूं, लेकिन जो मिशन ले कर आया हूं वह नाचीज नहीं है। उससे न सिर्फ कश्मीर को, बल्कि हिंदुस्तान को और दुनिया को नजात मिलनेवाली है।

जम्मू-कश्मीर में हमने प्रवेश किया तब हमें एक किताब भेंट दी गयी – "लल्ला वाक्यानि" (लल्ला के वचनों का अंग्रेजी तर्जुमा)।

लल्ला छः सौ साल पहले हुई। लेकिन आज भी जनता उसे भूली नहीं है। इस बीच कितने बादशाह आये और गये, पर लोगों ने किन्हें याद रखा? लेकिन कश्मीर की एक संत महात्मा लल्ला का नाम आज भी सबको याद है। इसीलिए जम्मू-कश्मीर में कदम रखते ही मैंने कहा था और यही हमारी इस यात्रा का निचोड़ है कि "कश्मीर का, हिंदुस्तान का और दुनिया का मसला रूहानियत से ही हल होगा, सियासत से नहीं।" क्योंकि मजहब और सियासत के दिन अब लद गये। इसलिए आगे दुनिया में रूहानियत और विज्ञान ही चलेगा। मजहब, कौम, जबान वगैरह सब तरह के तफरके मिटा कर हम अपने दिल को वसी बनायेंगे, तभी कश्मीर और हिंदुस्तान की ताकत बनेगी। वह ऐसी ताकत होगी, जिससे दुनिया का हर शख्स सुकून पायेगा।

गुरुनानक के चरणों से
(पंजाब-हिमाचल प्रदेश यात्रा)

कश्मीर से मैं नीचे पंजाब आया (21-9-59 से 10 5 60)। अमृतसर में गुरुद्वारे में जाना हुआ। एकबार मुझे गुरुद्वारे के मामले में सवाल पूछा गया तब मैंने कहा था कि आज उसमें जो झगड़े चल रहे हैं, यह एक बिलकुल ही नासमझी हो रही है। उसमें सिख धर्म को और भारत को भी खतरा है। सियासत में अक्सरीयत (बहुमत) और अकल्लियत (अल्पमत) के सवाल से झगड़े पैदा हो रहे हैं। वह चीज धर्म में भी होने लगी है, यह कितनी खतरनाक बात है। मैंने बार-बार इन सियासतदां से कहा

है कि आपको इस समय जो पक्षीय राजनीति चली है, वह छोड कर पक्षमुक्त तरीके ढूढने होगे । अक्सरीयत, अकलियतवाली सियासत से हिंदुस्तान का नुकसान हो रहा है । वही चीज जब धर्म मे दाखिल होती है, तो हद दर्जे की नासमझी होगी । इससे ज्यादा नासमझी का मै ख्याल ही नही कर सकता । क्या धर्म के फैसले अक्सरीयत से हो सकते है ? गुरुनानक के मन मे धर्म स्फूर्त हुआ और वह विचार आगे बढा । सिखो का जो बुनियादी विचार है, वह है – कुल दुनिया एक कौम, एक जमात है, वह एक बहुत बडी बात है, जिसमे फिरके, जातिभेद नही है मूर्तिपूजा का ज्यादा आग्रह नही है, खडन भी नही है, परमात्मा एक है – यही कहा है । यह जो मूल विचार है, वह दुनिया मे फैलनेवाला है, लेकिन जिस जमात ने दुनिया को यह विचार दिया, उसी जमात के अदर आज सियासी हथकडे दाखिल हो रहे है । मजहब मे सियासत का दाखिल होना बहुत खतरनाक है इस बारे मे मै आप सबको आगाह करना चाहता हू । अगर मेरी चले तो मै कहूगा कि गुरुद्वारे मे जाते समय सियासत के जूते बाहर रख कर जाना होगा । सियासत की कीमत जूते से ज्यादा नही है । आज देश मे और दुनिया मे जो सियासत चल रही है, वह सिर पर उठाने की चीज नही है, ज्यादा से ज्यादा पाव मे रखने की चीज हो सकती है । इसलिए वह चीज ले कर गुरुद्वारे मे, चर्च मे, मदिर या मसजिद मे मत जाओ । वहा अगर उसे ले जाओगे तो भगवान का घर शैतान का घर बनेगा ।

पंजाब मे मैने अपना एक निर्णय जाहिर किया । ऐसे तो, दो-एक साल के मनोमथन के बाद का वह निष्कर्ष था, उसको मैने सर्व सेवा सघ को पत्र लिख कर अक्षराकित किया

प्रागपुर: कांगड़ा (23 10 59) में। मैंने पत्र में लिखा – असम छोड कर बाकी सब प्रदेशों में हमारी पदयात्रा पिछले साडे आठ वर्षों मे गुजर चुकी। हुआ तो वह जनवास, लेकिन पुरानी भाषा मे उसको वनवास भी कह सकते हैं। अब जरूरत है मेरे लिए अज्ञातदास की। यात्रा जारी रहेगी। भारत को इतनी खबर बस होगी कि यात्रा पंजाब मे चल रही है। पंजाबवालो को खबर होगी कि कांगडे में चल रही है। कांगडेवालो को पाच-सात दिन की यात्रा की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। यह अज्ञातवास अपेक्षाकृत ही कहा जायेगा। पुराने पांडवों जैसा या आधुनिक पाडवो (यानी भूमिगतों) के जैसा नही।

इसमें होनेवाली हानिया स्पष्ट ही है। लाभ आध्यात्मिक और खास कर के अहिंसा की शोध की दृष्टि से हो सकते हैं, अगर चित्त उस भव्य कल्पना को पचा सका। वह पचा सकेगा कि नही, मुझे अनुभव से मालूम होगा, मै जांचता रहूगा। इस विचार का अमल अमृतसर से होगा। वहा साहित्यकारो की सभा होगी और वही वनवास की पूर्णाहूति और अज्ञातवास का आरंभ।

अज्ञातवास मे मनुष्य कही से कही भी जा सकता है। पर इदौर की दिशा मेरे मन मे है। पृथ्वी-प्रदक्षिणा कर के इदौर पहुचू या यूक्लिड की 'स्ट्रेट लाईन' (सीधी रेखा) की व्याख्यानुसार पहुचू – यह नजदीकवालो के कर्तृत्व पर, या प्रवाह पर निर्भर रहेगा।

मेरा यह प्रयोग चार-पाच महीना चला। तीन दिन का प्रोग्राम जाहिर किया जाता था। आगे का नही। नि.सशय, इसमे चिंतन मनन की दृष्टि से बहुत लाभ हुआ। फिर उत्तर प्रदेश का कुछ हिस्सा पार कर मैं मध्यप्रदेश पहुचा।

ख्वाब था जो कुछ कि देखा

(मध्यप्रदेश यात्रा)

भिंड-मुरैना की यात्रा मे, दस-बारह दिनो के भीतर जो घटनाए घटी, उन्होने मेरे दिल को अदर से नरम बना दिया। मैंने देखा कि कैसे परमेश्वर की ज्योति सबके अदर जल रही है। पहले मैं 'इल्मुल-यकीन' था, वहा 'अयमुल-यकीन' बन गया। पहले किताबों मे बात पढी थी, अब मुझे अहिंसा का साक्षात्कार हो गया। मुझे तीन दफा ऐसा सामूहिक साक्षात्कार हुआ। पहली दफा पोचमपल्ली मे, दूसरी दफा बिहार मे और तीसरी दफा यहां भिंड मे।

मध्यप्रदेश के डकैतीग्रस्त क्षेत्र (चबल के बेहडे) मे इस शाति-अभियान मे जो कुछ हुआ, वह एकदम अप्रत्याशित था। आध्यात्मिक जगत में अहिंसा एक सबल शक्ति है। महात्मा गाधी ने राजनैतिक क्षेत्र मे उसका उपयोग किया। पिछले नौ साल से सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र मे इसका उपयोग किया जा रहा है। 'डाकू-क्षेत्र' कहे जानेवाले इस क्षेत्र मे इस बार इसके प्रयोग पर मुझे जैसा अनुभव हुआ, वैसा इससे पहले कभी नही हुआ था। कठोर हृदय पिघल गये। और सारा वातावरण भगवदीय भावना से ओतप्रोत हो गया। जिन लोगो ने डकैती को अपना पेशा बना लिया था, वे पश्चात्ताप की भावना से आये और उन्होंने अपने पुराने तौर-तरीके एकदम बदल दिये। ऐसा जान पडता है कि भगवान ने उनके हृदय मे पैठ कर दैवी चमत्कार प्रकट कर दिया। मै तो उस जगदीश्वर के प्रति केवल कृतज्ञता ही प्रकट कर सकता

हूं, जिस पर विश्वास रख कर मैं सत्य, प्रेम और करुणा के मार्ग पर चलने का प्रयत्न कर रहा हूं।

जब मैं कश्मीर में घूम रहा था तब बागी मानसिंह के बेटे तहसीलदारसिंह ने जेल से मुझे चिट्ठी लिखी कि फांसी के पहले हम आपका दर्शन करना चाहते हैं। मैंने जनरल यदुनाथसिंहजी को, जो इसी क्षेत्र के निवासी हैं और उस वक्त हमारे साथ घूम रहे थे, उनके पास भेजा। फिर तहसीलदारसिंह ने इच्छा व्यक्त की हम इस क्षेत्र में घूमें और हमारे बागी भाइयों से मिलें। उनके कहने से हम यहां आये और प्रेम की बात लोगों को समझाने लगे कि बागी भाई हमारे पास आयें। उन्हें न्याय मिलेगा, उनके साथ सख्ती न होगी। बाल-बच्चों को तकलीफ न होगी।

परमेश्वर की कृपा है कि बीस आदमी हमारे पास आये। उन्होंने अपनी दूरबीनें लगी हुई भारी कीमती बंदूकें रख दीं। आत्म-समर्पण किया (कनेराग्राम 19 मई 1960)। अपने बाल-बच्चों से मिले। परसों हमने उन्हें जेल पहुंचा दिया। उन्हें कामों का फल तो मिलेगा, लेकिन वे परमेश्वर की क्षमा के अधिकारी बनेंगे।

एक राह खुल गयी।

अहिल्याबाई की नगरी में

मध्य-प्रदेश की यात्रा में इंदौर नगर में मुझे अधिक रहने का मौका मिला (24 जुलाई से 25 अगस्त 1960)। यह नगर सौम्य सुंदर है। इसमें सद्भावनावान लोग रहते हैं। मध्यप्रदेश की

राजधानी भोपाल है। मैंने इंदौर नगरी को संस्कारधानी कहा। और वहा के लोगो को, इंदौर को 'सर्वोदय नगर' बनाने का कार्यक्रम दे दिया।

मगर पाच हफ्ते मैं शहर मे घूमा तो एक विचित्र बात देखी, जिससे मुझे गहरा सदमा पहुचा। जगह-जगह सिनेमा के गदे चित्र लगे हैं। इतने बेशरम चित्र हम कैसे सहन कर सकते हैं? मेरी आखें खुल गयी कि ये गदे दृश्य और गदे गाने चलेंगे तो भारत उठ खडा नही होगा। वह निर्वीर्य बनेगा। वे गदे अशोभनीय पोस्टर्स देख कर मेरे दु:ख की सीमा नही रही।

भूदान-यज्ञ के साथ-साथ मुझे पावित्र्य का कार्य सूझा। वह नही सूझता, अगर मैं इंदौर नही आता। मैंने वहा की जनता से कहा कि यह तो विषयासक्ति की मुफ्त और लाजमी तालीम ही दी जा रही है आपके बच्चों को, इसके खिलाफ सत्याग्रह करो। नगरपालिका के लोगों से भी कहा कि आपके नगर मे जो गदे इश्तेहार हैं, उन्हे हटाइए, पैसे का लोभ छोडिए। बहनों से तो विशेषरूप से कहा, गृहस्थाश्रम की नीव उखाडी जा रही है, जगह-जगह हमारी बहनों और माताओ के चित्र बहुत बुरे ढग से चित्रित किये जाते हैं। इस देश में शातिरक्षा और शीलरक्षा का विषय बहनों को सौंप रहा हू। इंदौर की बहने जागृत हो जाये और इन सारे पोस्टरों को एक दिन भी सहन न करे हटा दें, जला दे।

इंदौर मे हमने शुचिता का एक और कार्यक्रम किया – 'स्वच्छ इंदौर' सप्ताह मनाया। शहर के अलग-अलग हिस्से मे गये और जिसे शौर्य-कार्य कहते हैं, वह कर के आये। मैंने तय किया था कि मैं पाखाना-सफाई का काम करूगा। मैं गया वहा मैला, मूत्र, पानी सब था – सत्त्व, रज, तम तीनों थे। बहने (मेहतर) तो रोज

हाथ से साफ करती होंगी, हमने भी हाथ से स.फ किया। मेरे हाथ में दस्ताने रहते थे। फिर भी घर आने पर हाथ बार-बार धोते रहने की इच्छा होती। सफाई के समय मेरे पाव मे 'स्लिपर' (रबर का जूता) था, वह मैने निकाल दिया। अप्पासाहब ने कहा, पाव मे कुछ होना चाहिए। मैंने कहा, उसका नाम ही 'स्लिपर' (फिसलनेवाला) है, वह 'स्लिप' होगा (फिसल जायेगा), तो वह एक नाटक होगा, इसलिए उसे नही पहनूगा। ऊपर से बारिश हो रही थी। नीचे सारा मैला था। अब मेरे पाव बहुत गदे हो गये। घर पर आ कर लगा कि क्या पांव को आग पर तपाऊं!

कई लोगों ने हमारे साथ काम किया। मैंने उनसे कहा आपने बहुत शौर्य दिखाया, अब अक्ल भी दिखानी चाहिए। यह काम मानव को करना ही न पडे, यह अक्ल अब सूझनी चाहिए। सबको मिल कर इसका उपाय ढूढना चाहिए कि मेहतर को यह काम न करना पडे।

सर्वोदय-नगर के ख्याल से मैने इदौर को चुना और वहा ज्यादा समय ठहरा, वह इसलिए की वह साध्वी अहिल्यादेवी का स्थान है और अब वहां माता कस्तूरबा का स्थान भी बनाया गया है। सात दिन मैं कस्तूरबाग्राम मे भी रहा।

* * *

पूर्व दिगंचल

(असम-पूर्वपाकिस्तान-प बंगाल-उडीसा-यात्रा)

इंदौर का मेरा निवास पूरा कर मैं आगे बढा, इदौर के नजदीक ही किसी गाव (राऊ) मे था, तब मुझे पडित नेहरू का एक पत्र मिला (30 सितबर 1960 को)। उसमे उन्होंने सुझाया था कि मैं असम जाऊं। उस समय असम मे अशांति की स्थिति थी। मैंने

उनको जवाब दिया कि ग्रामदान के काम के लिए मुझे असम जाना ही है, क्योकि अभी तक मैं वहा गया नही हू । उसके साथ यह काम भी होगा । लेकिन कछुआ अपनी गति से जायेगा, खरगोश की गति से नहीं । जब राजेद्रबाबू को यह मालूम हुआ तब उन्होंने कहा कि खरगोश कभी सफल नही होता, सफल होता है कछुआ ही । हमारे साथियो ने बहुत आग्रह किया कि मैं तुरत वहा पहुचू । मैने कहा कि ऐसा करूगा तो असमवालों को लगेगा कि हमने बडा पाप किया, बाबा को सब छोड कर यहा आना पडा । लेकिन मैं मानता हू कि उन्होने कोई बडा पाप नही किया है, एक बुरी हवा चली, उसमे यह हुआ है । उधर पडितजी से किसी ने चर्चा की कि बाबा तो पैदल निकला है और सीधे रास्ते से नही, पहले जो कार्यक्रम तय कर रखा था, उसी के अनुसार चला है, तो पडित नेहरू ने कहा कि मै उनकी हालत मे होता तो यही करता । मैं आहिस्ता-आहिस्ता असम पहुचा ।

रास्ते मे बिहार प्रदेश मे यात्रा हुई । वहा के लोगो से मैने कहा कि आपका 32 लाख एकड जमीन प्राप्त करने का सकल्प पूरा नही हुआ है, तो वह पूरा करने के पीछे पडो । और एक बीघे मे एक कट्ठा भूमि दान लेने को सुझाया । तो वहा 'बीघे मे कट्ठा,' अभियान शुरू हो गया ।

दो दिन समन्वय आश्रम (बोधगया) मे रहा । उस समय बोधगया के बुद्ध मदिर मे मैने 'धम्मपद नवसंहिता' का सपूर्ण पाठ किया ।

असम मे प्रवेश करते ही, पहले ही दिन (5 मार्च 1961) मैने वहा के लोगों को कहा कि ग्रामदान सामूहिक उत्थान का कार्यक्रम है, जो खुद स्वामी बनेगा, वह अवैष्णव होगा, सृष्टि का स्वामी तो विष्णु है ।

असम एक ऐसा प्रांत है कि उसके पौने चार दिशाओं में अन्य देश है और केवल पाव दिशा में ही उसका भारत से संबंध है। बर्मा, चीन, तिब्बत, पाकिस्तान आदि की सीमा मिल कर करीब 2200 मील है। भारत के साथ संबंध करीब 50-60 मील से ही जुडा हुआ है। असम भारत का 'बॉटल नेक' (नाजुक जगह) है। इसलिए भारत को असम से संपर्क रखना होगा, उसके विकास की तरफ ध्यान देना होगा।

जब से असम पहुंचा, एक बात बार-बार सुनता रहा — 'इनफिलट्रेशन' (अनुप्रवेश-घुसखोरी) की समस्या। कितने परिमाण में पाकिस्तान से लोग आये, इसमें मतभेद है। कोई कहते है, बहुत आये। कोई कहते है, ज्यादा नही आये। लेकिन यह एक मानी हुई समस्या है। अगर लोग गाव की जमीन गाव में ही रखें और जमीन की खरीदी-बिक्री बंद हो जाये, तो जो लोग आते है वे जिस उद्देश्य से आते है वह सफल नही होता और यह समस्या अपने-आप खतम हो जाती है। ऐसी सर्वोत्तम योजना हमने बनायी। नही तो सीमा पर क्या करना, यह सोचना पडता है। क्या सीमा पर बार लगायेंगे? या क्या दीवाल बनायेंगे? या शस्त्रास्त्र दे कर पुलिस रखेंगे? पुलिस संरक्षण के लिए मिलिटरी बुलायेंगे? हम समझते हैं कि इस समस्या का हल ग्रामदान में मिलता है। ग्रामदान में जमीन ग्रामसभा की मालिकी की होगी। कोई एक व्यक्ति जमीन बेच नही सकता। जमीन नही मिलती है, तो बाहर के लोगों को यहा आ कर बसने के लिए आकर्षण नही रहता।

वहा गाव-गाव में मैंने 'नामघर' देखा। जो असर ज्ञानदेव-तुकाराम का मराठी जनता पर है, या तुलसीदास का हिंदी जनता पर है, वही असर शंकरदेव-माधवदेव का असम की जनता पर देखा। इन महापुरुषों ने 'एक शरणीया' धर्म-विचार की स्थापना कर असम की जनता को भक्ति के संस्कार दिये। हर छोटे गाव में

भी एक 'नामघर' खड़ा है, जिसके आधार पर गाव-परिवार की भावना गाव मे है। और हर घर मे आज भी वहने हाथकरघा चला रही हैं। मुझे लगा ग्रामदान की नीव तो यहा तैयार है, अब नाम-घर के साथ 'कामघर' (ग्रामोद्योग) वन जाये तो इस प्रदेश मे अपनी ताकत खडी हो जायेगी। असम प्रदेश मे वडी आसानी से ग्रामदान की हवा वन गयी।

जब मै इदौर मे था, तब असम की एक वहन ने मुझे पत्र लिखा था कि आप स्त्री-शक्ति खडी करना चाहते हैं, तो आपको असम आना चाहिए। उनका कहना अक्षरश ठीक है। ब्रह्मचर्यपूर्वक जीवन जो कर समाजसेवा मे लगी हुई, आध्यात्मिक वृत्ति की वहनो का एक अच्छा समूह यहा वना हुआ है। अमलप्रभावहन उसकी प्रेरणास्रोत हे और पूरे असम पर उनके कार्य का प्रभाव है।

मैने यहा एक काम किया। मेरी यात्रा मे मेरे साथ चलनेवाली दो असमी वहनो को मैने गीताई के आधार से मराठी सिखाने की कोशिश की। कहा असम और कहा महाराष्ट्र! पर मैने देखा कि असमीया के कई शब्द मराठी से मिलते-जुलते हैं। अलावा इन वहनो को नागरी लिपि आती थी। नागरी लिपि और गीता का विचार, दो की सहायता से मैने उन्हे मराठी सिखाया और वे मराठी पढने-लिखने-वोलने लगी।

मेरा यह विचार है कि हिंदुस्तान मे जोडने का काम एक भाषा नही कर सकती। पर वह काम एक लिपि कर सकती है। अगर भारत की सभी भाषाए अपनी-अपनी लिपि के साथ नागरी लिपि को भी अपनाये तो यह बात वन पायेगी। वावा 'ही'वादी नही, 'भी'वादी है। यह नही कि नागरी लिपि ही चले, पर नागरी भी चले। हर भाषा का उत्तम आध्यात्मिक साहित्य नागरी मे भी

उपलब्ध हो तो एक-दूसरे की भाषाए आसानी से सीख सकेंगे और वह भारत की एकात्मता बढाने मे मददगार होगा।

असम मे मै डेढ साल (5 मार्च 1961 से 4 सितंबर 1962) रहा। आहिस्ता-आहिस्ता प्रदेश की लगभग दो प्रदक्षिणाएं हुईं। अब मुझे आगे बढना था। मै देश की सीमा पर था – वहां से चीन, ब्रह्मदेश, पाकिस्तान कही भी जा सकते हैं। पर मैंने पश्चिम बगाल जाने का सोचा। असम से बंगाल के रास्ते पर 'पूर्व पाकिस्तान' पडता है। मैंने उसी रास्ते से जाने का सोचा। दोनों सरकारों ने इजाजत दे दी और मै 'पूर्व पाकिस्तान' के लिए निकल पडा।

* * *

पूर्व पाकिस्तान की पहली ही सभा मे मैंने कहा कि हमे बहुत खुशी हो रही है कि हम पाकिस्तान मे बैठे हैं, यह हमारा देश है। मैं हिंदुस्तान और पाकिस्तान मे कुछ भी फरक महसूस नही करता। वही हवा है, वही जमीन है, वही आदमी है और वही हृदय है। कुछ भी फरक नही। मैं मानता हूं कि सब पृथ्वी हमारी है और हम सब पृथ्वी के सेवक है। यह एक आकस्मिक घटना है कि हम किसी एक देश मे जन्मे या मरे। मैं यहा महसूस करता हू कि हम यहां के हैं। सब मानव-समाज हमारे अतर्गत है। मै जहा जाता हू, वही 'जय जगत्' कहता हू।

मेरी पहली दो-तीन सभाओं मे लोगों ने 'पाकिस्तान जिंदाबाद' का नारा लगाया। मै 'जय जगत्' बोलता था। धीरे-धीरे वहा भी 'जय जगत्' ही चल पडा। मै 'जय हिंद' बोलता तो 'पाकिस्तान जिंदाबाद' और 'जय हिंद' का झगडा हो जाता। 'जय जगत्' ने सब प्रेम से एक हो गये।

मै अपने साथ गीता-प्रवचन ले गया था। उसकी 800 प्रतिया 15 दिन की यात्रा मे बिकी। उनमें 300 प्रतिया मुसलमानो ने

खरीदी । उस पर मै प्रेमपूर्वक हस्ताक्षर करता था । भारत मे भी हजारो मुसलमानो ने गीता-प्रवचन ली है ।

कुर्आनशरीफ का मेरा चयन उस समय तैयार था और उसकी पुस्तक प्रकाशित होनेवाली थी । लेकिन उससे पहले ही कराची के 'डॉन' (अखबार) ने उस पर आलोचना की कि पिछले 1300 वर्षों मे हमारे धर्मग्रंथ मे इस तरह का फरक किसी ने किया नही था, अब वह करनेवाला यह काफिर निकला है । तब हिंदुस्तान के तमाम मुसलमान अखबारों ने मेरा समर्थन किया कि यह आलोचना उचित नही, कुरान का ऐसा सार पहले भी निकाला गया है, इसलिए ग्रंथ पढे विना उसकी आलोचना करना गलत है । इसका मेरे चित्त पर बहुत असर हुआ । मै मानता हू कि मुसलमानो का मुझ पर बहुत बडा उपकार है ।

पाकिस्तान मे मैंने मौन प्रार्थना चलायी । तो उसमे हजारो हिंदू मुसलमान-ईसाई सब आये । उस पर भी 'डॉन' (कराची) ने आलोचना की कि यह मनुष्य हिंदुओ की प्रार्थना चलाना चाहता है । परतु पूर्व पाकिस्तान के अखबारो ने ऐसी आलोचना नही की । मैंने इसका जवाब दिया कि आप लोग अपने घर मे जो प्रार्थना करते हे – आरती करते हैं या नमाज पढते है उसका मै विरोध नही करता, लेकिन सब मिल कर भी कोई प्रार्थना हो सकती है या नही ? अगर न हो सकती हो तो ईश्वर के ही टुकडे हो जायेंगे ।

पहले ही दिन मैंने भूमि की माग की और एक दाता (मुसलमान) दान देने के लिए खडा हो गया । 'इफ्तिताह' हो गया – द्वार खुल गया । इससे यह बात साबित हो गयी कि मानव का हृदय सब जगह समान है और पाकिस्तान मे भी जमीन का प्रश्न प्रेम और अहिंसा से हल हो सकता है ।

पाकिस्तान की जनता के सामने मैने वही विचार रखा, जो हिंदुस्तान की जनता के सामने भी रख चुका हू कि 'वर्ल्ड फेडरेशन' (विश्वसघ) का पहला कदम है 'भारत पाक-कान्फेडरेशन' (भारत-पाकिस्तान-मडल)। उससे दोनो देशो की समस्याओ का हल होगा।

पाकिस्तानी भाइयो के प्रेमपूर्ण व्यवहार से मै अत्यधिक प्रभावित हू। पाकिस्तान सरकार ने यात्रा के दौरान सब प्रकार की व्यवस्था रखी, वह भी धन्यवाद को पात्र है। पाकिस्तान के निवासियो ने मुझ पर भ्रातृवत् प्रेम किया। मेरा मानना है कि जिन पत्रकारो ने शुरुआत मे मेरी आलोचना की थी, वे भी आखिर मेरे दोस्त बन गये और वे मानने लगे कि मैने उनके देश मे जो कुछ किया, वह अच्छे उद्देश्य से प्रेरित हो कर ही किया।

* * *

करीब एक साल से, जब मैं पाकिस्तान मे था तब से मेरे मन मे एक विचार चल रहा था। बारह साल पहले भूदान का विचार लोगों के सामने रखा था। आठ साल पहले ग्रामदान का विचार रखा। ग्रामदान के विचार मे जमीन की मालकियत छोडने और जमीन के बटवारे की बात थी। सोचते हुए मुझे लगा कि ग्रामदान का विचार पूर्णतया समाज-प्रेरणा के अनुकूल है, परतु वह स्वार्थ-प्रेरणा के लिए उतना अनुकूल नही है। तब दोनों का मेल साधने की नयी युक्ति के बारे मे सोचने लगा। इसी पर से सुलभ ग्रामदान की बात ध्यान मे आयी। सुलभ ग्रामदान मे जमीन की मिलकियत ग्रामसमाज को समर्पित होगी और कुल जमीन का बीसवां हिस्सा जमीन भूमिहीनों में बटेगी। बची हुई जमीन काश्त के लिए मालिक के पास रहेगी और आगे उसकी सम्मति के बिना जमीन दी

नही जायेगी। वगाल मे मैंने यह सुलभ ग्रामदान का विचार लोगों के सामने रखा और कार्यकर्ताओ मे नये उत्साह का सचार होते देखा। वगाल मे ग्रामदान होने लगे। जिस 'प्लासी' को गवा कर हिंदुस्तान ने अपनी आजादी खो दी थी, उस प्लासी का भी ग्रामदान हो गया।

पडित नेहरू से मेरी आखिरी मुलाकात वगाल मे हुई। अपनी निजी वात मे मैंने उन्हे यह खबर दी कि प्लासी का ग्रामदान हुआ है। पडितजी ने कहा, "मुझे वहुत खुशी हुई यह सुन कर और मुझे मिल्टन याद आ रहा है। मिल्टन ने 'पैरेडाइज लॉस्ट' लिखा। उसके वाद 'पैरेडाईज रिगेण्ड' लिखा। हमे 'प्लासी लॉस्ट' के वाद 'प्लासी रिगेण्ड' मिला है।" इतना उत्साह उन्हे वह खवर सुन कर आया था। उस दिन जाहिर सभा मे उन्होने कहा, "हमारा मुकावला चीन के साथ है। हमारी कुछ जमीन चीन के हाथ मे गयी है, वह हमे वापिस लेनी है। लेकिन वह कोई वडी वात नही है। हमारी असली लडाई गरीवी के साथ है, वह अत्यत कठिन है। उस लडाई मे वावा आपके सामने ग्रामदान की जो वात रख रहा है, वह वहुत काम मे आयेगी।"

उन दिनो खादी के वारे मे भी मेरा वहुत चितन चल रहा था। नवद्वीप (वगाल 4, 5, 6 फरवरी 1963) मे सारे भारत के खादी कार्यकर्ता इकट्ठा हुए थे। तव मेरा वह चितन मैंने उनके सामने रखा। मैंने कहा, अव तक हमने एक ढग से सोचा। खादी की खपत खूव वढायी। पैसा हाथ मे आया। उसका उत्पादन के लिए उपयोग किया गया। अव दूसरी दिशा क्या हो सकती है, इसके वारे मे सोचो। अव तक खादी सरकाराभिमुख थी (सरकारी मदद से चलती थी)। अव उसे ग्रामाभिमुख करना है। मेरा विचार है

कि प्रतिव्यक्ति कुछ गज खादी मुफ्त बुन कर दें। बुनाई मे मदद देने का तरीका गाव मे कताई के लिए प्रोत्साहन देगा। साथ ही 'डिफेन्स मेजर' के तौर पर कपडे के लिए गाव को स्व-आधारित रहने की शक्ति आ जायेगी। अपना अनाज और अपना कपडा खुद पैदा कर लेने की ताकत गाव मे आती है तो गाव और फलत. देश मजबूत बन सकता है। इसलिए इस खादी के प्रचार मे युद्ध के स्तर पर लग जाओ। यो कह कर मैने उनको ब्राऊनिंग का एक वाक्य बताया – "आई हैव एव्हर बीन ए फाईटर। सो वन फाईट मोअर, दि लास्ट अॅण्ड दि बेस्ट" (मैं सतत एक योद्धा रहा हू। सो एक और लडाई – अतिम और सर्वोत्तम)।" मेरे ख्याल मे खादी को आखिरी प्रयत्न करना है – इसके बाद खादी को या तो राजा बनना है या समाप्त होना है।

मै गगासागर की यात्रा के रास्ते पर था। वह दिन था, 18 अप्रैल (1963)। उस दिन हमारी यात्रा को 12 साल पूरे हो रहे थे। उस दिन मैंने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था, एक तप हो गया, बारह साल सतत वाक्धारा चली। उसे लोगों ने भूदान-गगा नाम दिया। अब वह भूदान-गगा गगासागर मे डूबेगी। इसलिए उसकी यहा परिसमाप्ति हो रही है। इसके आगे हमारी यात्रा 'त्याग-यात्रा' रहेगी। अब हम भारमुक्त हो जायेगे। अब हमारा कार्यक्रम 'तुष्यन्ति च रमन्ति च' होगा। सतोषपूर्वक खेल खेल रहे है। इसके आगे का समय कार्यकर्ताओ के लिए देगे। सार्वजनिक भाषण कम करेगे। मुख्य ध्यान यह रहेगा कि भारतभर में एक ऐसा सेवकवर्ग खडा हो जाये जो अन्योन्य अनुराग से एक-दूसरे के साथ जुडा हो और जिनके बीच विचार-भेद न हो।

* * *

त्रिमूर्ति उपासना

बीच मे मैंने सर्वोदय सम्मेलन मे जाना छोड दिया था। उसके अनेक कारण है। एक कारण तो यह कि मैं नेता नही और दूसरा यह कि नेता नही है, फिर भी नेतृत्व-निरसन का उसका कार्यक्रम है। और आखिरी कारण सूक्ष्म-प्रवेश की इच्छा का। परंतु 1963 मे मैं रायपुर सम्मेलन मे उपस्थित रहा।

वहा मैंने त्रिविध कार्यक्रम सामने रखा –

(1) जब तक ग्रामदान नही बनेगा तब तक हम नये युग के लिए लायक नही हो सकते। नया युग विश्वराष्ट्र का युग है। उसका एक 'ट्रिब्युनल' न्यायालय बनेगा, जिसमे दुनिया के सर्वोत्तम विद्वान लोग होंगे। भारत देश उसका प्रात बनेगा, हर प्रदेश उसका जिला बनेगा, हर जिला गाव बनेगा और गाव एक परिवार बनेगा। आज परिवार छोटा है, उसको गाव तक बढाना है। ऐसा होने पर ही विश्व-शाति की बात हम कर सकते है। इसलिए उधर 'जय जगत्' और इधर 'ग्रामदान'।

(2) शाति-सेना। जब तक हम शाति-सेवा व्यापक नही करते, ताकि अदरूनी शाति के लिए पुलिस की खास जरूरत न पडे और सेना की तो कतई न पडे, तब तक हम अहिसा की शक्ति का कोई दावा नही कर सकते। इसलिए शाति-सेना अत्यत अनिवार्य है।

(3) ग्रामाभिमुख खादी। आज खादी को सरकार से मदद मिलती है, सरक्षण मिलता है। इससे उसकी तेजस्विता की हानि हो रही है। खादी लोक-क्राति का वाहन होनी चाहिए। ग्रामाभिमुख खादी ही गाधीजी की खादी है।

सम्मेलन में त्रिविध कार्यक्रम का प्रस्ताव पारित हो गया। सम्मेलन के बाद, रायपुर से मैंने महाराष्ट्र – विदर्भ – वर्धा की दिशा ली।

पुनरागमन

तेरह साल पहले जिस रास्ते से (वर्धा से) दिल्ली जाना हुआ था, अब उसी रास्ते से (रायपुर से) वर्धा जा रहा था। तब भूदान मागते हुए घूम रहा था, अब ग्रामदान ले कर आ रहा था। तब सेलडोह* मे कुमारप्पा से मिलना हुआ था। अब उनके स्थान पर उनकी स्मृति को प्रणाम कर आगे बढा।

वर्धा नजदीक आ रहा था, तो हमारे साथी मुझसे पूछ रहे थे, कैसा लग रहा है आपको ? कुछ विशेष भावना है ? मैंने उनसे कहा, कुल विश्व हमारा घर है, ऐसा माने तो भी भारतभूमि विशेष घर है। मराठी मे जिसको 'माजघर' (मकान के मध्य की कोठरी) कहते हैं, वैसा भारत है। तो फिर महाराष्ट्र होगा 'माजघर' के अदर का घर और वर्धा जिला गर्भ-गृह – अतर-मदिर।

तेरह वर्ष, तीन महीने, तीन दिन के बाद, ब्रह्मविद्या-मदिर की स्थापना के बाद पहली बार मैं ब्रह्मविद्या-मदिर पहुचा (10 4 1964)। तेरह साल से मैं घूम रहा था और मेरा वह घूमना जारी रहनेवाला था। मैंने कहा कि जाहिर है, मैं उस काम को अत्यत महत्त्व देता हू, जो मुझे यात्रा के द्वारा करना है। लेकिन मैं अपने अनुभव से कहता हू कि यहा पर जो प्रयोग हो रहा है,

* वर्धा से 20 मील के फासले पर, जहा कुमारप्पा का पर्ण आश्रम था – स

उसे मैं उससे भी ज्यादा महत्त्व देता हूं। पूछा जायेगा कि आप ही घूमने के बजाय ऐसे प्रयोग मे क्यों नही शामिल होते ? इसका उत्तर है, 'कुलालचक्रवत्'। कुम्हार का चक्र बरतन बनाने के लिए जोरो से घुमाया जाता है और बरतन बन जाने के बाद बरतन वहा से उठा लिया जाता है, फिर भी चक्र घूमता ही रहता है। काम पूरा होने पर भी घूमना जारी रहेगा। और तब तो काम पूरा भी नही हुआ था।

दो महीना वर्धा जिले मे घूम कर पुन पवनार आया और बीमार हो गया। उस लबी बीमारी के कारण मित्रो का सुझाव रहा कि मैं वही कुछ दिन विश्राम करू। मेरे शारीरिक स्वास्थ्य के विषय मे लोगो को कुछ चिता महसूस हो रही थी। तीन महीने पहले मुझे सिर मे कुछ चक्कर-से मालूम हुए थे। बीच मे फिर एक दिन प्रातःकाल उठने के बाद वैसा ही हुआ। इस तरह मित्रो की चिता का मै विषय बना। उनके वश हो कर पवनार मे कुछ लबे समय रुकने का मैंने तय किया।

मित्रो को मेरे स्वास्थ्य की चिता थी, पर मेरी दृष्टि दूसरी ही थी। मुझे लगा, भूदान-ग्रामदान का सदेश लोगो मे पहुचाता हुआ मैं निरतर घूमता रहू, इसमे मेरी शोभा है। लेकिन तेरह वर्षों के बाद भी इस काम के लिए मुझे घूमना पडे, इसमे दूसरो की शोभा नही। जहा एक की शोभा, वही दूसरो की शोभा, ऐसा सुयोग होता है, वहा धर्म स्पष्ट है। लेकिन जहा एक की शोभा दूसरो की शोभा से टकराती है, वहा धर्म सदिग्ध बन जाता है। ऐसी हालत मे धर्म के स्पष्ट निर्णय के लिए विश्राम को मैंने आशिक मान्यता दे दी। धर्म-निर्णय मुख्यत अतरशोधन से मिलेगा, गौणत. परिस्थिति के निरीक्षण से। अतर-शोधन के लिए ब्रह्मविद्या-मदिर का निवास

मैंने मान लिया। उसमें दूसरा भी हेतु था। मेरे निमित्त भारत मे छ आश्रमो की स्थापना हुई। उनका अंतर-हेतु एक ही है – कर्मियों का शिक्षण। उस तरफ ध्यान देना मेरा कर्तव्य भी है। उसका कुछ चिंतन इस विश्रामकाल मे हो सकेगा, ऐसा मुझे लगा।

पवनार के इस निवास-काल मे मेरा पाच दिन का उपवास हो गया (12 से 17 फरवरी 1962)। 12 फरवरी को मैने (देश में भाषिक दर्गों मे हुई हिंसा के कारण) उपवास करने का निश्चय किया और जाहिर किया कि मेरा यह उपोषण अनिश्चित काल तक चलेगा।

इस उपवास मे मुझे जरा भी तकलीफ नही हुई। सारे देश का अत्यत प्रेम मैने पाया। उपवास की खबर मिलने पर (गुलजारीलाल) नदाजी (केद्रिय गृहमत्री) यहा आये। मैने उनके सामने 'त्रि-सूत्री' पेश की। उन्होने सब प्रदेशो के मुख्यमत्रियो से सपर्क साधा और सभी मुख्यमत्रियों ने त्रि-सूत्री तुरंत मान्य की।

मेरी उपवास करने की वृत्ति नही है। मैं भक्तिमार्गी हूं। और चित्तशुद्धि के अलावा और किसी उपवास के लिए मेरे मन में आकर्षण नही है। फिर भी परमात्मा से आज्ञा हुई तो मैं उसे टाल नही सका। अनशन तो पाच दिन चला, लेकिन उसमे परम शाति का अनुभव आया – आकाशवत्। इसका कुछ परिणाम निकलेगा, इसकी आसक्ति मेरे मन मे नही थी। परतु परमात्मा की इच्छा जिस चीज के लिए होती है, वह चीज बनती है। उन परिणामों को भगवत्-चरणों मे समर्पित कर के मै उसमे से मुक्त हो गया। उपवास-समाप्ति के बाद चिंतन चला, वह ज्यादातर ब्रह्मविद्या का ही था।

मेरा अपनी इस देह का 70 वा साल चल रहा था । मैंने देखा, वृत्तिया उठती नही, सहजभाव है। कोई बात कोई पूछता तो उतना ही वृत्ति का सबध आता । मुझे लगा, हम ही आखिर तक कहते रहते हैं तो दूसरो को कुछ सूझता नही । उसके बजाय जीते जी मृत्यु का अनुभव करे । वल्लभस्वामी गया (दिसबर 1964) । एक-एक कर के सब जा रहे है । जो जाता है, उसकी सलाह तो पीछे नही रहती । इसलिए मैंने सोचा कि मैं मरने के पहले मर जाऊ और भूदान का क्या होता है, देखू ! कोई सलाह पूछने आये तो सलाह दे सकता हू, बाकी तटस्थ हो कर देखता रहू । इसलिए मैंने साथियो से कहा कि अभी मैं यहा पर हू तो 'डिक्शनरी' जैसा रहूगा । डिक्शनरी का उपयोग कोई करता है तो वह उपयोगी होती है, अन्यथा वह अलमारी मे पडी रहती है । उसको यह उत्साह नही कि वह खुद उठ कर लोगो को शब्दार्थ समझाती फिरे । वैसा मैं यहा रहूंगा ।

तूफान-यात्रा

उन्ही दिनो मे सर्व सेवा सघ ने गोपुरी-वर्धा मे अपना अधिवेशन बुलाया । भारतभर के लोग वहा इकट्ठा हुए । एक-एक प्रात के लोग मुझसे मिलने के लिए आते गये । तब मैंने बिहारवालो के सामने कहा कि आप छ महीनो मे बिहार मे दस हजार ग्रामदान प्राप्त करे और तूफान खडा करे । अगर ऐसा होता है और मेरी जरूरत पडती है, तो मैं बिहार आऊगा । बिहारवालो ने यह बात मान्य कर ली । और मैं बिहार की तरफ निकल पडा (24 8 65) ।

लोग मुझसे कहते कि आप किसी एक गाव मे बैठ जाये और एक नमूना पेश करे। मैने कहा, मैंने कुछ साल एक जगह बैठ कर कार्य किया है जब गाधीजी थे। पर अब मैं एक जगह बैठू तो कार्य कैसे हो सकता है ? जब मै चलता हूं, तो कार्यकर्ता बैठते हैं, जब मैं बैठता हू तब कार्यकर्ता सोते हैं। मैं भागने लगूगा तब कार्यकर्ता चलने लगेंगे। मैं एक जगह बैठ जाऊ तो कार्यकर्ता सोयेंगे नही ? इसलिए मुझे चलना चाहिए, ताकि कार्यकर्ता बैठ कर कार्य करे।

एकबार जे. पी. से बोलते हुए मैंने कहा कि यह जो 'तूफान' चला है, वह अतिम लडाई है। 'वन फाईट मोअर दि लास्ट एण्ड दि बेस्ट'। उन्होने कहा, 'यह अतिम लडाई नही, और कई लडाइया लडने के लिए बाबा चाहिए, इतनी जल्दी आपको विदा करने हम तैयार नही।' मैंने कहा, पर वह आपके हाथ मे होता तब न ! इसलिए मैं अपने मन में मान कर चल रहा हूं कि अपनी मृत्यु के पूर्व मुझे मरना है। मनुष्य को मृत्यु के पूर्व मरना चाहिए। अपनी वफात अपनी आखों से देखना चाहिए। यह मेरी आकाक्षा है।

बिहार से कुछ दिन के लिए उडीसा जाना तय हुआ था। कार्यक्रम बन गया था। परंतु मुझे अचानक 'फीशर' की तकलीफ शुरू हो गयी और मुझे कुछ दिन के लिए जमशेदपुर मे रुकना पडा। उडीसा का कार्यक्रम रद्द करना पडा। मैंने उनसे कहा, मुझे दु ख है इस बात का कि ग्रामदान तूफान के सिलसिले मे मेरा जो उडीसा का कार्यक्रम बना था, वह अचानक व्याधि के प्रादुर्भाव से फिलहाल स्थगित करना पडा। लेकिन एक बात सहज ध्यान मे आती है कि तूफान तो अपने वेग से आता है। वह किसी व्यक्ति-विशेष पर निर्भर नही रह सकता। भक्तिशास्त्रकारों ने माना है

कि सयोगभक्ति से वियोगभक्ति मे तीव्रता होती है। मुझे आशा है कि उडीसा का 'तूफान' उस तीव्र रूप मे प्रकट होगा और सब कार्यकर्ता दुगने वेग से काम मे जुट जायेंगे।

मेरी इस बीमारी मे मेरा चितन चलता रहा। पवनार मे मैं एक जगह बैठा था, वहां अगर मैं यह कहता कि एक जगह बैठे हुए तूफान चलना चाहिए, तो वह मेरा आग्रह होता। लेकिन वहा से निकल पडा, बिहार की एक यात्रा हुई और अब एक जगह बैठना पडा तो मुझे महसूस हुआ कि उसमे ईश्वर का सकेत है। अब भी मैं घूमने का आग्रह रखूगा तो वह अडगा लगाने जैसा होगा।

मेरा स्वास्थ्य सुधर रहा था। खास चिता की बात नही थी। वेदना वगैरह तो बहुत हुई, लेकिन वह एक ईश्वर का वरदान था, ऐसा मैं मानता हू। उससे मुझे बहुत लाभ हुआ। अधिकतर समय चितन-मनन-ध्यान आदि मे जा रहा था। चारो ओर से ग्रामदान के तार रोज पहुचते थे। तूफान मे जितने वेग की अपेक्षा की थी उससे आधे वेग तक तूफान पहुचा था।

मार्च को 16 तारीख को वहा से प्रस्थान कर मैं उत्तर बिहार की ओर निकल पडा।

सूक्ष्म-प्रवेश

उन्ही दिनों मुझे अदर से आदेश मिला कि अब लोगो को ज्यादा पीडा नही देनी चाहिए। लोगो ने तो उसे पीडा नही माना। लेकिन वह एक पीडा ही है कि एक आदमी पीछे लगा रहे और उनको एक ही बात बार-बार समझाता रहे। मैंने सोचा कि इसी साल के अदर-अदर (एक तारीख थी मेरे मन मे) इसका निर्णय

लूगा कि मैं खुद लोगों के पास नही जाऊंगा। लोग सहज मेरे पास आयेगे तो उनको सलाह आदि दूगा। सूक्ष्म में प्रवेश करने की कोशिश करूगा।

7 जून नजदीक आ रही थी। बापू के पास आ कर मुझे पचास साल पूरे हो रहे थे। तो ऐसा लग रहा था – उसके पहले ईश्वर ले जायेगा तो सवाल ही नही था, नही तो उस दिन गाधीजी से इजाजत मागे। उसमे सत्य नही छोडना है। अहिंसा नही छोडनी है। लेकिन 50 साल उनकी आज्ञा मे काम किया, तो अब इजाजत मागने से गांधीजी नाराज नही होंगे।

मनुष्य ने बचपन में जो सेवा की होगी, वही वह जवानी मे करेगा और जवानी मे जो सेवा की होगी वही बुढापे मे करेगा, ऐसी अपेक्षा कोई नही करेगा।

निवृत्ति यानी अप्रवृत्ति नही। प्रवृत्ति-अप्रवृत्ति एक ही वस्तु के 'पाजिटोव-निगेटीव' (विधायक-निषेधात्मक) रूप हैं। निवृत्ति अलग ही वस्तु है। चित्त को देह से, समाज से अलग कर के चित्त का चैतन्य बनना चाहिए। वह एक बहुत बडा कार्यक्रम है। वही प्रधानरूप से मेरे मन मे था। परंतु मेरी अपेक्षा यही रही कि पूर्ण चैतन्य मे जाने के बाद कर्मयोग क्षीण नही होगा, वह वीर्यवत्तरम् होगा। मैंने सूत्र ही लिखा है 'क्रियोपरमे वीर्यवत्तरम्'।

इसलिए 7 जून (1966) के दिन मैंने जाहिर कर दिया कि इन दिनों स्थूल कार्य से मुक्त हो कर 'सूक्ष्म' कर्मयोग मे प्रवेश करने का मेरा विचार तीव्रता से चल रहा है। उसका अमल मैं आज से कर रहा हूं। आज का ही दिन था, जब बापू से मेरी प्रथम मुलाकात हुई थी, सन् 1916 मे। 50 साल पूरे हो गये। ब्रह्म का नाम ले कर मैंने घर छोडा था, वह भी उसी साल मे।

उसको भी 50 साल और कुछ महीने हो गये। तो मुझे अदर से आदेश मिला कि जो भी सेवा बनी, वह श्रीहरिगुरु-चरणों मे अर्पण कर के अब मैं सूक्ष्म मे प्रवेश करू। ऐसे तो जिस दिन परमेश्वर से आमंत्रण आता है, तब तो सूक्ष्म मे जाना ही होता है हरएक को। लेकिन उसका परिणाम तो सूक्ष्म शरीर मे पैठना, इतना ही होगा। इसलिए मैंने यह प्रक्रिया सोची है और उसको ध्यान, भक्ति, ज्ञान आदि नाम न दे कर 'सूक्ष्म कर्मयोग' यह नयी सज्ञा दी है। यह विचार मेरा नया नही, पुराना ही है। उस पर आज अमल कर के मैं अपने को शून्यवत् पाता हू। अभी पूरा 'शून्य' नही, 'वत्' है। पहले कदम के तौर पर बहुत सारा पत्र-व्यवहार बद करने का मैंने निर्णय लिया है।

मेरा अपना विश्वास है कि सूक्ष्मरूपेण बहुत काम किया जाता है। और जो अपनी वासनाए नि शेप कर के परमात्मा में और परमात्मा की सृष्टि में लीन हो गये, वे सूक्ष्मरूपेण बहुत मदद करते है।

सूक्ष्म कर्मयोग मे न दया छोडनी है, न दान छोडना है, न दम छोडना है। यह जो त्रिविध कार्यक्रम है वह दम-दान-दया है। शाति-सेना का काम दया की प्रेरणा है – क्रोध के खिलाफ दया। ग्रामदान का काम है दान – लोभ के खिलाफ दान-प्रवृत्ति। और खादी का काम है दम – विलासप्रियता और कामवासना के खिलाफ दम। इसलिए चाहे मैं 'सूक्ष्म' मे प्रवेश करू, यह दम-दान-दया का जो कार्यक्रम है, उसके साथ मेरा हृदय जुडा रहेगा।

इसलिए 'तूफान' तो चल ही रहा था, पर पत्राचार नहीवत् था, बोलना भी कम। चितन 'सूक्ष्म से सूक्ष्म' जाने का चल रहा था। खाली बैठने मे कसौटी है। एकनाथमहाराज का एक भजन है –

जागा परी निजला दिसे। कर्म करी स्फुरण नसे
सकळ शरीराचा गोळा। होय आळसाचा मोदळा
संकल्प-विकल्पाची ख्याति। उपजे चि ना कदा चित्तीं
या परी जनीं असोनि वेगळा। एका जनार्दनी पाहे डोळा

– जागृत है, पर निद्रित दीखता है। कर्म करता है पर स्फुरण नही है। सपूर्ण शरीर गोल गठरी बना है, आलस्य का पिड है। चित्त मे कभी सकल्प-विकल्प उत्पन्न नही होते। इस तरह लोगो मे रहते हुए अलग – निराला है। एका जनार्दनी आख से देखता है – अनुभव करता है –

अब बोलने की कोई वृत्ति नही रही थी। रोजाना जो बोलने का समय रखा था, वह समाप्त कर दिया। न बोलने का कोई सकल्प नही था, बोलने का भी नही था।

उस दिन मैंने कहा कि 17 साल मैं बोलता रहा। अब भी बोलता ही रहू, तो ठीक नही। तो मैंने सोचा है कि कार्यकर्ताओं के साथ आतरिक अनुसंधान रखू। इसलिए मैंने ग्याशा से बगाल के कार्यकर्ताओं के नामो की सूची तैयार करवा ली और सारे भारत के कार्यकर्ताओ के नाम मैं चाहता हूं। उनका मैं ध्यान करूंगा। कार्यकर्ताओ के साथ आतरिक अनुसधान रखना चाहता हू। आतरिक अनुसधान मे जो शक्ति है उसे लोग पहचानते नही। आंतरिक अनुसधान मे अपने को भूल जाना होता है। खाली होना। एकदम खाली। तब अनुसंधान रहता है।

एक दिन मैंने बाबाजी (मोघे)* से, जो उन दिनो मुझे मिलने यात्रा मे आये थे (1968), पूछा कि आपके कितने बच्चे हैं, कहा है? तो वे कहने लगे कि 56 साल से मैं आपके साथ हूं, 56 साल के बाद आप यह सवाल कर रहे हैं, कैसे प्रेरणा हुई? मैंने कहा,

---

[1] बडौदा के बालमित्र, विद्यार्थी मडल से बाबा के साथी – स

मैंने व्यक्तिगत सवाल पूछा इसलिए आपको आश्चर्य हो रहा है। लेकिन अब मैं सूक्ष्मतर मे गया हू। पहले स्थूल कार्य मे था, तो कार्य हो रहा है या नही इस तरफ ही ध्यान देना था। अब आस-पास के साथियों की ओर ध्यान देता हू। इसलिए देखता हू कि बाल को जुकाम होता है तो वह गरम पानी पीता है या नही, जयदेव को पूरी नींद मिली या नही। ये हमारे ओजार हैं, वे अच्छे चले इस तरफ ध्यान देता हू। इतना करने पर भी 'बाबा' तो 'इपर्सनल' (निर्वैयक्तिक) है ही। तो उसका यह 'इपर्सनल काटैक्ट' (निर्वैयक्तिक सपर्क) 'पर्सनल काटैक्ट' कहा जायेगा। आगे जब शून्य मे जायेगा बाबा तब यह झमेला भी खत्म होगा।

ऐसे सकल्पमात्र भगवान की इच्छा के अंतर्गत ही हैं। फिर भी स्वतत्र हो सकते है। इन सकल्पों के अनुसार भक्त काम करता है, भगवान भक्त की मदद भी करता है। इस तरह मदद पाना एक बात है और आदेश पाना दूसरी बात है। 17 साल पहले हमारी पदयात्रा शुरू हुई। पोचमपल्ली मे हरिजनो के लिए 80 एकड भूमि की हमने माग की। 100 एकड जमीन मिली। उस दिन रात को नींद नही आयी। भगवान से बातचीत शुरू हो गयी। आदेश मिला, यह काम तुमको उठाना चाहिए। वह ईश्वरी आदेश था। तब से पदयात्रा चलती रही। बीच मे बीमारी के कारण हम पवनार रुके। तब हमे आगे नही जाना चाहिए था, लेकिन निकल पडे। तो फिर से बीमारी के कारण वापस पवनार जाना पडा। तो वह ईश्वर का आदेश नही था। फिर गोपुरी के सर्व सेवा संघ के अधिवेशन मे 'तूफान' शब्द निकला, मै वाहन (मोटर) से यात्रा पर निकला और अब वह शब्द चल रहा है। इसे भी मैं ईश्वर के आदेश का लक्षण समझता हू।

आचार्य-कुल –

पूसारोड की विद्वत् परिषद (7, 8 दिसबर 1967) मे भी मुझे एक ईश्वरीय आदेश महसूस हुआ। इससे पहले मेरी पदयात्रा के दरमियान या गांधीजी के जमाने मे भी इस प्रकार की कोई परिषद हुई थी, ऐसा कोई स्मरण मुझे नही। इस प्रकार की परिषदों को प्राचीन काल मे 'सगीति' कहते थे। तो मुझे लगा कि यह विशेष प्रसग है। फिर, इस परिषद के आयोजन के लिए मुझे जरा भी तकलीफ नही हुई, न मैंने इस बारे में कुछ सोचा भी था। सारा आयोजन कर्पूरी ठाकुर ने किया और उन्होने कहा कि उसमें सरकार का एक पैसा भी खर्च नही हुआ। इसलिए मुझे लगा कि इसमे एक ईश्वरीय आदेश है। अगर इस काम को हम उठा लेते हैं तो शिक्षा मे अहिंसक क्राति हम ला सकते हैं।

इस परिषद मे मैंने कहा कि आचार्यों के हाथ मे सारे देश का मार्गदर्शन होना चाहिए। लेकिन आज शिक्षक सामान्य नौकर की हैसियत मे आ गये हैं। यह शिक्षा-विभाग का दुर्भाग्य है कि जो स्वतत्रता न्याय-विभाग को है, उतनी भी स्वतंत्रता शिक्षा-विभाग को नही है। न्याय-विभाग की सरकार से ऊपर एक स्वतत्र हस्ती है। यद्यपि उसको तनख्वाह सरकार की ओर से मिलती है, वह सरकार के मातहत नही है। वैसे ही शिक्षक को भी सरकार की ओर से तनख्वाह भले ही मिले, क्योंकि सरकार लोगो से ले कर ही देती है, लेकिन उसकी स्वतंत्र हस्ती होनी चाहिए। परतु शिक्षा-विभाग की स्वायत्तता को सच्चे अर्थ में उपलब्ध एव कार्यान्वित करने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षक सत्ता की राजनीति के पीछे न भाग कर स्वयं अपनी शक्ति का विकास

करे। कलुषित राजनीति से मुक्त हो कर, सकीर्ण मतवादो से ऊपर उठ कर विश्वव्यापक मानवीय राजनीति तथा जनशक्ति पर आधारित लोकनीति को अपनाये।

दूसरी बात मैंने यह बतायी कि एक है अशाति-शमन-विभाग और दूसरा है अशांति-दमन-विभाग। शिक्षक-प्रोफेसर-आचार्यो का विभाग अशाति-शमन-विभाग है। और पुलिस-विभाग, जो सरकार रखती है, वह है अशाति-दमन-विभाग। अगर शमन-विभाग समर्थ होगा, तो दमन-विभाग की आवश्यकता ही रहेगी नही। केवल विश्वविद्यालय ही नही, सारा भारत ही विश्वविद्यालय-परिसर है। वहा पुलिस का होना आचार्यों पर एक कलक ही मानना होगा।

इन्ही विचारों के आधार पर कहलगाव मे 'आचार्य कुल' की स्थापना हुई (8 3 68)। कहलगाव प्राचीन स्थान है। कहोल नामक एक मुनि हो गये। याजवल्क्य की सभा मे चर्चा के लिए जो विद्वान आये थे, उनमे एक थे कहोल मुनि। बृहदारण्यक उपनिषद मे ब्रह्मचर्चा मे वे भाग लेते हैं। वहा मैंने कहा कि इस बार मै दो अपेक्षाए ले कर विहार आया हू। पहली विहारदान की अपेक्षा और दूसरी शिक्षको की स्वतन्त्र शक्ति खडी की जाये। सभी शिक्षकों-आचार्यों का सगठन हो, जिसको 'आचार्य-कुल' कहा जायेगा।

मैंने विहार मे दो शब्दो के साथ प्रवेश किया था – 'तूफान' और 'छ महीने'। मैं चार साल विहार मे रहा। विहारवालों ने शानदार काम किया। किसी ने अपनी ताकत मे चोरी नही की। (परिणामत विहार के सभी जिलो का 'जिलादान' हुआ। राजगीर के सर्वोदय सम्मेलन • अक्तूबर 1969 मे 'विहारदान' हो जाने का ऐलान हुआ।)

राजगीर के सर्वोदय सम्मेलन में मैंने जाहिर किया कि बादशाहखान से, जो 22 साल के बाद भारत आये थे, मिलने मै सेवाग्राम जाऊंगा।

* * *

मैं मानता हू कि मुझे एक-एक दिन परमेश्वर के द्वारा मिला है, इसलिए जिसे मैं धर्म मानता हू, उसका मुझे आचरण करना चाहिए, इसी कारण मेरी पदयात्रा चली। वह भगवान की प्रेरणा है। वैसी प्रेरणा नही होती तो इस वृद्धावस्था में मुझे सतत पदयात्रा करने का सामर्थ्य नही आता। पिछले चौदह वर्षों से यह पदयात्रा (तथा चार साल मोटर-यात्रा) जगलों-पहाडों मे, बरसात में, गरमी मे, जाडो मे अखडरूप से चली। यह शक्ति भगवत्-प्रेरणा से प्राप्त हुई। स्वय मुझमे ऐसी शक्ति नही कि मैं इस प्रकार घूम सकू। देह को इस प्रकार घूमने मे सुख नही होता, परतु मैने माना कि यह ईश्वर की आज्ञा है और उसको मुझे पालन करना ही चाहिए। एक जगह लोगों ने आशा व्यक्त की कि आपकी यह यात्रा विजय-यात्रा हो। मैंने कहा, परमात्मा ने एक प्रेरणा दी, उस प्रेरणा से प्रेरित हो कर मैंने यात्रा चलायी। मेरे हाथ मे ज्यादा से ज्यादा इतना ही है कि यात्रा अखड चले। लेकिन यह विजय-यात्रा होगी कि पराजय-यात्रा यह आपके हाथ मे है। विजय-यात्रा हुई तो आपकी जय है, और पराजय-यात्रा हुई तो आपकी ही पराजय है। मैं तो जय और पराजय भगवान को समर्पण कर के मुक्त होता हू।

मैं एक बात कहना चाहता हू, जो मैं भूदान-आदोलन के प्रारभिक दिनों मे कह चुका हू कि हमे सोचना होगा कि हम

किस प्रकार अपनी समाजरचना करना चाहते हैं। हमारे सामने आज पचासों रास्ते खुले हैं। हम सबके सामने यह बडा भारी सवाल है कि अपनी आर्थिक और सामाजिक रचना के लिए कौनसा रास्ता ले, कौनसा तरीका स्वीकार करे। अगर हम अच्छे उद्देश्य के लिए बुरे साधन इस्तेमाल करते हैं, तो हिंदुस्तान के सामने ऐसे मसले पैदा होते ही रहेगे। लेकिन अगर हम अहिंसक तरीके से अपने मसले तय करेगे तो दुनिया मे मसले रहेगे ही नही। मैं मानता हू कि यह धर्मचक्र-प्रवर्तन का कार्य है। मेरा विश्वास है कि इस प्रयत्न से ही अहिंसा की कुजी हमारे हाथ मे आयेगी।

मै ईश्वर से यह नही कह सकता कि तुमने हमको दु ख का दर्शन कराया। सर्वत्र सुख ही सुख हमने पाया। जितना प्रेम मैंने पाया उसका एक अशमात्र भी मै नही चुका रहा हू। प्राचीनो से, अर्वाचीनो से, शरीर के ख्याल से दूरवालो से, नजदीकवालो से, इस तरह कश्मीर से कन्याकुमारी तक और इधर पश्चिम से पूर्व—असम तक मुझे जो मिला, उसका वर्णन मै नही कर सकता। मुझे जो मिला है, वह इतना अत्यधिक मिला है कि मै प्रेम दे रहा हू, ऋण चुका रहा हू, ऐसा भास मुझे नही होता है। माधवदेव ने गुरु के लिए जो लिखा है, वही मै जनता के लिए कहता हू—नमस्कार करने के सिवा दूसरा उपाय नही है। सबको हम भक्तिभाव से प्रणाम करते हैं।

वाङ्मय-उपासना

स्वाध्याय-प्रवचने च

उपनिषद ने आज्ञा दी है – सत्यं च स्वाध्याय-प्रवचने च – सत्य का पालन करे और अध्ययन-अध्यापन करे। शमश्च स्वाध्याय-प्रवचने च – शाति रखें, मन पर काबू रखे और अध्ययन-अध्यापन करे। दमश्च स्वाध्याय-प्रवचने च – इद्रियों का दमन करे और अध्ययन-अध्यापन करे। अतिथयश्च स्वाध्याय-प्रवचने च – अतिथि की सेवा करे और अध्ययन-अध्यापन करे। जितने कर्तव्य बताये, उन सबके साथ अध्ययन-अध्यापन का सपुट किया। इसको शास्त्र मे 'सपुट' कहते है। ऊपर-नीचे एक-एक पुट और बीच मे कोई चीज। तो स्वाध्याय-प्रवचन के संपुट मे सारे कर्तव्य बताये। यानी हरएक कर्तव्य के साथ स्वाध्याय-प्रवचन होना चाहिए। मैने अपने लिए समझ लिया – 'भूदानं च स्वाध्याय-प्रवचने च। ग्रामदानं च स्वाध्याय-प्रवचने च। शातिसेना च स्वाध्याय प्रवचने च। ग्रामाभिमुखं खादी-कार्यं च स्वाध्याय-प्रवचने च।' और ऐसा ही व्यवहार मैने किया। जितने काम किये उन सबके साथ अध्ययन-अध्यापन का कर्तव्य कभी दूर हुआ नही। बहुत बडा उपकार है उन महात्माओ का, जिन्होंने मुझे यह आदेश दिया।

मैं जीवनभर विद्यार्थी रहा हू। मेरा सतत अध्ययन चला ही है। जिसको अध्ययन मे रस है, वह निरतर अध्ययन के बिना रह

नहीं सकता । आध्यात्मिक ज्ञान, विज्ञान का ज्ञान, आरोग्यशास्त्र का ज्ञान, वैद्यकशास्त्र का ज्ञान अनेक प्रकार का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । मैने इसकी कोशिश की । जैसे कोई युनिवर्सिटी का विद्यार्थी पूर्ण हृदय से अध्ययन करता है, वैसे ही मैंने अध्ययन किया । भूदान-ग्रामदान की यात्रा मे भी वह चलता रहा ।

अध्यापन अध्ययन का ही एक प्रकार है । सन् 1911 से मैंने वह भी सतत किया । और अत तक चलता रहा । समाज को समझाना भी अध्यापन ही है । सतत चौदह-पद्रह साल मैं बोलता रहा । रोज के कम से कम तीन के हिसाब से तेरह-चौदह हजार प्रवचन मेरे हुए होगे ।

तीन अवस्थाए

ऐसे, मेरी पढाई की शुरुआत गागोदे मे 1901 से हुई । परतु मेरी बहुत सारी शिक्षा, लगभग 11 साल तक बडोदा मे हुई । उतनी अवधि मे मैने अक्षरश हजारो किताबे पढी । मराठी, सस्कृत, हिंदी, गुजराती, अग्रेजी, फ्रेच, इन छ भाषाओ से मेरा परिचय था । इनका उत्तमोत्तम साहित्य पढने मे आया । हिंदी मे तुलसीदासजी की रामायण (मूल रामायण और उसका मराठी तर्जुमा) उसी वक्त पढी । गुजरात के नरसिंह मेहता, अखा भगत इत्यादि पढे । फ्रेच मे व्हिक्टर ह्युगो की 'ला मिझरेबल' पढी । अग्रेजी मे मिल्टन, वर्डसवर्थ, ब्राऊनिंग, वगैरह कवियो का बहुत सस्कार हुआ । सस्कृत तो कम आती थी, तो गीता पढ ली । परतु उस समय चित्त पर सबसे ज्यादा सस्कार मराठी संतो के ग्रथो का

हुआ। स्वाभाविक ही था, मातृभाषा ही थी, समझने मे खास प्रयास नही पडता था। ज्ञानदेव, नामदेव, तुकाराम, एकनाथ और रामदास, इनके हजारों ओवी-भजन कठस्थ थे। पाचो के मिल कर लगभग दस हजार पद्य होगे।

ब्रह्मविद्या के नाम से घर छोड कर निकला उसके दो साल बाद मा की मृत्यु हुई। उस समय मैं उसके पास था। तब मुझे ज्ञानेश्वरी का वचन याद आया –

> अहितापासोनि काढिती। हित दावोनि वाढविती
> नाहीं श्रुतिपरौती। माउली जगा

अहित मे से छुडानेवाली, हित मे प्रेरित करनेवाली श्रुति के समान माता नही। शकराचार्य ने भी एक जगह यही कहा है कि हजार माताओ और हजार पिताओं से बढ कर हितैषी वेद है। तो उस दिन से वेदाध्ययन शुरू किया– 1918 से। 1969 मे समाप्त किया। पचास वर्षो में वेद-वेदात आदि सस्कृत आध्यात्मिक ग्रंथो का अध्ययन किया। मेरे ख्याल से कोई ग्रथ बाकी नही रहा होगा। रामायण, महाभारत, भागवत, योगवासिष्ठ, योगसूत्र, ब्रह्मसूत्र, साख्यसूत्र, रघुवश इत्यादि। फिर भाष्य पढे। 20 सस्कृत भाष्य पढे, 13 अन्य पढे, कुल 33। इस प्रकार धार्मिक, आध्यात्मिक साहित्य बहुत सारा पढ लिया। हरएक किताब पूर्ण पढी, ऐसा नही। कुछ पूर्ण पढी, कुछ कंठस्थ की, कुछ सरसरी तौर पर पढी। यह मेरी बीच की अवस्था हुई। उसमे साररूप किताब मै वेद को मानता हू।

अब (1975) मै वृद्ध हो गया। तो वृद्धावस्था से आश्रय के लिए दो किताबे ली – वह भी शकर की आज्ञा के समान ली – गेय गीता नाम सहस्रम्, एक गीता और दूसरा विष्णुसहस्रनाम। दिन मे, रात मे, सोते, जागते निरतर विष्णुसहस्रनाम का स्मरण करता हू।

जीवन की पहली अवस्था मे पाच संतों का असर, दूसरी अवस्था मे वेद का मुख्य असर, तीसरी अवस्था – सबसे अधिक विष्णुसहस्रनाम का असर! इसके आगे ग्रथसूचित ही रहती है।

विहगमावलोकन

बचपन मे मैं मासिक पत्रिकाए पढता था, तब कहानी-कविता आयी कि छोड देता था। निबध आदि ऊपर-ऊपर से देख लेता था। ऐतिहासिक जानकारी, जीवनचरित्र, विज्ञान की जानकारी, ऐसी चीजे पूरी पढ लेता था।

बडौदा के ग्रथालय मे जितने चरित्रग्रंथ थे, वे सारे के सारे मैंने पढ डाले थे। वर्णानुक्रम से अब्दुल रहमान का चरित्र पहले आता था। अफगानिस्तान का आदमी स्वतत्र रहने के लिए किस तरह प्रयत्न करता है, अच्छी जानकारी थी। फिर बुद्ध का चरित्र पढा। 80 साल के अस्सी प्रकरण उसमे थे।

बडे-बडे ग्रथ मैं दस-दस, पद्रह-पद्रह मिनट मे पूरे देख लेता था। फैजपुर मे था, तब पडित नेहरू का आत्मचरित्र ऐसे ही दस-पद्रह मिनट मे देख लिया था। उसमे एक जगह उन्होने लिखा है – 'मेरी शादी हुई, हम कश्मीर गये। वहा अकाल पडा था, गरीबी थी.. ' और फिर शुरू हुआ हिंदुस्तान की गरीबी का वर्णन!

शादी के बारे मे 'शादी हुई' इतना ही, बाकी सारी दूसरी बाते। मेरे ध्यान मे आया कि यह आदमी अनासक्त है।

बापू की आत्मकथा भी मैंने पूरी पढी नही। 'नाताल मे हडताल शुरू हुई' – इतना पढ लिया तो आगे का ध्यान मे आ गया, तो वह हिस्सा छोड दिया और आगे बढे।

संस्कृत मे उपन्यास, काव्य, नाटक पढा नही। केवल एक नाटक पढा, उत्तररामचरितम्। शाकुंतल नही पढा। रघुवंश के दो सर्ग पढे। वाल्मीकि रामायण भी पूरी नही पढी। महादेवी या वल्लभ, किसी को पढाना शुरू किया था, उस समय चार-पांच सर्ग पढे होंगे। उसमे मारीच और सुबाहु का वर्णन आता है – वीर्यवन्तौ सुशिक्षितौ। उतना ही ध्यान मे रहा कि ये राक्षस सुशिक्षित थे। वेद, उपनिषद, गीता, ब्रह्मसूत्र पूरे पढे।

हमारा मित्र रघुनाथ (धोत्रेजी) मराठी काव्य-नाटक पढता था और अभिनय के साथ बोल कर सुनाता था। उसने मुझे कीचकवध नाटक पढने को दिया। उतना मैंने पढा।

साने गुरुजी ने अपनी पत्री नाम की किताब पढने को दी। उसमे से दस-बारह कविताओं पर निशानिया लगा कर दी थी, वे कविताए मैने पढी, बाद मे पूरी किताब देख ली। उनकी 'श्याम की मा' मैने पढी नही।

शेक्सपीअर का केवल एक नाटक मैने पढा – ज्युलीयस सीजर। वह भी पाठ्यक्रम मे था इसलिए पढा। उसमे पहले पृष्ठ पर पात्रों का परस्पर रिश्ता दिया था, उस पृष्ठ पर उंगली रख कर ही मैने आगे का सारा पढा। हर पात्र के आते ही झट् से इधर देख लेता था कि यह किसका कौन है। नही तो वह सारा झमेला ध्यान मे रहेगा कैसे? स्कॉट का इवानोव भी कोर्स मे था। उसमे

एक मनुष्य के वर्णन से ही तीन-चार पृष्ठ भरे हुए थे। किसलिए पढना वह सारा ? बोले, पाठ्यक्रम मे है इसलिए। तो मैंने छोड ही दिया।

टालस्टाय इतना बडा आदमी। उसका एक-एक उपन्यास हजार-हजार पृष्ठो का। 'वार एण्ड पीस' मैंने लिया, आदि-अत देख कर रख दिया। 'ट्वेंटी थ्री टेल्स आफ टालस्टाय' मैने पूरी पढी। टालस्टाय खुद कहता है – मेरी जो किताबें खरीदी जाती है, उनमे कोई सार नही। मेरी कहानिया सर्वोत्तम है और उनमे भी प्रथम कहानी 'गॉड सीज दि ट्रुथ, बट वेट्स' सर्वाधिक उत्तम है। मुझे भी वह कहानी बहुत पसद आयी।

प्रेमचद का करबला नाटक पढा। उसमे उर्दू शब्द हैं और नागरी मे लिखा है। उर्दू शब्द कठ करने थे इसलिए पढा। पजाबी रीडर्स भी मैंने उर्दू शब्दो के लिए पढी।

ऑक्सफर्ड डिक्शनरी मैंने पूरी की पूरी पढी। कौन होगा ऐसा डिक्शनरी पढनेवाला ? सस्कृत का निर्वाण लघुकोष और तमिल का कोष भी मैने पूरा पढ डाला। अग्रेजी व्याकरण की दस-बारह किताबे पढी।

गीताध्ययन की प्रेरणा

बचपन मे मेरे मन में गीता के लिए आदर ज्ञानेश्वरमहाराज ने पैदा किया। आठ साल की उम्र थी। घर मे ज्ञानेश्वरी थी वह पढना शुरू कर दिया। पहला अध्याय पूरा हो गया। लडाई का बडा जोरदार वर्णन आया – शख बजे, पृथ्वी हिलने लगी, जैसे पारिजात के वृक्ष से पुष्पो की वृष्टि होती है वैसे आसमान से तारिकाओ की वृष्टि होने लगी, प्रलय होगा ऐसा भास हुआ।

लडाई होगी, ऐसा महाभयंकर प्रसग उपस्थित हुआ। मुझे बडा आनद हुआ कि अब कुछ तो सुनने को मिलेगा। लेकिन आगे पढा तो बडी निराशा हुई। अर्जुन बेचारा ठडा पड गया। दूसरे अध्याय मे प्रवेश किया तो भगवान उसको डाट रहे है! वह डांट भी ऐसी जोरदार कि वह पढ कर भी उत्साह आया, लगा कि अब लडाई शुरू होगी। लेकिन उसके बाद ऐसे गहरे तत्त्वज्ञान मे प्रवेश हुआ कि मैने पढना ही खतम कर दिया। वह मेरा गीता से प्रथम परिचय, जिससे मुझे यह भास हुआ कि गीता मे लडाई नहीं है।

फिर हायस्कूल मे मराठी साहित्य का अध्ययन शुरू हुआ। उस समय मैं ज्ञानेश्वरी तक पहुच गया और ज्ञानेश्वरी पूरी पढ ली। साहित्य के ख्याल से पढी, लेकिन एक अमिट छाप चित्त पर बैठ गयी कि उसको कभी आगे पढूगा, जब समझने की शक्ति आयेगी।

ज्ञानेश्वरमहाराज ने गीता के लिए आदर पैदा किया और गीता के अध्ययन की आवश्यकता लोकमान्य तिलक के गीतारहस्य ने पैदा की। शायद 1912 की बात होगी। मैंने सुना लोकमान्य ने जेल मे गीता-रहस्य लिखा है। मैं सस्कृत जानता नही था। परतु गीता-रहस्य समझने के लिए गीता को समझना जरूरी था, तो गीता का अध्ययन शुरू किया।

लोकमान्य की गीता-रहस्य मैंने 32 घटे मे पढ ली। एक घटे मे 25 पृष्ठ। शनिवार की शाम को ग्रंथालय से ले आया और सोमवार की सुबह लौटा दी।

गीता-रहस्य के अध्ययन के बाद इच्छा हुई कि और कुछ ढूढना चाहिए, सोचना चाहिए। इसलिए लोकमान्य ने जो विचार पेश किये थे, उनमे से कुछ जचे, कुछ नही जचे। तो दो तरह से खोज चली। एक तो जीवन के स्वरूप का चिंतन और दूसरा गीता के

पहले और बाद जो विचार हुआ है, उसका परिचय। बाद का तो आसान था। गीता पर जो भी टीकाएं लिखी गयी थीं, वे पढनी थीं। गीता के पहले के प्रवाह का अध्ययन कठिन काम था। लेकिन बहुत बडी बलवान प्रेरणा थी, तो किया मैंने। आखिर मामला वेदों तक जा कर अटका। बहुत गूढ भाषा थी, पुराने शब्द थे। जिस वक्त शब्द बन ही रहे थे, उस वक्त की भाषा! यानी शब्द के मूल अर्थ मे जा कर ढूंढने की जरूरत थी। तो काफी समय उसमे गया। लेकिन उस परिश्रम का लाभ हुआ। और इस सारे अध्ययन के परिणामस्वरूप गीता पर निष्ठा दृढ हो गयी। फिर समझने के लिए और गीता के साथ तुलना के लिए धर्मों का चिंतन कर्मयोगी जीवन मे जितना हो सका उतना किया। तो एक अद्भुत दृश्य देखा।

रामायण-भागवत

हमारे परिवार मे हम बिलकुल बचपन से रामायण सुनते आये हैं। जिस दिन रामायण की कथा न सुनी हो ऐसे बहुत थोडे दिन होंगे। उसे पढने और सुनने मे मुझे कभी यह खयाल भी नही आया कि उसमे कुछ ऐतिहासिक घटना का जिक्र है। रावण नाम का कोई आदमी था, यह भास मुझे कभी नही हुआ। दुनिया के किसी भी ऐतिहासिक ग्रंथ मे मैने दस सिरवाले मनुष्य का वर्णन नही पढा। इसलिए जिस पुस्तक मे दस सिरवाले मनुष्य का जिक्र हो, वह इतिहास का ग्रंथ नही हो सकता, यह समझना बहुत जरूरी है। कुंभकर्ण नाम का द्रविड आदमी था, ऐसा भी कभी खयाल नही आया। इसलिए मैने बचपन मे यही समझा और हमे समझाया

गया कि वह राक्षस और देवों का युद्ध है। देव-असुर का यह युद्ध हमारे हृदय के अंदर चल रहा है। रावण रजोगुण है, कुंभकर्ण तमोगुण और विभीषण सत्त्वगुण, इस तरह वे रूपक हैं।

* *

भागवत ने जिसके मन को पकड न लिया हो, जिसके चित्त को रिझाया न हो, रमाया न हो, शात न किया हो, ऐसा कौन भक्त इस अखिल भारत मे होगा ? केरल, कश्मीर, कामरूप इस त्रिकोण मे जो आया, वह भागवत से छूट नही सका। जहा से कोई भी छूट नहीं सका, वहां से मै भी कैसे छूट सकता था ? गीता के तुलनात्मक अध्ययन के निमित्त ही क्यों न हो, भागवत मुझे देखनी पडी। भागवत के एकादश स्कध का अध्ययन तो एकनाथमहाराज ने मुझसे अनेक बार करवा लिया है। मुझे मानना पडेगा कि गीतारूपी दूध मे भागवत ने मधु की मिठास डाली।

सर्वधर्म-समभाव

मैने 1949 मे पहली दफा कुर्आनशरीफ पूरी तरह से पढी। ऐसे उसके पहले अग्रेजी तर्जुमा पढा। पिकथाल पढा था। युसुफअली का भाष्य पढा। फिर भूदान यात्रा मे कश्मीर मे प्रवेश किया तब अहमदियावालों का शाया किया हुआ तर्जुमा देखा। अंग्रेजी तर्जुमा पढने के बाद मैने अरबी पढना शुरू किया था। एक-एक लफ्ज पढू और याद न रहे, आख को तकलीफ भी हो, इसलिए मै पूरा नागरी मे लिख लेता था, तो फिर वह याद भी हो जाता। उर्दू से मुझे अरबी ज्यादा आसान लगती है। जुम्मे के दिन रेडियो पर बीस मिनट कुर्आन चलती थी। जेल मे मै रोज वह सुनता था। उस

पर से मैने तलफ्फुज (उच्चारण) पकड लिये। 1949 से ले कर कुर्आन पढता ही आया हू।

* *

हाइस्कूल मे पढता था तब बाइबिल – न्यू टेस्टामेट हाथ में आयी और पढ डाली। बाद मे धर्मों के अध्ययन के सिलसिले मे न्यू टेस्टामेट के जितने अनुवाद उपलब्ध हो सके, उतने पढ लिये। भूदानयात्रा मे पश्चिम बगाल मे (1955) कुछ ईसाई भाई-बहन मुझे मिलने आये और उन्होने बाइबिल की एक प्रत भेट की। उसी दिन से बाइबिल का अध्ययन फिर से शुरू हुआ और वह जारी रहा। फिर मैं गया केरल। वहा भिन्न-भिन्न चर्चों के बिशप मिलने आये। उन्होंने मेरी बाइबिल की प्रत, जिस पर मेरी निशानिया, टिप्पणियां आदि थी, देखी और अपनी खुशी व्यक्त की। उन्होंने अपने रिवाज के अनुसार प्रार्थना की और भूदान-कार्य के लिए सहानुभूति प्रकट करते हुए आशीर्वाद दिये। आगे (1959 मे) 1300 फुट पीरपजाल लाघ कर हम कश्मीर घाटी मे पहुचे। रास्ते मे एक ईसाई मिशन था। वहां एक 85 साल की वृद्धा हमसे मिलने खडी थी। वह मेरा स्वागत करना चाहती थी। मैंने पूछा, आपके पास 'स्कोफील्ड रेफरन्स बाइबिल' है? वह तुरत अदर गयी और अपनी प्रत ला कर मुझे भेट दे दी। इस प्रकार विविध प्रकार की प्रतिया अध्ययन के लिए सहज उपलब्ध होती गयी। मैने उनका गहराई से अध्ययन किया।

* *

धम्मपद का मराठी गद्य अनुवाद बचपन मे ही मेरे पढने मे आया था। कई वर्षो के बाद मूल पाली का थोडा अध्ययन कर लिया। उन दिनों मेरा मन गीता में रमा हुआ था। पर धम्मपद

के कुछ वचनों का इतना असर रहा कि अपने लेखन (मुख्यतया 'स्थितप्रज्ञ-दर्शन' और 'उपनिषदों का अध्ययन') मे वेदांत और बौद्धदर्शन के अंतिम ध्येयो की एकरूपता दिखाने की कोशिश मैंने की। इधर नामदेव, कबीर आदि संतों की सिखावन, उधर उपनिषद और गीता की सिखावन, दोनो के बीच धम्मपद मुझे जोडनेवाली कडी-सा मालूम हुआ। और उस दृष्टि से अधिक सूक्ष्म अध्ययन किया।

* *

ग्रंथसाहब की नागरी लिपि मे मुद्रित प्रत मुझे पहली बार शिरोमणि गुरुद्वारा सभा की कृपा से मिली। शुरू से आखिर तक मैं उस ग्रंथ को देख गया। उसके बाद महीनों सिक्खो की उपासना का अध्ययन और अनुभव प्राप्त करने के लिए रोज सुबह की प्रार्थना में जपुजी का पाठ करता रहा। मुझे नामदेव के भजनों का संग्रह करना था। नामदेव के प्राय. सभी भजन मराठी मे है, पर कुछ भजन हिंदुस्तानी मे भी हैं। उन्हे देखने और उनमें से चुनाव करने की दृष्टि से मैं पुनः एकबार ग्रंथसाहब को देख गया। इस तरह नानक के साथ मेरा हृदय का परिचय हो गया।

संत-संग

हिंदी मे मुख्यतया तुलसीदासजी और नानक, इनका ही अध्ययन मैंने किया है। उसमे भी सांगोपांग तुलसीदास का, थोडा-सा नानक का और बाकी चीजे जो सहज देखने को मिली वह देख ली। कबीर का एक बहुत प्रसिद्ध ग्रंथ है बीजक। वह मैंने पढा था 1918 मे। क्या समझा होगा मैं उस जमाने मे मालूम

नही। 23 साल की उम्र थी। लेकिन मेरे पर असर हुआ कि जो विचार ज्ञानेश्वरमहाराज ने अनुभवामृत मे, जिसे अमृतानुभव भी कहते हैं, बताये हैं, उन विचारो के समान ही कबीर के विचार है। खास कर के जिसे निर्गुणिया और सहजिया कहते हैं, इन दो पथो को मिल कर के कबीर का वह विचार बना है, ऐसा मुझे भास हुआ।

* *

तुलसीदासजी की विनय-पत्रिका देखने का मौका मुझे पहली बार साबरमती आश्रम मे मिला। पडित खरेशास्त्री उन दिनो प्रार्थना मे आश्रमवासियो को सतवाणी सिखाया करते थे। विनय-पत्रिका के भजनों का उसमे समावेश था। उस निमित्त मे विनय-पत्रिका के तीन पारायण चितन-मननपूर्वक मैंने किये। यह सन् 1918 से 21 का जमाना था। फिर तो सात-आठ साल वह शीतागार मे यानी मेरे हृदय मे पडी रही। कुछ वर्षों बाद बालकोबा ने वर्धा आश्रम मे विद्यार्थियों को सगीत सिखाना शुरू किया। विनयपत्रिका के कुछ नये भजन सिखाये। तो दुबारा मैंने विनय-पत्रिका देखना शुरू किया। करीब तीन साल मै उसमे तन्मय था। कितने पारायण उस समय हुए, इसका हिसाब नही। बहुत सारा मेरे कठ मे बैठ गया। फिर सोलह साल वैसे ही शीतागार मे पडी रही। फिर, बापू के निर्वाण के बाद जब मे शरणार्थियो को बसाने के काम के लिए गया तब अपने साथ मैंने एक ही पुस्तक रखी थी – विनय-पत्रिका। उसके कुछ अर्थघन भजन मैंने महादेवी को सिखाये, जो मेरे साथ यात्रा मे थी। सन् 1948 से 51 तक उसका चितन-मनन चला। तेरह साल के बाद मध्य प्रदेश की पदयात्रा मे एक गाव की पाठशाला के छोटे बच्चों ने विनय-पत्रिका की एक प्रति मुझे भेंट दी और मेरा अध्ययन पुन शुरू हुआ।

* * *

उस समय मेरी उम्र पंद्रह के आसपास होगी। निर्णयसागर के द्वारा मुद्रित एकनाथ के भागवत की सुदर पुस्तक उन्ही दिनों प्रकाशित हुई थी। वह मेरे हाथ मे आयी। पुस्तक का आकार देख कर मै सहम तो गया फिर भी, समझ मे आ रहा है या नही, इसकी परवाह किये बिना आखिर भागवत पूरी पढ तो ली ही। रोज एक अध्याय पढने का क्रम रखा था। याद नही, कौनसा अग्रेजी महीना था, पर इतना याद है कि एकतीस दिन का महीना था और महीनेभर मे पुस्तक पुरी हुई थी। लिखनेवाले ने कमर तोड कर लिखा तो पढनेवाला क्यो हार खाये, ऐसी वीरवृत्ति से पूरा पढ लिया। इतना बडा ग्रथ, पहले ही वाचन मे, उस उम्र में कितना समझ मे आनेवाला था! लेकिन एकनाथ की पुण्याई और उनकी पुनरुक्ति का बल इतना मजबूत कि कुछ छाप पडी ही।

इतना ग्रथ-सागर पार करने का आश्चर्य और कर्तव्य पूरा करने का समाधान पल्ले मे ले कर ग्रथ बद कर के रख दिया, तो सालो तक खोला ही नही। फिर गीता के साथ तुलना के लिए भागवत का एकादशस्कध देखने की आवश्यकता पडी, तब एकनाथी भागवत दुबारा पढी। इस समय पूरा समाधान मिला। अपार आनद प्राप्त हुआ। हर पन्ने मे अनुभव भरा हुआ है। बाद मे मालूम हुआ कि एकादशस्कध पर इतनी योग्यता का विवरण हिंदुस्तान की दूसरी किसी भाषा मे नही है। उसके बाद, मेरी आदत के अनुसार एकनाथी भागवत उलटी-सीधी कई बार देख ली।

दरमियान मैंने एकनाथमहाराज का चरित्र पढ लिया था। उसने मेरे चित्त को घेर लिया। विशेषत, मैं था क्रोधी और नाथ उससे ठीक उलटे शाति-जलधि! इसलिए वह चरित्र मेरे लिए कल्याणकारी भेषज ही ठहरा। भागवत के परिशीलन से नाथ के चरित्र का

रहस्य मुझे खुल गया। जैसे-जैसे चिंतन करता गया, वैसे-वैसे वह चरित्र मेरी दृष्टि मे अधिकाधिक ऊचा होता गया। मुझे लगता है आधुनिक काल मे इस विषय मे और अन्य बहुत सी बातो मे भी महात्मा गाधी का नाथ के साथ साम्य है।

* *

समर्थ रामदासस्वामी के ग्रथ मैंने बचपन मे ही पढे। मैं उनके पीछे पागल ही था। वे मानो मेरे आदर्शमूर्ति ही थे। उनके सीधे-सरल लेखन के कारण आध्यात्मिक साहित्य मे मेरा प्रवेश सहजता से और स्वाभाविकता से हो गया। वहां से पीछे जाते-जाते ज्ञानदेवमहाराज तक और फिर सस्कृत वेदो तक का दर्शन सहज प्रवाह-क्रम मे होता गया। रामदास का स्मरण होते ही 'आई, थोर तुझे उपकार' (हे मा, महान तेरे उपकार), इतना ही एक उद्गार स्फुरित होता है।

रामदास के ग्रथ मैंने बालमन से पढे, इसलिए उनमे से मुझे छोटा-सा अर्थ ही उपलब्ध हुआ, लेकिन जो हुआ उसकी मेरे चित्त पर गहरी छाप पडी, जो आज भी कायम है। भक्ति, वैराग्य, प्रयत्नवाद, विवेक इत्यादि अनेक बाते उनके उपदेश मे आती है। परतु मुख्य वस्तु मेरे चित्त मे पैठ गयी वह है उनका समूह का लोभ।

लोक-हृदय-प्रवेश के लिए

भूदान-यात्रा मे लोक-हृदय-प्रवेश के निमित्त उस-उस प्रात मे उस-उस भाषा के साहित्य का अध्ययन मुझ पर लादा गया। मतलब यह कि प्रेम के कारण ही मैने उसे अपने पर लाद लिया।

मै विश्व-साहित्य का विद्यार्थी हू। साहित्य और साहित्यिको के लिए मेरे मन मे आदर है और वह असाधारण है। मराठी भाषा का मैंने बारीकी से अध्ययन किया और उसी प्रवाह में सस्कृत का

अध्ययन किया आत्मा के समाधान के लिए। लेकिन उस समय भी मुझे निरुक्ति और व्युत्पत्ति में बहुत रुचि थी। शब्द कैसे बने, उनकी कुलपरंपरा क्या है, यह देखने का शौक था। विचारों का अनुसंधान करते हुए शब्दों की भी परंपरा देखनी पड़ती है। उसके लिए भी अनेक भाषाओं का अध्ययन जरूरी था। लेकिन मुख्यतया जनता के हृदय से संपर्क साधने के हेतु से हिंदुस्तान की सभी भाषाओं का अध्ययन मैंने किया।

जिस प्रांत में गया वहां के आध्यात्मिक साहित्य का अध्ययन पूरा किया और असम से ले कर केरल तक सभी भाषाओं के आध्यात्मिक साहित्य का काफी हिस्सा कंठ किया – पद्य की भाषा में ही बोलना हो तो, मेरा खयाल है, कम से कम 50,000 पद्य कंठस्थ होंगे। अलावा इसके, प्राचीन अरबी, फारसी, अर्धमागधी, पाली भाषाओं का भी अध्ययन किया है। यात्रा में ही चीनी भाषा का अध्ययन किया। एक दफा एक जपानी भाई तीन महीने यात्रा में रहे थे। उनके पास रोज एक घंटा जपानी सीखता था। फिर एक जर्मन लड़की आयी थी, उसकी मदद से जर्मन सीख ली। यात्रा में एक विदेशी भाई की मदद से मैंने 'एस्परेंटो' भी सीख ली थी। यह सब सीखने में शब्दों से संपर्क बनता है। और शब्दों की शक्ति का मुझे पूरा भान है। शब्द प्रकट होने के लिए शब्द को एक बाजू कर अंदर के तत्त्व का ग्रहण होना चाहिए। ऐसा ग्रहण शब्द को पचाये बगैर, मनन कर के उसका अनुभव लिये बगैर हो नहीं सकता, ऐसी मेरी श्रद्धा है।

वैद्यक शास्त्र

वैद्यकशास्त्रों के ग्रंथों का भी मैंने अध्ययन किया है। पहला ग्रंथ मैंने 1923 में पढ़ा। झंडा सत्याग्रह के समय में जेल में गया। उस

समय कर्नाटक के वैद्य भी जेल मे थे। उनके साथ मैंने वाग्भट पढा। ग्रथ संस्कृत मे है तो अच्छी तरह समझ सका। फिर आगे चरक पढने के लिए लिया। उसकी भाषा सुदर है। छोटे-छोटे वाक्य हैं। इतने प्राचीन काल में भी सूक्ष्म दृष्टि दिखायी दी। तीसरा ग्रथ जो मैंने पढा, उसका नाम है शार्ड्गधर। वह पतञ्जलि का ही है या और किसी का, कह नही सकते, यद्यपि वह पतञ्जलि के नाम पर है।

अर्थशास्त्र

कार्ल मार्क्स का प्रचड ग्रंथ 'कैपिटल' जो कम्यूनिस्टों की मूल सहिता है, मैंने पूरा का पूरा पढ डाला। 1940 के व्यक्तिगत सत्याग्रह के समय जेल मे एक कम्यूनिस्ट मित्र मुझसे बोले, मालूम होता है, आपने आज तक कम्यूनिस्ट साहित्य नही पढा। वह पढने जैसा है। मैंने कहा, जब मैं कातता रहता हू, उस वक्त आप ही मुझे पढ कर सुनाइए। तब उन्होने उनकी दृष्टि से चुना हुआ साहित्य मुझे पढ कर सुनाया। उससे पहले मार्क्स की 'कैपिटल' मैंने बाहर फुरसत से पढ ली थी। इसलिए उन्होने पढ कर जो सुनाया, उसे समझने मे मुझे कोई दिक्कत नही हुई। रोज घंटा-डेढ घटा श्रवण होता था। कुछ महीने यह क्रम जारी रहा। उनका पढ कर सुनाया हुआ साहित्य चुना हुआ था, फिर भी उसकी पुनरुक्तियो की मेरे मन पर जबरदस्त छाप पडी। तब अगर हमारे तरुणो के मन इस पुनरुक्ति दोष से उकताये नही, उलटे मत्रमुग्ध हो गये, तो इसमे अचरज की कोई बात नही।

इसके अलावा टालस्टाय, रस्किन आदि का साहित्य भी मैंने पढा।

हमारे जैसे मुक्त विहार करनेवालों को दुनिया मे बाधनेवाली कोई चीज नही है। लेकिन वे भी प्रेम से बधे रहते हैं। उन्हे यह उत्सुकता रहती है कि जो लोकहितकारी ज्ञान-सग्रह किया है उसे लोगो को दे कर ही मरे। जैसे-जैसे वृद्धावस्था आती है, मृत्यु का भान सामने होने लगता है वैसे ही वैसे यह इच्छा और भी बढ जाती है कि यह सारा एक दफा समाज को दे दें और फिर अपने असली घर जाये, जहाँ जाने की बहुत ही आस लगी हुई है। सचमुच उसके स्मरणमात्र से हमे उत्साह होता है कि एक समय आयेगा, जब हम इस शरीर को फेक कर प्रभु के पलने मे बैठ जाये। लेकिन इतनी इच्छा रह गयी कि वह सचित – जो ज्ञान या अज्ञान कुछ भी हो, पर जिसका हमने ज्ञान समझ कर ही संग्रह किया है समाज को दे कर ही छूटे।

अभिधेय परम साम्य समन्वयेन

मेरे चितन का तरीका समन्वय का है। अत मै मैं साम्य की आशा रखता हू। हमे जरूरत है समन्वय पद्धति से सोचने की और

उसके नतीजे में, अंत मे साम्य की। इसलिए गीता को मैंने, उसमे जो शब्द आया है उसी के आधार से साम्ययोग नाम दिया। अभिधेयं परम साम्यम्। प्राप्तव्य वस्तु साम्ययोग है और समन्वय पद्धति है। मेरे तत्त्वज्ञान की चर्चा मे भी यही दृष्टि रही है कि हम समन्वय पद्धति से साम्ययोग तक पहुचे। मेरा जो दार्शनिक साहित्य है, उसमे भी साम्ययोग फलित है और समन्वय पद्धति है।

सन् 1923 मे 'महाराष्ट्र धर्म' मासिक पत्रिका मे 'उपनिषदो का अध्ययन' शीर्षक से चार लेख मैंने लिखे थे। उसी की आगे पुस्तक बनी। मेरी दृष्टि से उपनिषद एक प्रातिभ दर्शन है। मेरे जीवन मे गीता ने मा का स्थान लिया है। वह तो उसी का है। परतु मैं यह जानता हू कि उपनिषद मेरी मा कि मा है। उस श्रद्धा से उपनिषद का मनन-निदिध्यासन सतत वर्षों तक मेरा चला। उसी का एक बिंदु इस पुस्तक मे है। वह मेरा प्रथम लेखन है। अत्यत जटिल ग्रंथ है, फिर भी गहरा है। आज भी उसमे खास फरक करने की जरूरत मुझे महसूस नही होती। आज वह लिखी जाती तो इतनी जटिल नही लिखी जाती, लेकिन मेरे विचार मे कोई फरक नही हुआ है। बुद्ध भगवान का उपनिषद के अध्ययन के साथ वास्तव मे कोई ताल्लुक नही है। लेकिन उस पुस्तक की समाप्ति धम्मपद के एक वचन से की है।

उसी तरह 'स्थितप्रज्ञ-दर्शन' मे भी बौद्धों और वेदों के समन्वय का विचार रखा है। सन् 1944 के जाडो मे सिवनी जेल मे कुछ लोगों के सामने गीता के स्थितप्रज्ञ-लक्षण पर मेरे व्याख्यान हुए। उसी की यह पुस्तक बनी। तीस वर्षों के निदिध्यास से जो अर्थ स्थिर हुआ, उसका विवरण उसमे है।

तो सन् 1923 से 1944 तक एक विचार मेरा हुआ, जिसमे बौद्धो का हमे सतत स्मरण रहा। और सन् 1923 से 1960 तक

सतत यह विचार मन मे रहा कि वेदात और बौद्ध दर्शन का समन्वय होना चाहिए। बौद्ध दर्शन और वेदात मे मेरा मतलब है, हिंदुस्तान मे जितने भी दर्शन साधना के विषय मे परमेश्वर को अलग रख कर सोचते हैं वे सब एक ओर और परमेश्वर की मदद अनिवार्य मान कर जो दूसरे दर्शन बने है वे दूसरी ओर। एक आत्मा पर निर्भर है, दूसरा परमेश्वर की कृपा का आवाहन करनेवाला है। दोनों दर्शनों का समन्वय होना चाहिए। तभी समाधान होगा तत्त्वज्ञान का और तभी समाधान होगा जीवन-विचार का। इसलिए जितने ग्रथ हमने लिखे हैं, उनमे वाद-समाप्ति है। 'गीता-प्रवचन' देखिए, उसमे वाद मिलेगा नही। उसमे तात्त्विक विचारों का आधार छोडे बगैर, लेकिन किसी वाद मे न पडते हुए, रोज के कामो की बातों का ही जिक्र किया गया है।

'साम्यसूत्र' मेरा लगभग आखिरी ग्रथ है। गीता का साम्ययोग-परक विवरण गीता-प्रवचन मे लौकिक शैली मे प्रस्तुत किया गया है। बहुत दिनों से सोचता था कि उसे सस्कृत सूत्रो के रूप मे गूथा जा सके तो गूथू। उडीसा मे, कोरापुट जिले के घने जगल मे भूदान-यात्रा महीनो तक चली। उस समय इन सूत्रों को गूथने (रचने) की प्रवृत्ति हुई। गीता-प्रवचन मे ऐसे ही सूत्र मराठी मे दिये गये हैं। परतु ये सस्कृत सूत्र अधिक व्यापक अर्थ का समावेश करनेवाले है। मुझे ये चितन मे उपयोगी पडते हैं। बीच-बीच मे चितन मे उनका एक सरीखा मथन चलता रहता है। वेद-उपनिषद आदि के सूचक शब्दो से वे उपस्कृत हैं। उसमे हमने एक सूत्र लिखा है – शुकजनकयो: एक: पंथा: – शुक और जनक का मार्ग एक है। इन्ही दो व्यक्तित्व को ले कर गीता-रहस्य मे झगडा पेश किया गया है। सन्यासमार्ग से कर्मयोग श्रेष्ठ, ऐसा बताया है।

वास्तव में शुक और जनक का रास्ता एक ही है। शुक-जनक की एकता जब हम ध्यान में लेंगे तभी गीता का रहस्य हमारे हाथ में आयेगा। तो साम्यसूत्र में भी मेरी दृष्टि समन्वय की ही रही है।

प्रार्थना-रस के हेतु

मैंने कुछ किताबें तो प्रार्थना को रसमय करने के हेतु से भी लिखी हैं। स्वराज्य के आंदोलन में सारे हिंदुस्तान में हजारों सत्याग्रही स्त्री-पुरुष रोज सायंप्रार्थना में भक्तिपूर्वक स्थितप्रज्ञ के लक्षण गाते थे। आज भी कई जगह इनका समावेश प्रार्थना में किया जाता है। हम भी रोज शाम को स्थितप्रज्ञ के श्लोक प्रार्थना में बोलते हैं। उन श्लोकों पर मैंने स्वतंत्र भाष्य लिखा है— 'स्थितप्रज्ञ-दर्शन'।

सुबह प्रार्थना में हम ईशावास्य उपनिषद का पाठ करते हैं। उस पर मैंने 'ईशावास्य वृत्ति' लिखी है। वह पुस्तक बापू की आज्ञा पर लिखी गयी है।

जब मैं सासून अस्पताल में गांधीजी से मिलने गया तब उन्होंने ऐसी इच्छा प्रकट की थी कि ईशावास्य पर मैं कुछ लिखूं। और मैंने उसे मंजूर भी कर लिया था। लेकिन तीव्र कर्मयोग के उस जमाने में उतना फुरसत निकलना संभव नहीं था। आगे त्रावणकोर की हरिजन-यात्रा के बाद गांधीजी ने मुझे आज्ञा ही दी कि अपने मन को संतोष देनेलायक जब तुम लिख सकोगे तब लिखना, पर अभी मेरे उपयोग के लायक कम से कम एक छोटी-सी टिप्पणी तो लिख ही दो। उसके मुताबिक मैंने एक छोटी-सी टिप्पणी लिख कर उनको दी। वह टिप्पणी प्रकाशन के लिए नहीं थी। लेकिन मैं जेल

मे था तब बाहर के मित्रों ने उसको प्रकाशित कर डाला और उसकी एक प्रति अचानक जेल मे आ पहुची। तब मै सचेत हो गया और दो महीने उसी विषय का चितन कर के एक छोटा-सा भाष्य, जिसको मै 'वृत्ति' नाम दे रहा हूं, लिख लिया। पूर्वाचार्यों ने जो विवरण किया है, उससे इसमे बहुत जगह भिन्नता दिखायी देनेवाली है, लेकिन उसमे विरोध जैसा कुछ नही है। वचन को अर्थ का भार नही होता। और विचार उत्तरोत्तर आगे वढा तो पूर्वाचार्यों के परिश्रम की उसमे सार्थकता ही है। भिन्न अगर कुछ भी कहने का न हो तो फिर लिखने की आवश्यकता ही क्या है? ईशावास्य उपनिषद मे साधक की समग्र साधना थोडे मे आ गयी है, इसलिए प्रातःस्मरण के लिए वह बहुत उपयोगी है।

अक्षरराशि वेद

हमने हमारी पदयात्रा सामवेद के गायन के साथ चलायी।

वसंत इन्नु रन्त्यो, ग्रीष्म इन्नु रन्त्यो
वर्षाण्युनु शरदो हेमंतः शिशिर इन्नु रन्त्यः
वसंत रमणीय है, ग्रीष्म रमणीय है
वर्षा-शरद-हेमत शिशिर रमणीय है

यात्रा मे यह गान बहुत चला। फिर जब आसमान से बहुत बारिश चलती थी तब चलता था — स नो वृष्टिं दिवस्परि . . ऐसा वेद का आनद लेते-लेते हमारी यात्रा चली।

हिंदुस्तान के साहित्य में सबसे मुख्य असर मुझ पर रहा वेद-वेदात-गीता का (वेदात यानी उपनिषद)। यद्यपि एक ही ग्रंथ बताना हो तो मै निःसंशय गीता को चुनूगा। मैंने वेदों का अध्ययन

भी सालों तक किया है। मेरी मां की मृत्यु 1918 में हुई। जिस दिन मां की मृत्यु हुई उसी दिन से मैंने वेद पढना प्रारंभ किया। व्यावहारिक ज्ञान के लिए अनेक ग्रंथ पढने पडते हैं। लेकिन आध्यात्मिक लाभ के लिए एक ग्रंथ बस होता है। एक ग्रंथ, जिससे हमको पोषण मिलता है, बार-बार पढ कर कस लेना चाहिए। वेद का मेरा अध्ययन 1918 से 1969 तक चला। केवल देखने-पढने से तो नहीं होता। चीज पुरानी है, तो उसके एक-एक शब्द के पीछे जाना पडा। पचास साल अध्ययन हुआ। चार-साढे चार हजार मंत्र तो कंठस्थ हो गये। उन्हीं में से 1319 मंत्र चुन लिये, जिनकी 'ऋग्वेद-सार' पुस्तक बनी। 50 साल के अध्ययन का यह परिणाम है।

वेद के विषय में कहा गया है कि वेद अक्षरराशि है। शब्दराशि भी नहीं। उसका आप पदच्छेद करते हैं तो वह आपका भाष्य होगा। जिसने पदच्छेद किया उसने भाष्य किया। भाष्य प्रमाण नहीं, अक्षर प्रमाण है। तर्जुमा तो बिलकुल ही काम का नहीं। 'अग्नि' का अंग्रेजी में क्या तर्जुमा करेंगे? अग्नि यानी 'फायर' और वह्नि यानी 'फायर'। लेकिन वेद का जो पहला मंत्र है, अग्निमीळे पुरोहितम्, वहां अग्नि की जगह वह्नि नहीं चलेगा। इसलिए तर्जुमा कैसे करेंगे? तर्जुमा तो कर ही नहीं सकते, और जितना भाष्य है वह वेद नहीं, पदच्छेद भी वेद नहीं संहिता यानी अक्षर वेद है। मैं व्याख्या करूंगा तो वह मेरा वेद होगा, मैं पदच्छेद करूंगा तो वह मेरा वेद होगा। इसलिए मैंने इतना ही किया कि जितने मंत्र मुझे कंठस्थ थे, उनमें से थोडे-से ले कर इकट्ठा प्रकाशित किये। ऋग्वेद में 10, 558 मंत्र हैं। मैंने उसका अष्टमांश (1319) किया — अष्टमांश काढा। इतना प्रकाशित कर दिया ताकि पठन के लिए आसान हो।

आचार्यों की सेवा में

शांकर विचार का सबसे बड़ा आकर्षण मुझे यही रहा कि साधना की कल्पना के बारे में शांकर विचार में कहीं भी संकुचितता नजर नहीं आती। किसी भी साधना का बोझ शंकराचार्य नहीं होने देते। साधना छुटकारे के लिए है, अटके रहने के लिए नहीं।

शंकराचार्य का बहुत बड़ा ऋण मेरे सिर पर है। देहभावना से मुक्त होना – यही इस ऋण को चुकाने का उपाय है। वह प्रक्रिया मेरी सतत चालू है और ईश्वरकृपा से वह पूर्ण होगी, ऐसा विश्वास है। बीच में सबको ही प्रसाद बांट देना, यह भी ऋणमुक्ति का उपाय हो सकता है। तदर्थ एक प्रयत्न 'गुरुबोध'* (शंकराचार्य के पद्य, स्तोत्र आदि का चयन) के चुनाव का किया। केरल की भूदानयात्रा में, कालडी ग्राम में, जो शंकराचार्य का जन्मस्थान है, 'गुरुबोध' का प्रकाशन हुआ; यानी आचार्य के चरणों में समर्पण ही हुआ।

* *

मैंने मनु-स्मृति का भी चयन किया। शंकराचार्य के उपदेशों का जो सार है उसे मैंने गुरुबोध नाम दिया। इसका नाम मनुबोध नहीं 'मनु-शासनम्' रखा। दोनों में फर्क है। शंकराचार्य का विचार 'शासन' का नहीं, 'बोध' देने का है। उसमें आप और बोध देनेवाला, दोनों मुक्त हैं। अगर आपको बोध पसंद आया तो उस पर अमल करें, न आया तो छोड़ दें। मनु का वाक्य 'शासन' है यानी आज्ञा है। मनु-स्मृति में पिता के, पुत्र के, भाई के, राजा के, सबके धर्म बताये हैं। वाल्मीकि रामायण में है कि

---

* 'गुरुबोध' का भी चयन कर 'गुरुबोध-सार' प्रकाशित किया गया। – सं

कार्याकार्य का जहा सवाल आता है, वहां रामचंद्र कहते हैं कि अगर मैं इस प्रकार से बरतूगा तो मनु क्या कहेगा ? यानी वे मानते थे कि मनु की आज्ञा के अनुसार बरतना चाहिए । भगवान श्रीकृष्ण ने भी गीता मे कहा कि हे अर्जुन, जो ज्ञान तुझे दे रहा हू वह आरभ मे मैंने सूर्य को दिया था और सूर्य ने मनु को दिया और बाद मे वह प्रचलित हुआ । गीता के अनुसार मानवसमाज मे पहला कर्मयोगी मनु है। हम सब उसकी प्रजा हैं । मानव यानी मनु की प्रजा। इस चयन को, 'शासन' नाम क्यों दिया, इस सिलसिले मे यह बात।

मनु ने जो कुछ कहा है, वह औषध है। मनुर् वै यत्किञ्चित् अवदत् तद् भेषजम्। कडुआ लगे तो भी हितकारक है। लेकिन मनु के और आज के जमाने मे फर्क पडा है। मनु ने जो ग्रथ लिखा है वह समाज-शास्त्र का है। इसलिए मनु के वाक्य आज वैसे के वैसे नही चलेगे, बल्कि कुछ तो विरुद्ध भी पडेगे । इसलिए उसका चुनाव बहुत विवेक से करना होगा। जैसे, मनु की आज्ञा का असर मेरे चित्त पर भी था और बचपन मे मनु की आज्ञा के अनुसार ही मैंने जूता पहनना छोड दिया था बडोदा की कडी धूप मे जूता न पहनने से आखे बिगड गयी । सम्भव है, मनु के जमाने मे विद्यार्थी आश्रम मे रहते होंगे तो जूते की जरूरत नही पडती होगी । तो वह वाक्य मैंने मेरे चयन मे नही लिया । इस प्रकार विवेक से चुनाव करना पडता है।

मेरा और मनु का श्रद्धा का सबध है। इस श्रद्धा को मैं बहुत महत्त्व देता हू । यह ठीक है कि स्वतत्र बुद्धि चाहिए, विवेक चाहिए। लेकिन विवेक के लिए भी आधार चाहिए। मुझे इसका पश्चात्ताप नही कि मनुमहाराज की आज्ञानुसार बरतने से मेरी आखों को

तकलीफ हुई। बल्कि उसमें जो भावना थी वह दृढ हुई। इसलिए उपकार ही हुआ।

इन दिनो मनु पर बहुतों का गुस्सा है। वह वाजिब भी है। क्योंकि मनुस्मृति में कई परस्परविरोधी विचार पडे हैं। मै नही मानता कि वे सब मनु के है। उसमे बाद मे अनेक प्रकार के क्षेपक जरूर हुए हैं। जिन वचनो पर गुस्सा है, वे विषमता के वचन हटाने पर भी मनु का कुछ बिगडता नही। क्योंकि मनु को विषमता नही, व्यवस्था चाहिए।

मुक्ति मे यह बताया कि जो मनुष्य भगवान् के पास पहुचता है, महाज्ञानी होता है, जिसको ब्रह्म का ज्ञान होता है, सः सर्वसमता एत्य – वह सबके साथ समता प्राप्त कर लेता है। तो जो व्यवस्था की, उसमे यद्यपि विषमता का प्रवेश हुआ, जो नही होना चाहिए था और उससे देश का नुकसान हुआ, मनु का उद्देश्य समता की ओर ले जाने का था। वह अश मैंने हटा दिया है। ऐसा अश रखा है, जो मनु के मूल उपदेश के लिए अनिवार्य था।

दिलों को जोडने के लिए

साइन्स ने दुनिया छोटी बनायी और वह सब मानवो को नजदीक लाना चाहती है। ऐसी हालत मे मानवसमाज फिर्कों मे बटा रहे, हर जमाअत अपने को ऊचा समझे और दूसरों को नीचा समझे, यह कैसे चलेगा? हमे एक-दूसरों को ठीक से समझना होगा।

मेरी 'कुर्आन-सार' (कुर्आन शरीफ का चयन) पुस्तक उस दिशा मे एक छोटा-सा प्रयत्न है। इसी उद्देश्य से धम्मपद की

पुनरंचना मैंने की। और गीता के बारे मे मेरे विचार गीता-प्रवचनो के जरिये लोगों के सामने पेश किये। 'खिस्तधर्म-सार' (न्यू टेस्टामेट का चयन) के प्रकाशन के पीछे भी यही प्रेरणा काम कर रही थी। वरसों से भूदान के निमित्त मेरी पदयात्रा चली, जिसका एकमात्र उद्देश्य दिलो को जोडने का रहा। बल्कि मेरी जिंदगी के कुल काम दिलो को जोडने के एक मात्र उद्देश्य से प्रेरित हैं।

भूदान-यात्रा के सिलसिले मे मैं लखनऊ पहुचा था। बुद्ध-जयती का दिन था। उस दिन सहज ही वाणी से वाक्य निकल पडा था, 'भूदान यज्ञ के रूप मे वही धर्मचक्र-प्रवर्तन का कार्य किया जा रहा है, जिसको गौतमबुद्ध ने चलाया था'। उस वाक्य मे उस दिन एक शक्ति-सचार मैंने अपने मे महसूस किया। यात्रा आगे चली। हम सारनाथ पहुचे। वहा के बौद्ध भिक्षुओ ने बहुत प्रेमपूर्वक धम्मपद की पुस्तक मुझे भेट दी। मानो मेरे दावे पर मुहर लग गयी। फिर पाच दिन बाद बिहार की यात्रा शुरू हुई। सवा दो साल की वह यात्रा धम्मपद के प्रकाश मे चली।

धम्मपद का परिचय तो बचपन मे ही हुआ था। सूक्ष्म अध्ययन भी किया। तो धम्मपद के वचनो का एक व्यवस्थित क्रम मेरे मन मे स्थिर हुआ। आज की धम्मपद की रचना कुछ पकीर्ण या सुभाषित-सग्रह जैसी है और उसमे उसका समन्वित दर्शन छिप-सा गया है। बहुत दिनो से मेरा विचार था कि धम्मपद का जो क्रम मेरे मन मे बैठ गया है, उसे लोगो के सामने रखू। यह एक साहस ही था। लेकिन नम्रतापूर्वक वह साहस मैंने किया। और 'धम्मपद नवसहिता' पुस्तक के रूप मे वह प्रकाशित किया।

* *

मेरे जीवन में मुझे अनेक समाधान प्राप्त हुए हैं। उसमें आखिरी, अंतिम समाधान, जो शायद सर्वोत्तम समाधान है, वह है 'समणसुत्तं'।

मैंने कई दफा जैनों से प्रार्थना की थी कि जैसे वैदिक धर्म का सार गीता मे, सात-सौ श्लोकों मे मिल गया है, बौद्धों का धम्मपद में मिल गया है, जिसके कारण ढाई हजार साल के बाद भी बुद्ध का धर्म लोगों को मालूम होता है, वैसे जैनों का होना चाहिए। यह जैनों के लिए मुश्किल बात थी। इसलिए कि उनके अनेक पंथ हैं और ग्रंथ भी अनेक है। जैसे बाइबिल है या कुरान है – कितना भी बडा हो एक ही ग्रथ है – वैसा जैनों का नही है। जैनों मे श्वेतांबर, दिगंबर दो हैं, उसके अलावा तेरापंथी और स्थानकवासी। ये चार मुख्य पथ मैंने बताये, लेकिन और भी पथ हैं। और ग्रंथ तो बीस-पचीस हैं। मै बार-बार उनसे कहता रहा कि आप सब लोग, मुनिजन इकट्ठा हो कर चर्चा करे और जैनो का एक उत्तम, सर्वोत्तम धर्म-सार पेश करे।

आखिर वर्णीजी को बाबा की बात जंच गयी। वे अध्ययनशील हैं। बहुत मेहनत कर के जैन परिभाषा का एक कोश भी उन्होने लिखा है। तो उन्होंने जैनधर्म-सार की एक किताब प्रकाशित की। उसकी हजार प्रतियां निकाली गयी और जैन समाज के तथा जैन समाज के बाहर के भी विद्वानों के पास भेजी गयी। विद्वानों के सुझावों पर कुछ गाथाएं हटाना, कुछ जोडना यह सारा कर के, वह भी प्रकाशित की 'जिणधम्मं' नाम से। फिर मेरे आग्रह पर चर्चा करने के लिए एक संगीति बनी। उसमें मुनि, आचार्य और दूसरे विद्वान श्रावक मिल कर लगभग तीन-सौ लोग इकट्ठा हुए। बार-बार चर्चाएं हुई। फिर उसका नाम भी बदला, रूप भी बदला, आखिर सर्वानुमति से। 'श्रमण-सूक्तम्' जिसे अर्धमागधी मे

'समणसुत्त' कहते हैं, बना । एक बहुत बड़ा कार्य हुआ, जो हजार-पंद्रह-सौ साल में हुआ नहीं था । उसका निमित्तमात्र बाबा बना, लेकिन बाबा को पूरा विश्वास है कि यह भगवान महावीर की कृपा है ।

* *

उड़ीसा की भूदान-यात्रा में भक्तशिरोमणि जगन्नाथदास द्वारा रचित भागवत का अध्ययन करने का अवसर मिला । अध्ययन के लिए उनके एकादशस्कंध को चुन लिया । यात्रा के बीच घंटा-आध घंटा रुक कर किसी खेत में एकांत जगह में बैठ कर सब यात्री मिल कर सहअध्ययन किया करते । तुलना के लिए मैं मूल संस्कृत और एकनाथ का हरिरंग में रंगा विवरण (भागवत-श्रीधर-टीकासहित) देख लिया करता था । उस अध्ययन में से 'भागवत-धर्म-सार' हाथ आया ।

* *

हमारी कश्मीर-यात्रा के आरंभ में कुछ दिन जपुजी का सामूहिक अध्ययन किया जाता था । उस समय जपुजी पर जो व्याख्यान मैंने दिये, उनका संग्रह करनेवाली पुस्तक 'जपुजी' चार साल बाद प्रकाशित की गयी ।

जपुजी केवल सिक्खों के लिए नहीं है । कुल दुनिया के लिए है उस दृष्टि से उसका भाष्य किया है । गुरु नानक को किसी एक संप्रदाय में बांध लेना ठीक नहीं है । वे तो इधर गंगा-जमुना के किनारे से ले कर उधर भुवनेश्वर-जगन्नाथपुरी तक घूमे हैं । उन्होंने कहा – किव सचिआरा होईऐ किव कूड़ै तुटै पालि । हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि । हम सच्चे कैसे बनेंगे और झूठ का परदा कैसे टूटेगा, यही मुख्य समस्या है । हम सच्चे बनेंगे तभी ध्यान का, चिंतन का उपयोग होगा । भगवान ने हमारे लिए जो लिख रखा है, उसके अनुसार उसके हुकम के मुताबिक, उसकी

सम्मति पर, उसके आदेश पर चलना, नानक कहते हैं, यही सच्चा बनने का रास्ता है।

उनकी कुल साधना 'निरभउ निरवैरु' इन दो शब्दों में बता सकते हैं। मानव के सामने आज जो समस्याएं पेश हैं, उनका हल इन दो शब्दों में रहा है। इसके साथ मैं हमारे काम के लिए और एक शब्द जोड देता हूं, 'निष्पक्ष'। यह भी जपुजी मे सूचित है, मंनै मगु न चलै पंथु – मनन से मनुष्य पंथो के रास्ते पर नही चलेगा।

शांति-सेना के अध्ययन के लिए इसमें अच्छी सामग्री मिलेगी, इस ख्याल से पुस्तक प्रकाशित करने की मैंने इजाजत दे दी।

संत-प्रसाद

हमारी पदयात्रा का मुख्य उत्पादन है भूदान-ग्रामदान। परंतु उसके साथ-साथ उसमे दूसरे अनेक गौण उत्पादन होते रहे। भूदान-यात्रा मे मेरा जो थोडा-बहुत अध्ययन चला, उसका स्वरूप संग्रह का नही, दान का था। असम के महापुरुष श्रीमाधवदेव के नामघोषा का चयन वैसा ही एक गौण उत्पादन है। पदयात्रा के लिहाज से तो गौण है, लेकिन लोकोपयोग के ख्याल से गौण नही। भारत के हृदय को जोडने का काम उससे अपेक्षित है।

असमीया के आध्यात्मिक साहित्य का मेरा जो बहुत ही थोडा अध्ययन हुआ है, उसमे नामघोषा ने मुझे विशेष आकर्षित किया। असमीया साहित्य मे तो शायद नामघोषा अद्वितीय ही है। भारतीय भाषाओं मे भी उसका अपना एक स्थान रहेगा। भगवन्नामस्मरण को मुख्य केंद्र बना कर उसके इर्दगिर्द अनेक जीवनमूल्यों को माधवदेव ने सूचक ढंग से ग्रथित किया है। उस

पुस्तक को मैंने अनेक वार पढा । उसके कई वचन मेरे कठ मे वैठ गये । उसकी सगति मे मुझे मित्र सगति का आनद मिला । उसका मैंने अपने लिए एक सक्षेप('नामघोषा-सार') कर लिया, जो सब साधको के उपयोग के लिए प्रकाशित करने का सोचा गया ।

भूदान-यज्ञ के बारह वर्ष के तप के वाद हम आये रायपुर सम्मेलन मे। वीच मे दो-तीन साल सर्वोदय सम्मेलन मे मैं उपस्थित नही रह सका था । रायपुर मे सुलभ ग्रामदान, ग्रामाभिमुख खादी और शाति-सेना की त्रिमूर्ति-उपासना का सम्मेलन ने निर्णय किया, तो मुझे याद आया वचन विनय-पत्रिका का – वदौ राम-लखन-वैदेही जे तुलसी के परम सनेही । और उसी धुन मे मैं मस्ती मे चला आ रहा था सेवाग्राम के लिए, जहा मुझे इजहार करना था खादी की नयी योजना का । रास्ते मे दरचुरा नामक छोटे-से गाव (म प्र) मे ता 26-1-64 के पुण्य दिन प्राथमिक शाला के विद्यार्थियो ने मुझे विनय-पत्रिका भेट दी, जिस पर लिखा था – "विनोबाजी को सप्रेम समर्पित ।" अव मेरे आनद का पार नही रहा । शाला के विद्यार्थी इन दिनों कुछ असयत और अश्रद्धालु-से हो गये हैं । ऐसी हालत मे उनकी तरफ से विनय-पत्रिका की मेरे लिए भेंट मुझे अपूर्व प्रसाद मालूम हुआ । तब पुनः तीसरी वार उसका अध्ययन शुरू किया । दस महीने उस प्रेम सुधा-सागर मे मैं निमग्न रहा । परिणामस्वरूप मुझे प्रेरणा हुई कि विनय-पत्रिका का एक सक्षिप्त सस्करण सहयोगियो के लिए प्रकाशित करू । इस सचयन को मैंने नाम दे रखा है – 'विनयाजलि' ।

* *

मानसिक सशोधन के काम मे तुकाराम ने मेरी बहुत मदद की

है। मेरी मा के मधुर कंठ से मैंने तुकाराम के अभंग सुने है। उस स्मरण से आज भी मेरी आखे गीली हो जाती है। तुकाराम के मेरी रुचि के सौ-एक अभंग चुन कर किंचित् विवरण के साथ पाठकों को देने की एक योजना मेरे मन मे थी। महाराष्ट्रधर्म साप्ताहिक में इस प्रकार एक-एक अभंग दिया गया। परतु वह योजना पूर्ण हुई नही। जो प्रकाशित हुआ उसकी पुस्तक बनी 'संतांचा प्रसाद'। बाद मे तुकाराम के भजनों का मेरा किया हुआ चयन भी प्रकाशित किया गया ('तुकारामाची भजनें')।

* *

एकनाथमहाराज की भागवत मैंने पढ ली थी। फिर उनके व्यक्तिगत अनुभवों को खोजने के उद्देश्य से मै उनके अभगो की तरफ मुडा। उनकी 'गाथा' देख ली। धर्म और तत्त्वज्ञान का जो कुछ वाचन मैंने किया है, वह सारा मेरे अपने चिंतन की मदद के लिए, केवल आत्मसमाधान के लिए किया है। एकनाथमहाराज की गाथा के अनुभव-रत्नों का चयन भी मैं मेरे अपने उपयोग के लिए धीरे-धीरे वर्षों करता आया। उसका एक सग्रह 1940 मे, मैं जेल मे था तब प्रथम बार प्रकाशित किया गया। फिर दूसरे सस्करण के समय मैं पुन बारीकी से उसे देख गया। कुछ अभंग निकाल दिये और उनकी जगह दूसरे अभंग लिये। सकलन मे भी किंचित् फरक किया। अब चयन और संकलन, दोनों मेरे मन पसद उतरे है।

कभी-कभी चयन करने के पीछे हेतु यह होता है कि उससे पाठकों मे रुचि पैदा हो और मूल सपूर्ण कृति देखने की उन्हे प्रेरणा हो। मेरा उद्देश्य ठीक उलटा है। मेरा उद्देश्य यह है कि इस चुनाव को आत्मसात् करने पर साधक का काम पूरा हो जाये,

उसे मूल विशाल विस्तार में संचार करने की जरूरत न रहे, जो मेहनत हमको करनी पडी वह उसको न करना पडे। इसलिए चुनाव होने पर भी, वह सांगोपांग है। निःसंदेह इस चुनाव से एकनाथमहाराज को समाधान होगा।

* *

नामदेवमहाराज महाराष्ट्र के महान प्रचारक! उन्होंने 'विठ्ठल' नाम हिंदुस्तानभर में प्रसिद्ध किया। उन्होंने पंजाबी भाषा में भी पद्यरचना कर रखी है, जिसका कुछ भाग सिक्खों के 'ग्रंथसाहब' में समाविष्ट है। नामदेव 'शतकोटि' उर्फ शीघ्र कवि थे इसलिए उनके अभंगों की प्रमाणभूत गाथा ही उपलब्ध नहीं है। इसलिए नामदेवमहाराज के अभंगों का चयन करने में बहुत ही परिश्रम करना पड़ा है। फिर मैं जेल में था तब मालूम हुआ कि जिस गाथा से यह चुनाव किया था, वह गाथा ही खो गयी है। तो संपूर्ण चुनाव पुनः नये सिरे से करना पडा। बाद में वह खोयी हुई पुस्तक मिल गयी, तो दोनों चुनावों का मिलान कर देखने का लाभ मिला। इतनी सारी मेहनत का फलित है उनके भजनों के चयन का अमृत मधुर संग्रह। निष्काम हरिप्रेम से ओतप्रोत यह वाणी साधकों की चित्तशुद्धि का साधन बन सकती है।

* *

समर्थ रामदास ने बहुत कुछ लिख रखा है, परंतु उनके दासबोध और 'मनाचे श्लोक,' ये दो शिरोमणि ग्रंथ हैं। 'मनाचे श्लोक' तो मुझे कंठस्थ ही है। दासबोध के मेरे असंख्य पारायण हुए। अनेक पारायणों के बाद दासबोध का जो सार मेरे हाथ में आया उतना बोधबिंदु नाम से मेरे अपने लिए चुन कर रख दिया है। मनाचे श्लोक रामदास की अपौरुषेय वाणी है। उनकी अभंगों की गाथा

को मैं बार-बार याद करता रहा हूं। उसका एक सहज संग्रह मेरी स्मृति में संगृहीत हो गया। इस सबको 'रामदासांची भजनें' नाम से पुस्तकरूप में प्रकाशित किया गया।

* *

'ज्ञानदेव के भजन' और उसकी चिंतनिका में मैंने जितना चिंतनांश उंडेला है उतना गीताई तथा गीताई-कोश छोड कर अन्य किसी भी ग्रंथ में नहीं उंडेला है। ज्ञानदेव के अभंगों का उससे अच्छा चयन मैं कर नहीं सकूंगा और उस चिंतनिका में ऐसी मधुरता है कि वह कभी बासी हो ही नहीं सकती।*

हर भजन की चिंतनिका एक ही तरह की नहीं है। कहीं सविस्तर भाष्य है, कहीं संक्षिप्त सार, कहीं सरल अनुवाद तो कहीं स्वैर संचार। चिंतन करनेवाले को जिस भाव का स्फुरण हुआ वह उसने पेश किया। हर कोई अपनी जीवनशुद्धि को ध्यान में रख कर स्वतंत्र अर्थ करे यही इच्छा। चिंतनिका केवल दिशा सुझानेवाली है।

साधना के क्रम के विषय में मेरी जो दृष्टि है उसी के अनुसार यह रचना है। ज्ञानदेवमहाराज को वह कहां तक पसंद आयेगी, यह बात तो इस पर निर्भर है कि मैं उनसे कितना एकरूप हुआ हूं! परंतु मुझे उसकी फिक्र नहीं है। मैं इतना जानता हूं कि ज्ञानदेव से मैं जितना एकरूप हुआ हूं उतना अन्य किसी से नहीं हुआ।

---

*स्व. दामोदरदास मूंदडा ने, जो इसके लेखनिक थे, कहा है – 'लिखवाते-लिखवाते विनोबा भावसमाधि में ऐसे लीन हो जाते कि उन्हें इस दुनिया का कुछ भान ही न रहता। कितनी ही देर तक सतत अश्रुधाराएं बहती रहती।' – सं.

वाचा-ऋण के कारण

चिंतन मे से प्रयोग और प्रयोग मे से चिंतन, ऐसी मेरे जीवन की रचना हो गयी है। इसी को मैं निदिध्यास कहता हू। निदिध्यास मे से विचार स्फुरित होते रहते हैं। साधारणतया उनको लिख रखने की मेरी वृत्ति नही होती। परतु मन की एक विशिष्ट अवस्था मे ऐसी वृत्ति उदित हुई थी। सबके सब विचार लिख नही रखता था, कुछ थोडा लिखता था। उसी की 'विचार-पोथी' बनी। सुदैव से यह प्रेरणा ज्यादा दिन टिकी नही। थोडे ही दिन मे समाप्त हुई।

विचार-पोथी छापने की कल्पना नही थी। तथापि जिज्ञासुओ ने उसकी प्रतिलिपि करना शुरू कर दिया। इस प्रकार बारह वर्षों मे करीब 150 प्रतिलिपिया बनी होगी। लेकिन साप्रत काल मे अशुद्ध लेखन और खराब अक्षर के प्रचार के कारण और सभी प्रतियो को मूल प्रति का आधार न होने के कारण प्रतियो मे अपपाठ आते गये। परिणामत कुछ वचन अर्थहीन बन गये। इसलिए उन्हे छापना पडा।

ये विचार सुभाषित के जैसे नही है। सुभाषित को आकार होता है। ये लगभग निराकार है। वे सूत्र के स्वरूप के भी नही है। सूत्र को तर्कबद्धता चाहिए। ये मुक्त है। फिर इनको क्या नाम दे? मैं इनको 'अर्धबट पुटपुटणे' (अस्फुट आवाज मे बोलना) कहता हू। इन विचारो को पूर्वश्रुतियो का आलबन तो है, तथापि वे अपनी ओर से निरालब ही हैं। ज्ञानदेव की परिभाषा का उपयोग करना क्षम्य माना जाये तो यह एक वाचा-ऋण चुकाने का प्रयत्न है।

सर्वोत्तम सेवा

मेरी मा ने कहा था, "विन्या, तू ही क्यों नही कर देता गीता का सरल मराठी पद्यानुवाद? तू यह कर सकता है।" मा की इस श्रद्धा ने मुझसे 'गीताई' लिखवायी। गीता संस्कृत मे होने के कारण उसका चिंतन-मनन-निदिध्यसन करना हमारी जनता के लिए संभव नही होता, इसलिए गीता को मराठी मे लाने की बहुत दिन से इच्छा थी। उसके लिए आवश्यक मानसिक योग और अन्य अनुकूलता 1930 में मिल सकी। गीताई लिखते समय निम्न बातो का ख्याल रखा गया –

1 गीता का सर्वयोग समन्वयकारी साम्ययोगपर अर्थ अच्छी तरह स्पष्ट हो।

2 पूर्वसूरियों के, विशेषतः शंकर, ज्ञानदेव के विशेष अर्थों को बाधा न आये।

3 अनुवाद जैसा न लगे।

4 अर्थगाभीर्य कायम रखते हुए अधिक से अधिक सुलभ हो।

5 भाषा को निश्चित व्याकरण हो।

6 "मैं" कही भी न हो।

गीतार्थ निश्चित करते समय गीता के पाचवे अध्याय ने मेरे कई वर्ष ले लिये। मै उस अध्याय को गीता की कुंजी मानता हू। और उसकी कुंजी है चौथे अध्याय का 18 वा श्लोक – 'कर्म मे अकर्म और अकर्म मे कर्म।' उसका जो अर्थ मुझे खुल गया, उसकी छाया गीता-प्रवचन पर फैली है।

तारीख 7 अक्तूबर 1930 को प्रात -प्रार्थना के बाद पाच बजे गीताई लेखन का प्रारम्भ पाचवे अध्याय से हुआ –

स्वरामाजी स्वर पचम । की वर्णामाजी वर्ण पचम
तैसा गीतेमाजी अध्याय पंचम । आदरणीय साधकजना

– स्वरो मे स्वर पचम । वर्णो मे वर्ण पचम
वैसे गीता मे अध्याय पचम । आदरणीय साधकजनो को –

इसकी समाप्ति 6 फरवरी 1931 को हुई ।

मेरी दृष्टि से इतनी फिक्र करने के बाद भी प्रत्यक्ष प्रयोग के बिना मेरा सतोष नही हो रहा था । इसलिए आश्रम की छोटी लडकियो के एक क्लास को गीताई सिखाने का प्रयोग किया । जहा-जहा उनको कठिन गया, वहा बदल किया । फिर मित्रो के सुझाव मागे । उन पर भी विचार किया । और धुलिया जेल मे (1932 मे) उसकी अतिम प्रत तैयार की गयी । 'गीताई' का पहला सस्करण मेरे धुलिया-जेल मे रहते प्रकाशित हुआ ।

उसी समय, उसी जेल मे 'गीता-प्रवचन' का जन्म हुआ । साने गुरुजी के मगल हाथो वह लिपिबद्ध हुआ । और ईश्वर की योजना के अनुसार अब गीता प्रवचन सारे भारत मे अनेक भाषाओ मे अनूदित हो कर जनता की सेवा कर रहे हैं ।

गीता-प्रवचन ने कुल गीता-सार सरल भाषा मे लोगो की पहुच मे ला दिया । परतु श्लोकश अर्थ करने के लिए और मदद की जरूरत बनी रही । फिर गीताई-शब्दार्थ-कोश की माग होने लगी । परतु मैं उधर ध्यान नही दे रहा था । क्योकि फुरसत मिलनेवाली नही थी । अलावा, कोश के लिए पाठ का अतिम निर्णय कर लेना भी जरूरी था । उस दिशा मे मेरा चितन-मनन चल ही रहा था । गीताई के एक-एक सस्करण मे पाठ संशोधन होता गया है । आगे

व्यक्तिगत सत्याग्रह और भारतनिर्मुक्ति आंदोलन मे (जेल मे) पूरे पाच वर्ष अच्छा एकात मिला। दरमियान कुछ महीने मौन लिया भी था। उस समय पाठ-सशोधन का काम पूरा हो सका।

बाहर आने के बाद मेरा छोटा भाई शिवाजी और मैं, दोनों ने मिल कर (1945-46 में) सात महीने इस काम के लिए दिये। इस प्रकार कोश की समग्र रचना पूरी हो गयी। परतु मेरी चिरकारिक वृत्ति के कारण मैंने कोश वैसा ही पडे रहने दिया। लोग जल्दी कर रहे थे, परतु कुछ वर्ष ऐसे ही जाने देना मुझे जरूरी लग रहा था। काल के कारण नया-नया आकलन होता रहता है। इसलिए बाफ को नीचे बैठ जाने देना चाहिए। कुछ समय के बाद दोनों ने मिल कर पुन. सपूर्ण कोश की दूसरी परिक्रमा की। इस समय पाच माह लगे।

गीताई-रचना की अतिम बात से सर्वथा उलटी स्थिति कोश-रचना मे है। गीताई मे "मै" न हो, इसका ख्याल रखा गया है, तो कोश मे पूरा मै ही हू। अर्थात् गीता के चिंतन की मेरी पद्धति इस कोश मे प्रतिबिंबित हुई है। यह तो मै कभी न कहूगा कि सबको इसी पद्धति से चिंतन करना चाहिए। क्योंकि मैं खुद भी इसी तरीके से चिंतन करने के लिए बधा हुआ नही हूं। कल मैं भिन्न चिंतन भी कर सकता हू। गीताई शब्द मे अब मुझे कोई बदल नही करना है। परंतु यह अर्थचिंतन है। इसलिए यह चिंतन तो उत्तरोत्तर मेरा भी बदलता जा सकता है। चार साल पूर्व लिखा हुआ कोश पुनः सशोधन करने पर वह नया ही तैयार हो गया। कही तो समाप्ति-रेखा देनी होती है, इसलिए उस समय वह रेखा खीच दी, और प्रकाशन के लिए इजाजत दे दी।

मैने देखा कि अभ्यासियो को उसकी मदद मिलती है। फिर भी साधारण पाठको के पास कोश का उपयोग कर अर्थशोधन करने

की शक्ति और फुरसत भी नही रहती। इसलिए यह कल्पना उद्भूत हुई कि श्लोक का विवरण उसी श्लोक के नीचे देना ठीक रहेगा। वैसी योजना 'गीताई-चिंतनिका' मे कर दी गयी।

कोश के प्राय सभी मुख्य विवरण उसमे लिये गये हैं। कई नये विवरण भी जोडे गये। सिवा इसके, गीता के कतिपय श्लोकों पर ज्यो-ज्यो टिप्पणिया सूझी, त्यो-त्यो मैने एक कापी मे लिख रखी थी। उनका आवश्यक अश भी इसमे जोड दिया गया। इस तरह कहा जा सकता है कि आज तक का गीताविषयक मेरा चिंतन 'गीताई चिंतनिका' मे प्रतिबिंबित है।

गीता-प्रवचन, स्थितप्रज्ञ-दर्शन और गीताई-चिंतनिका मिल कर गीता का साम्ययोगपरक अर्थ, जैसा मै समझा हू, प्रस्तुत होता है। मेरा विश्वास है कि मेरे द्वारा हुई अन्य सेवा दुनिया भूल जायेगी, लेकिन गीताई तथा गीता-प्रवचन को नहीं भूलेगी और मेरी यह कृति दुनिया की सेवा करती रहेगी। क्योकि गीताई लिखते समय और वे प्रवचन करते समय मै केवल समाधिस्थ था।

विन्या की कृति-शून्यता

मैने जो कुछ लिखा था लिखता हू वह मेरा नही है। मै तो अपने स्वामी का मजदूर हू। बडो के पास से वह मुझे मिला है। और उसे मैं वितरित करता हू। कवि ने कहा है, 'तेरे महान उदार सारस्वत के महासागर का यदि मैं मीन हो जाऊ तब भी मेरे मन की तृष्णा कभी शात नही होगी। मुझे जो ऐसा विचारधन प्राप्त हुआ है, उसे मैं थोडा-बहुत बाट रहा हू। मैं एक 'रिटेल डीलर' (फुटकर व्यापारी) हू। बडे-बडे व्यापारियो से माल लेता हू और उसे बाटता हू।

वाणी सत-कृपा की। विन्या की कृति-शून्यता

जीवन की प्रयोगशालाएं

सतत तेरह साल भारत की पदयात्रा हुई। उसके बाद चार-साढे चार साल मोटर से यात्रा की। भारत के सब प्रदेशो मे यात्रा हुई। लगभग सब जिलों मे भी। ऐसी स्थिति मे कुछ शाश्वत कार्य आगे चलता रहे, इस दृष्टि से छ आश्रमो की स्थापना मैंने की। और यह कहने मे मुझे खुशी होती है कि उन आश्रमो ने अच्छा लोकोपयोगी काम किया है।

आश्रमो को मैने 'लेबोरेटरी के प्रयोग' कहा है। प्रयोगशाला बाजार मे नही, एकांत स्थान मे खोला जाती है। लेकिन वहां जो प्रयोग होते हैं, उनके लिए जो सामग्री एकत्र की जाती है, वह सब सामाजिक होती है। प्रयोग तो 'कंडिशंड' (आबद्ध) परिस्थिति मे किये जाते हैं, पर उनसे निकलनेवाले परिणाम पूरे समाज को लागू होते हैं।

बीच के जमाने में आश्रमो का सारा काम रुक गया। फलत. संस्कृति का ह्रास हुआ। सारे आश्रम समाप्त हो गये। शकर, रामानुज के कारण कुछ मठ रह गये। उन्होने थोडी जागृति रखी। लेकिन सामाजिक प्रयोग करनेवाले आश्रम नही रहे। उसका आरंभ इस जमाने मे रवीद्रनाथ, स्वामी श्रद्धानद, श्रीअरविंद आदि ने किया। लेकिन जनता के साथ सबध जोड कर उसका साक्षात् प्रयोग गाधीजी ने ही किया। उन्होने एक योजना समाज के सामने स्पष्ट रखते हुए कहा कि आश्रम मे हमे विश्व-हित से

अविरोधी सेवा करनी है और उस सेवा के लिए हम एकादश-व्रतों का पालन करेंगे।

आज हम यह सेवा आगे चला सकते हैं। आश्रमों की अभिव्यक्ति मे कुछ अतर आ सकता है, लेकिन आशय मे नही। आश्रमो की स्थापना करने के सदर्भ मे मैंने कहा था कि आश्रम और आरोहण (भूदान-आदोलन) एक ही कार्यक्रम की दो योजनाए हैं। जैसे कि विज्ञान मे होता है। प्रथम शुद्ध विज्ञान (प्योअर साइन्स) की खोज होती है और उसके बाद वह समाज पर लागू किया जाता है। उससे व्यावहारिक विज्ञान (अप्लाईड साइन्स) विकसित होता है। यानी व्यावहारिक विज्ञान को आधार के लिए शुद्ध विज्ञान की और शुद्ध विज्ञान को उसके विनियोग और प्रचार के लिए व्यावहारिक विज्ञान की आवश्यकता होती है। दोनो एक-दूसरे के पूरक है। हमारी आश्रम-योजना हमारे सामाजिक कार्य का पूरक अग है। वहा जो चितन चलेगा, उससे बाहर के कामो को स्फूर्ति मिलेगी। उनका स्वरूप स्फूर्ति-स्थान का होगा। और बाहर का कार्य उस स्फूर्ति की दिशा मे चलेगा। बाहर चलनेवाला कार्य आश्रमो के लिए कीर्ति-स्थान है। विचार की कीर्ति आचार मे परिणत हो, जैसे कि शुद्ध विज्ञान की कीर्ति व्यवहार मे उपयुक्त होती है।

हमारे आश्रम जहा-जहां बनें, वहा उन आश्रमो को 'पावर-हाऊस' (शक्ति-केद्र) का काम करना होगा। वहा से 'पावर' आसपास फैले – ऐसा समाज बने, जो अहिसा से सामना कर रहा है, प्रेम से एक हो रहा है, अपने पाव पर खडा है – स्वावलबी है, सहयोगी है, उत्तम शिक्षा वहा चल रही है – आध्यात्मिक और वैज्ञानिक, घर-घर को पूरा उद्योग मिल रहा

है, कर्ज का सवाल नहीं है, गांव का परिवार बना है, गांव में रामकथा और ग्रामकथा चल रही है, इस तरह का आयोजन उस 'पावर-हाऊस' से होना चाहिए। इस 'पावर हाऊस' की सत्ता 20-25 मील तक चली तो उसके बाद दूसरा 'पावर-हाऊस' बने। इस तरह पूरा क्षेत्र व्याप्त कर लेना चाहिए। यह मेरी आश्रम की कल्पना है, अपेक्षा है। हमारा मुख्य काम है सारे जनसमाज को अहिंसक बनाना। अहिंसक, शक्तिशाली, आत्मनिर्भर, आत्मविश्वासी, निर्भय, निर्वैर। परंतु ऐसा 'पावर-हाऊस' कहां बनेगा? जहां वे खुद 'पावर' महसूस करते हों।

मैंने जगह-जगह आश्रम खड़े किये – हिंदुस्तान के तीन कोने में तीन आश्रम बने और बीच में भी तीन आश्रम बने। यदि उनमें प्राण हों, तो सारे हिंदुस्तान को व्याप्त करने के वे पर्याप्त साधन हैं। शंकराचार्य ने हिंदुस्तान के चार कोने में चार आश्रम ऐसे जमाने में स्थापित किये थे, जबकि उनका एक-दूसरे से संपर्क असंभव था। ऐसे दूर-दूर आश्रमों की स्थापना कर के उन्होंने वहां चार मनुष्यों को इस महती श्रद्धा से बिठाया कि ये दीपक का काम करेंगे। उन आश्रमों ने वैसा काम किया भी। अब बारह-सौ वर्ष बाद कालगति से उनकी प्रभा कुछ मंद पड़ी है, तो ऐसा होता ही है। लेकिन कुल मिला कर उन्होंने भारत की बहुत सेवा की। इन दिनों आवागमन के साधन हैं, इसलिए छ आश्रम बनाये हैं तो कोई बड़ी बात नहीं। इन आश्रमों का अधिष्ठान परमेश्वर की भक्ति न हो, तो ये आश्रम कुछ भी काम कर न सकेंगे।

ये जो छः आश्रम बने, उन सबका उद्देश्य अलग-अलग है।

* *

समन्वय आश्रम, बोधगया

समन्वय आश्रम (स्थापना 18 अप्रैल 1954) के लिए मैंने बोधगया का क्षेत्र चुना, इसमे एक दृष्टि है। भारतीय संस्कृति और जीवन का विकास समन्वय पद्धति से हुआ है। ब्रह्मविद्या का आधार और जीवमात्र के लिए अहिंसा का विचार, ये दो बाते उसकी बुनियाद मे है। समन्वय आश्रम से यही अपेक्षा है कि यहा दर्शनों का अध्ययन हो और प्रत्यक्ष जीवन के प्रयोग हो।

आश्रम के लिए जमीन मिली वहा के शाकर मठ से और उस स्थान के ठीक सामने ही बुद्ध-मदिर है। शात और एकात स्थान है। तो मुझे लगा कि यह समन्वय का अच्छा स्थान बन सकता है। बोधगया मे अनेक देशों के बुद्ध-मदिर है – चीन, जपान, तिब्बत, श्रीलका आदि, तो उनसे सपर्क बन सकता है। मैंने आश्रम के लिए यह कार्यक्रम ही दे दिया कि बोधगया मे जो यात्री या भिक्षु आते हैं, उनसे सपर्क करे, उनके अनुभव सुने, अपने अनुभव सुनाये, भारतीय ढग से उनका आतिथ्य करे तथा अतर्राष्ट्रीय सबध बढाये। इस प्रकार का काम वहा हुआ भी है। मैंने यह भी कहा कि हर बुद्ध-पूर्णिमा को वहा यात्रा का आयोजन हो।

दूसरी बात मैंने कही, हमारी सस्कृति की एक कमी है। वह आधुनिक भारतीय सस्कृति की कमी है, प्राचीन सस्कृति की नही। हम लोगों मे यद्यपि व्यक्तिगत स्वच्छता का कुछ भान है, सामूहिक स्वच्छता का भान कम है। इसलिए हम चाहते हैं कि बोधगया का क्षेत्र अत्यंत स्वच्छ और निर्मल रहे। अगर यह काम ठीक हुआ तो बाहर से जो लोग आयेंगे, उनको वहां पर स्वच्छता

का दर्शन होगा। हमसे उनकी कुछ सेवा होगी और हमारी दृष्टि साक्षात् उनके अनुभव मे आयेगी। शरीर-परिश्रम के समान स्वच्छता को भी हमे नित्य-यज्ञ मानना चाहिए।

बोधगया में विदेशों के लोग भी आते रहते हैं, तो उनके साथ विचारों का आदान-प्रदान हो, सत्सग हो और उसके साथ कुछ आतिथ्य भी हो, जिसमें हम विचारों के साथ सेवा भी जोड सके।

फिर मेरी यह भी अपेक्षा है आश्रम से कि बिहार मे जो कार्यकर्ता हैं भूदान में लगे हुए, उनके लिए बोधगया एक विराम-स्थान बने। वहा आ कर उन्हे कुछ विरति प्राप्त हो, मन को कुछ शाति मिले।

वहा पर जो स्थायी साधक रहेंगे, उनके लिए मैंने बताया था कि उनका जीवन किसी तरह से अतिरेकी नही, वल्कि समत्वयुक्त हो। परतु वे अपना जीवन शरीर-परिश्रम पर आधारित रखें। दान मे जो पैसा मिलेगा, उसका उपयोग साधकों की जीवन-यात्रा के लिए न हो। उनकी जीवन-यात्रा उत्पादक परिश्रम से ही चले। और अगर दान लेना ही हो, तो वह भी परिश्रम का ही लिया जाये। वहां पर जो मकान आदि बनाने होंगे, उसके लिए मै उत्पादक परिश्रम के ही दान का आग्रह नही रखता, क्योंकि मै जानता हू कि हम आदर्श परिस्थिति मे काम नही कर रहे हैं।

फिर आसपास के क्षेत्र की सेवा से तो हम बच ही नही सकते हैं। हम अपना क्षेत्र वहुत बडा न मानें, छोटा ही माने। दीपक छोटा हो तो भी उसकी परिमित कक्षा से अधकार मिट जाता है। दीपक छोटा हो या वडा उससे यह अपेक्षा की जाती है कि उसके इर्दगिर्द अधकार न रहे। वैसे ही आसपास के लोगों की सेवा हमे गुण-विकास के खयाल से करनी चाहिए।

जब 1937 मे मैं पवनार पहुचा और वहा अपना कार्य शुरू किया तब वहा मुझे भगवत्-प्रसाद की (भरत-राम-भेंट मूर्ति की) प्राप्ति हुई थी। समन्वय आश्रम को भी ऐसा आशीर्वाद मिला है। जब वहा आश्रम शुरू हो गया और पानी के इतजाम के लिए कुआ खोदना प्रारभ हुआ, तब वहा जमीन मे से एक सुदर बुद्धमूर्ति मिली। उसकी वहा स्थापना की गयी। मुझे अत्यत सतोष हुआ कि इस काम के लिए भगवान का आशीर्वाद प्राप्त हुआ।

* *

ब्रह्मविद्या-मदिर, पवनार

भूदान-आदोलन के बीच मानसिक सशोधन करने का बहुत मौका मिला। उसमे मुझे बार बार लगता रहा कि शकर और रामानुज एक परपरा छोड गये, जिनका अध्ययन और अनुसरण आज हिंदुस्तान मे हजार हजार वर्षों के बाद भी चल रहा है। तब से आज तक के सब विचारों का अध्ययन करने का मौका मुझे मिला और मैंने अपनी पूर्वपरपरा के उत्तम फलस्वरूप एक परिपूर्ण जीवन-दर्शन गाधीजी के विचारो मे पाया।

मेरे मन मे बार-बार आता रहा कि इतना सागोपाग और मूल्यवान विचार हमे मिला है, तो उसकी ज्ञान-परपरा चलनी चाहिए। तो इस विचार का ज्ञान-बीज गहरा कैसे जाये, इस पर मैं सोचता रहा। शकर, रामानुज, दोनों अनुभवी थे, भक्त थे, ज्ञानी थे। अलावा, दोनों समाज-सुधारक और कर्मयोगी थे। दोनो काफी घूमे, परतु जीवन के हर पहलू को हाथ मे लेने की उनको जरूरत नही पडी, जिसकी आवश्यकता पारतत्र्य के कारण गाधीजो

को पड़ी। परिणामस्वरूप कर्मयोग का माद्दा उनमे अधिक रहा। यह लाभ उन दोनो को नही मिला। लेकिन जैसे एक लाभ हुआ वैसे एक न्यूनता भी रह गयी। सब धर्मों के सारभूत तत्त्व अहिंसा, सत्य आदि को हमने उठा लिया, पर मूल मे उसकी जो बुनियाद है ब्रह्मविद्या, वह अछूती रह गयी, उसे हमने नही उठाया।

बचपन से मेरा विचार ब्रह्मविद्या की तरफ था। हमारे कार्य मे उसकी कमी महसूस होती थी। बापू के जाने के बाद वह ज्यादा महसूस होने लगी और मन मे विश्वास हो गया कि इस भूमिका पर नही पहुचते है, तो ये ऊपर-ऊपरवाली चीजे टिकेगी नही। कम से कम हिंदुस्तान मे तो नही टिकेगी, क्योकि हिंदुस्तान तत्त्व-ज्ञान की भूमि है। मुझे लगा कि ब्रह्मविद्या की पूर्ति किये बिना हमारा विचार अखड प्रवाह मे नही बहेगा। उसका जो प्रवाह बनना चाहिए, वह नही बनेगा। इसका निर्णय मेरे मन मे हुआ और इस बात का विचार किये बिना कि मुझमे इतनी शक्ति है या नही, मैंने ब्रह्मविद्या-मदिर शुरू करने का तय किया। शक्ति से भक्ति श्रेष्ठ है। मुझमे शक्ति उतनी नही होगी, परंतु उस विचार की भक्ति मुझमे अवश्य है। उसी भक्ति पर दारोमदार रख कर ब्रह्मविद्या-मदिर की स्थापना की गयी (25 मार्च 1959)।

फिर यह भी मुझे लगा कि ऐसे आश्रम की कुल व्यवस्था बहनो के हाथ मे होनी चाहिए। यह भी एक प्यास मेरे मन मे थी। स्त्रियों की साधना हमेशा गुप्त रही है। उसका प्रभाव किसी न किसी व्यक्ति पर जरूर रहा है। परंतु उस साधना के प्रकट होने की भी बहुत जरूरत है। विश्व-शाति अकेले पुरुष नही कर सकते। यह इस जमाने की माग है। बुद्ध ने प्रथम तो स्त्री को प्रवेश नहीं दिया था, और दिया तो यह कह कर दिया कि

मैं एक खतरा उठा रहा हू । लेकिन वह पुराना जमाना था । मै तो इसमे खतरा मानता हू कि पुरुष के साथ स्त्री को (ब्रह्मविद्या मे) स्थान न हो, उसमे ब्रह्मविद्या अधूरी रहती है, उस ब्रह्म के टुकडे-टुकडे होते हैं । स्त्रियो के हाथ मे सचालन दे कर मैं उलटे उस ब्रह्म के टुकडे होने नही दे रहा हू । जमाने की माग है, इसलिए सचालन स्त्रियों के हाथ में रहेगा तो सुरक्षित रहेगा ।

जहा तक भारत के इतिहास का हमे ज्ञान है, उसके अनुसार स्त्री-शक्ति जगाने का काम प्रथम भगवान कृष्ण ने किया व्यापक पैमाने पर। उसके बाद के युग मे महावीर स्वामी ने प्रयत्न किया, बहुत बडे पैमाने पर स्त्रियो को दीक्षा दी । इन दो प्रयत्नो के बाद तीसरा प्रयत्न व्यापक पैमाने पर महात्मा गाधी ने किया । इस काम मे थोडा अनुदान 'बाबा' का भी है । स्त्रियो की सामूहिक साधना के लिए ब्रह्मविद्या-मदिर की स्थापना – 'बाबा' का यह अल्प-सा अनुदान माना जायेगा ।

स्त्रियो की व्यक्तिगत साधना प्राचीन काल से चली आ रही है । किसी विषय मे व्यक्तिगत तपस्या होती है तो आरभ हो जाता है । यह साइन्स की पद्धति है । व्यक्तिगत क्षेत्र मे सफलता हासिल हुई तो उसका व्यापक आयोजन किया जाता है । प्राचीन काल मे स्त्रियो ने व्यक्तिगत तौर पर शक्ति-निर्माण की कोशिश की, जिसके फलस्वरूप आज हमको प्रेरणा मिल रही है कि सामूहिक तौर पर स्त्रिया खडी हो जायें । आगे जो युग आनेवाला है वह मुख्यतया स्त्रियों का है । आध्यात्मिक शक्ति स्त्रियो की पैदा होनी चाहिए ।

मैं यहा तक अपेक्षा करता हू कि स्त्रिया शास्त्रकार बने ; भारत मे मीरा, मुक्ता, अडाल जैसी स्त्रिया हुई, वे बहुत बडी भक्त थी, उनका समाज पर प्रभाव था, परतु वे शास्त्रकार नही

थी। अभी तक ब्रह्मविद्या का जो शास्त्र बना, जो पुरुषो ने बनाया है, वह एकागी बना है। उसमें संशोधन हो और सशोधित ब्रह्मविद्या दुनिया के सामने आये और वह काम बहनों के द्वारा हो। भारतीय ब्रह्मविद्या का स्वरूप पुरस्कृत होने के लिए काफी गुजाइश है। स्त्रियां ब्रह्मचारिणी होंगी, शास्त्रकार होंगी, समूहरूपेण काम करेगी तभी चित्र बदलेगा।

'अगर मैं स्त्री होता तो न जाने कितनी बगावत करता। मैं तो चाहता हूं कि स्त्रियो की तरफ से बगावत हो। लेकिन बगावत तो वह स्त्री करेगी, जो वैराग्य की मूर्ति होगी। वैराग्य-वृत्ति प्रकट होगी तभी तो मातृत्व सिद्ध होगा। स्त्रियों का उद्धार तब होगा जब शकराचार्य जैसी कोई प्रखर ज्ञानवैराग्यसपन्न, भक्तिमान और निष्ठावान शास्त्रकर्ता पैदा होगी।

मैंने ब्रह्मविद्या-मदिर की बहनो से कहा था, 25 मार्च को ही ब्रह्मविद्या का नाम ले कर गृहत्याग कर के मैं निकल पडा था। आज भी उसी नाम से जी रहा हूं। अब समूह-साधना के ख्याल से बहनो का ब्रह्मविद्या-मदिर शुरू कर रहा हू। मैं शब्दो में व्यक्त नही कर सकता कितनी गहराई से उसका चितन कर रहा हू। घर छोडते समय जितनी तीव्रता महसूस होती थी चित्त मे, आज उससे कम नही महसूस होती। लेकिन ब्रह्मविद्या का जो सकल्प था, वह अब नही रहा। पूर्ण हुआ इसलिए गिर गया कि वैसे ही गिर गया, भगवान को मालूम। लेकिन अब जो तीव्रता है, वह सामूहिक समाधि की है। समूह की भावना उन दिनों में भी थी। लेकिन सामूहिक साधना की नही थी। जो कल्पना थी, वह समूहरूपेण कुछ सेवाकार्य किये जाये, यह थी। लेकिन आज सामूहिक समाधि की भावना है और उसके लिए तीव्रता महसूस होती है।

ब्रह्मविद्या-मदिर से मेरी अपेक्षा है कि मन ही समाप्त हो। ब्रह्मविद्या मे सामूहिक चित्त बनना चाहिए। मैंने मन की जगह 'सामूहिक चित्त' शब्द इसलिए इस्तेमाल किया क्योंकि मन तो मरा। मन मर जाने पर जो सामूहिक प्रेरणा होगी वह बताने के लिए 'सामूहिक चित्त' शब्द का प्रयोग किया। मन अपनी जगह पर है, लेकिन मनुष्य उसको महत्त्व नही देता – यह होता है तो वह मन को खतम करने का अच्छा आरभ है, लेकिन मैंने कहा मन ही समाप्त हो। मानसिक शक्ति प्राप्त करने की जो बात है उसके साथ इसका ताल्लुक नही है। यह शुद्ध आध्यात्मिक प्रयोग है, मानसिक नही। मन को मिटाने के प्रयोग को मानसशास्त्रीय प्रयोग नही कह सकते।

इसलिए मैंने बताया कि जो भी कार्यक्रम यहा तय करे, सब मिल कर तय करे और सब लोग उसमे नियमित भाग ले। यह ब्रह्मविद्या के लिए बहुत जरूरी है। अक्सर संसारग्रस्त मनुष्य मन के अनुकूल बरतते हैं। अक्सर साधको की कोशिश मन के विरोध मे काम करने की होती है। मैं तो तीसरी बात चाहता हू – मन से ऊपर उठने की। उसका सादा और प्राथमिक उपाय सबकी राय से कार्यक्रम तय करे। मन को खतम करने की यह दिशा है।

एक छोटे-से ट्रैगल मे जो सिद्धात सिद्ध होता है, वह बडे ट्रैगल को भी जैसा का वैसा लागू होता है। दुनिया के सामने जो बहुत-सी समस्याए आज मौजूद है, वे छोटे पैमाने मे एक गाव मे भी होती हैं। जैसा विश्व-समस्या-परिहार का गाव-गाव में प्रयोग होगा वैसा ही एक प्रयोग – उससे भी अधिक सघन छोटे पैमाने पर ब्रह्मविद्या-मदिर मे होगा।

प्राचीन काल मे ब्रह्मविद्या अरण्य मे बनी – उपनिषदों की

स्फूर्ति अरण्यप्रेरित है। उसके बाद गीता की विद्या रणांगण मे खडी हुई। आज हमारी ब्रह्मविद्या को मजदूरी के क्षेत्र मे खडा होना पडेगा। मजदूरी को – शरीरश्रम को उपासनास्वरूप समझना होगा। संपूर्ण स्वावलंबन का आग्रह रख कर मैंने अपने साथियों के साथ कई साल प्रयोग किये। उसके लिए जितने घंटे काम करना पडा किया। आठ-आठ नौ नौ घंटे काम करना पडा। वह भी ब्रह्मविद्या का ही प्रयोग था। लेकिन अब प्रयोग दूसरे तरीके से करना है। मेरा मानना है कि योजनापूर्वक काम किया जाये तो तीन-साढे तीन घंटे के उत्पादक-परिश्रम मे एक व्यक्ति की पूर्ण जीविका हासिल हो सकती है। मैंने बहनो को कहा कि उतना ही समय हम परिश्रम को दे और उसमे जितना स्वावलंबन हुआ, उतने मे संतोष माने। सब परिश्रम का समान मूल्य माने। आज समाज मे उसका समान मूल्य नही है, लेकिन हमको वह करना है।

ब्रह्मविद्या मंदिर मे मुख्यतया बहने रहती हैं। कुछ भाई भी है। ये लोग थोडा समय खेत मे काम करते हैं। रसोई बनाना, पाखाना साफ करना, सफाई, सब खुद ही करते हैं। यहा एक प्रेस है छोटा, जो बहने ही चलाती है। वहा आध्यात्मिक पुस्तके छपती हैं और प्रकाशित होती हैं। उसके अलावा यहा एक 'मैत्री' नाम की हिंदी मासिक पत्रिका हर महीने प्रकाशित की जाती है। कन्नड भाषा की एक पत्रिका भी नागरी लिपि मे छापी और प्रकाशित की जाती है। तो यहा तीन काम चलते हैं – एक, सामूहिक साधना, दो, श्रमनिष्ठा, तीन सबके साथ एक हो कर ध्यान स्वाध्याय इत्यादि और भक्ति। ये बाते यहां की मुख्य है।

यह एक छोटा-सा टीला है, जिस पर ब्रह्मविद्या-मंदिर है। यहा खोदते-खोदते जमीन मे से कोई तीस-बत्तीस मूर्तिया निकली। उन

मूर्तियो की यहा स्थापना की गयी । उनमे राम, कृष्ण, महादेव, इत्यादि की मूर्तिया है । एक है बुद्ध भगवान की मूर्ति और एक है महावीर की मूर्ति । इस प्रकार से जैन, बौद्ध, वैष्णव, शैव इनकी मूर्तिया यहा मिली । ये मूर्तिया 1400 साल की पुरानी हैं । गुप्त साम्राज्य का पतन होने के बाद वाकाटको का राज यहा चला था । उस जमाने मे ये सारी मूर्तिया बनी है । एक बहुत ही सुदर मूर्ति है गगा की । वह मकर पर खडी है और नीचे ब्राह्मी लिपि मे लिखा है – गगादेवी । आज भारत मे देवनागरी लिपि चलती है, उस समय ब्राह्मी लिपि थी । उस सब पर से पुरातत्त्व सशोधको का यह निर्णय है कि ये 1400 साल पहले की मूर्तिया है । शकराचार्य 1200 साल पहले हो गये । मतलब शकराचार्य के 200 साल पहले की ये मूर्तिया है । उधर मुहम्मद पैगबर का जन्म 1300 साल पहले हुआ । उनका जब जन्म हो रहा था, तब ये मूर्तिया बन चुकी थी या बन रही थी । भगवत्-कृपा अनेक प्रकार से इस स्थान मे प्रकट हुई है । इसलिए भक्ति की भाषा मे बोलना हो, तो यह स्थान जागृत देवता है ।

ब्रह्मविद्या-मदिर के बारे मे मैंने कहा है कि यहा या तो उत्तम चीज देखेगे या सारा प्रयास व्यर्थ जायेगा । इतनी खतरनाक दूसरी सस्था नही । दूसरी सस्थाओ मे ऐसा होता है कि मिले तो दस लाख, नही तो दस हजार तो है ही । यहा मिला तो अनत, नहीं तो शून्य ! इसलिए यहा ब्रह्मविद्या से कम बात तो चलेगी ही नही । मुझे अगर कोई ऐसी धमकी दे, तो मैं कहूगा कि शून्य मिले तो भी मुझे यह करना है । दस-पाच मिलाने मे मुझे रस नही । या अनत हासिल करे, या शून्य !

* *

प्रस्थान आश्रम, पठानकोट

कश्मीर की यात्रा पूरी कर के जब पुनः पंजाब आया तब मुझे प्रस्थान आश्रम की कल्पना सूझी। वहां से पाकिस्तान, कश्मीर और पंजाब, तीनों निकट है। तीनों के लिए वहां से प्रस्थान कर सकते हैं। वहां शांति-सेना का केंद्र बन सकता है। शिक्षण का काम हो सकता है। कश्मीर से जो मजदूर लाचार हो कर ठंड में वहां आते है, उनकी सेवा हो सकती है। कम से कम उनके साथ हृदय का संपर्क बना रहे, उनके कष्टों में हम उनके साथ रहें। फिर गुरुदासपुर जिले में ईसाई भी अधिक है। तो यहां से हिंदू, मुस्लिम, ईसाई सब धर्मों से संपर्क हो सकता है। इस प्रकार एकता का काम अगर यहां से हो सकेगा तो देश की बहुत बड़ी सेवा होगी। इस विचार से पठानकोट में आश्रम की स्थापना हुई (अक्तूबर 1959 से)।

* *

विसर्जन आश्रम, इंदौर

मेरी पदयात्रा को नौ साल पूरे हो रहे थे। असम को छोड़ कर बाकी सभी प्रदेशों में जाना हुआ था। तो मेरे मन में आया कि आज तक सर्वोदय आंदोलन के प्रयत्न मुख्यतः देहात को दृष्टि में रख कर हुए हैं। अब नगरों में भी यह काम होना चाहिए। जब इस तरह सोचने लगा तब मेरी दृष्टि इंदौर नगर पर गयी। इंदौर चार प्रदेशों (महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, मध्य प्रदेश) का मिलन स्थान है। देवी अहिल्याबाई की भूमि है। अहिल्याबाई का नाम मैंने बचपन से ही सुना था। बचपन में कवि मोरोपंत का एक वचन पढ़ा था, देवी अहिल्याबाई झालीस जगत्रयांत तू धन्या, न

न्याय-धर्म-निरता अन्या कळिमाजीं ऐकिली कन्या ।* हिंदुस्तान के इतिहास मे वह एक बडा प्रयोग था, राज्यकार्य की धुरा एक उपासनापरायण, धर्मनिष्ठ स्त्री के हाथ मे आयी थी। फिर इन दिनों माता कस्तूरबा का स्थान वहा बना। तो स्त्री-शक्ति के लिए मुझे यह स्थान अनुकूल लगा। इदौर औद्योगिक नगर होते हुए भी यहा जनता की प्रकृति सौम्य है, अर्थात् सघर्ष और विग्रह की भावना कम है। जल-वायु भी सौम्य है। इन सब कारणो से नगर-अभियान के लिए इदौर को मैने चुना और उसकी व्यूह-रचना ने वहा विसर्जन-आश्रम की स्थापना की (15 अगस्त 1960)। आश्रम के नजदीक ही एक नदी है और वहा गाधीजी की रक्षा का विसर्जन हुआ था।

उसका उद्घाटन करते हुए मैने कहा था – इस आश्रम का ध्येय है, इय विसृष्टिर्यत आबभूव – पुराने कालबाह्य मूल्यों का विसर्जन कर, नवयुगानुसार प्राणवान, उपयुक्त मूल्यो का वि-सर्जन – विशेष सर्जन करना। स्वाध्याय, शुचिता, नम्रता से एकादशव्रतो का पालन होगा। श्रद्धा से अहिंसात्मक जीवन के प्रयोग यहा किये जायेगे, ताकि नागरिको मे परस्पर प्रेम और करुणा का भाव जागे, उन्हे आत्म-शक्ति का भान हो, वे सहयोग और समत्व की ओर बढे और विभिन्नता मे एकता का आदर्श रखे। आश्रम लोकाधार और आत्माधार पर चलेगा। इदौरनगरवाले आश्रम की प्रवृत्तियो और योगक्षेम मे रुचि ले, ऐसी अपेक्षा है।

---

* देवी अहिल्याबाई जगनय मे तू धन्य हुई

कलियुग मे अन्य न्यायधर्म-निरत कन्या सुनने मे नही आयी – स

मैत्री आश्रम, असम

यह विज्ञान का जमाना है। विज्ञान का जमाना कहता है, 'दुनिया के मनुष्यो, एक हो जाओ'। लेकिन पुराने राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक संस्कार, जो मनुष्य के चित्त पर आरूढ हैं, एकता मे बाधा डाल रहे है और आज मानव-समाज पहले से भी अधिक छिन्न-विच्छिन्न है। ऐसी हालत में भारत के एक सं:माप्रदेश मे 'मैत्री आश्रम' की स्थापना मेरे लिए अनिवार्य हो गयी।

असम की यात्रा मे अतिम दिनो मे मैं सोचता रहा कि यहा सर्वोदय की बुनियाद मजबूत कैसे बनेगी और उसी का परिणाम है मैत्री आश्रम। असम मे स्त्रियों की एक शक्ति है। यों दुनिया मे पुरुष काम कर रहे हैं और वे असम मे भी हैं, न होते तो गांव-गाव में ग्रामदान का काम कौन करता? फिर भी सारे भारत मे तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर कह सकते हैं कि यहा स्त्री-शक्ति के विकास के लिए अवकाश है। इसलिए भी ऐसे स्थान की आवश्यकता मालूम हुई।

मैंने कहा था कि यहां सद्भाव और प्रखर वैराग्यशीलता रहे। एक दफा समाज देखे कि स्त्रिया भी गहराई मे जा सकती हैं। समाज के विकास के लिए खोजें कर सकती हैं। आज तक दवा समाजशास्त्र बदल सकती हैं। नये नीति-विचार बदले जमाने के अनुकूल सोच और बदल सकती हैं। यह समाज ने अभी तक नही देखा है। स्त्रियों मे वीरागनाए, राज्य-मर्मज, भक्त हुई हैं, साहित्यिक भी हुई है, परतु यह सब होते हुए भी यह अनुभव नही आया है कि समाज के मार्गदर्शन में स्त्रियों ने विचार पेश किया है और समाज ने उसे माना है। लेकिन अब यह होने का मौका

आया है। आज दुनिया का हिंसा पर विश्वास नही रहा। अगर उसे अहिंसा का मार्ग भी नही सूझा तो वह भ्रात हो जायेगी, इसलिए इसके आगे अहिंसा का रास्ता बनाना है। उस दृष्टि से मौलिक चिंतन आवश्यक है।

मैत्री आश्रम की स्थापना के समय (5 मार्च 1962) मैंने कहा था, यहा नियम, ध्येय और कार्यक्रम, जो भी होगा, वह इस "मैत्री" शब्द मे आ जाता है। यहा एक ही नियम होगा मैत्री। एक ही ध्येय होगा मैत्री। एक ही कार्यक्रम होगा मैत्री।

इस स्थान को हम मैत्री का स्थान मानते हैं। इस जमाने मे मैत्री साधारण अर्थ मे विशेष मान्य नही होगी, कारण आज के समाज की समस्याए बहुत गहरी है। मैत्री के साथ-साथ समाज की समस्याओं का भी समाधान होना चाहिए। अन्यथा सर्वसाधारण मैत्री की बात तो राष्ट्र के सर्वोच्च राजनैतिक नेता भी बोलते हैं कि सेना नही होनी चाहिए, लडाई नही होनी चाहिए। लेकिन उसके लिए जो उपाय है, उसका सम्यक् दर्शन किसी को नही है। इसी लिए उसी गोल चक्कर मे दुनिया पडी हुई है। अत मैत्री भावना दिशा दिखाने मे होगी। इसलिए इस आश्रम मे ज्ञान-विज्ञान सयुक्त हो। ज्ञान और विज्ञान मे शरीर और बुद्धि, दोनो की तपस्याए करनी होगी।

यहा अनेक भाषाओ और धर्मों का अध्ययन करना होगा। सर्वोदय और दूसरे विचारों का अध्ययन-अध्यापन और उस प्रकार के साहित्य का निर्माण करना होगा। आसपास जो ग्रामदान का काम चलेगा, उसमे काम करनेवाले व्यवस्थापक जो कई आवश्यक काम कर नही पाते, वे काम भी करने होंगे।

यह स्थान भारत के सिर पर बिलकुल एक कोने मे है। आश्रम के लिए हमने ऐसी जगह चुनी कि जहा से हवाई अड्डा बहुत नजदीक है। अपेक्षा यह है कि यहां से दुनिया के साथ संपर्क रखा जाये, यह एक अंतर्राष्ट्रीय मैत्री का केंद्र बने। वहा ऐसी अंतर्राष्ट्रीय शिविर-गोष्ठिया संपन्न भी हुई और अंतर्राष्ट्रीय विषयों पर चर्चाएं हुई।

आश्रम की स्थापना (5 मार्च) 1962 मे हुई। उस समय किसको मालूम था कि उसके एक साल बाद दिल्ली से जागतिक मैत्री-यात्रा शुरू होनेवाली थी और असम की अंतिम सीमा पर पहुंचने पर उसका आगे का मार्ग कुंठित होने से मैत्री आश्रम उसका 'निजगृह' बननेवाला था! लेकिन ईश्वर की इच्छा से वह हो सका। यह 'मैत्री' के लिए ईश्वरी आशीर्वाद मैंने माना।

* *

वल्लभ-निकेतन, बेंगलूर

वल्लभस्वामी के स्मरण के लिए हमने वल्लभ-निकेतन बनाया (1965) मे।* वे विशुद्धात्मा थे। हमने ऐसे बहुत लोग देखे हैं, जो बुद्धि मे बहुत प्रखर हैं। लेकिन जितनी शुद्धि वल्लभस्वामी मे देखी थी, ऐसे लोग हमने ज्यादा नही देखे। उनके स्वभावविशेष को ध्यान मे ले कर तदनुरूप उनका स्मारक होना चाहिए। तो वहा स्वाध्याय हो। लोग थोडा ध्यान, चिंतन करें और शांति पा कर जायें, ऐसा प्रबंध होना चाहिए। वहा सात्त्विक मैत्री का वातावरण बना रहे। वहा की दृष्टि से चार बाते ध्यान मे रखनी होगी –

---

* 1957 मे, बेंगलूर से सात मील दूर विश्वनीडम् आश्रम की स्थापना की गयी थी, 'यत्र विश्वं भवति एक-नीडम्' इस ध्येयवाक्य से – और उसका भार वल्लभस्वामी को सौंपा गया था। उसी का बाद मे स्थानांतर हो कर वल्लभनिकेतन मे रूपांतर हुआ। – सं

(1) वहा के वातावरण मे शाति रहे। (2) अविरोध सेवा कार्य हो और (3) उसमे आध्यात्मिक दृष्टि रहे। (4) वहा शाति, भक्ति और प्रीति का वातावरण बना रहे। लोग वहा आयें, शाति ले कर जायें।

इस अपेक्षा से वल्लभ-निकेतन का प्रारभ हुआ है।

आत्मदीपो भव

मैंने पहले जिस ढंग से आश्रम चलाये वैसे अभी नही चलाता। पहले तो मेरे जितने साथी थे, सब हुक्मबरदार थे। मैं जो कहता उस पर उसी क्षण अमल होता। मैंने ऐलान किया कि कल से नमक छोडना है, तो एकदम नमक उठ गया। कोई चू नही करता था। कल से अमिश्र खाना है, तो अमिश्र शुरू हो जाता। इस तरह खाने के प्रयोग चले, आठ-आठ घटे खेती, कताई चली। हुक्म का तुरंत अमल होता गया। वह भी 'बाबा' का एक रूप था। लेकिन उसमे जो व्यक्तित्व बना, उसकी मर्यादा मैंने देख ली। अपने आश्रम मे और गाधीजी के आश्रम मे भी देख ली। इसलिए सोचा कि अब जो आश्रम बनेगे उसमे मार्गदर्शक नही होना चाहिए। और इसलिए आदोलन मे भी मैंने एक शब्द दे दिया है गणसेवकत्व ! कुल जमात के लिए गणसेवकत्व की बात कही है तो आश्रमो के लिए तो है ही। इसलिए अब तो मैंने पत्रो का उत्तर देना भी बद कर दिया है। जवाब मे मैं एक ही बात कहता हू – आत्मदीपो भव।

विकर्मणा संधानम्

स्वधर्माचरण की बाह्य क्रिया से, चित्त को उसमे लगाये बिना शक्ति नही बनती । कर्म के साथ मन का मेल होना चाहिए। सेवा मे यदि मन का सहयोग न हो, तो उससे अहकार पैदा होता है। हाथ में भी सेवा हो और हृदय मे भी सेवा हो तभी सच्ची सेवा हमारे हाथों बनेगी। उसके लिए चित्त-सशोधन की जरूरत होती है। चित्त-सशोधन के लिए जो कर्म किये जाये, उन्हे गीता 'विकर्म' कहती है, यानी 'विशेष' कर्म। जब कर्म के साथ विकर्म का जोड हो जाता है, तब धीरे-धीरे उसमे से निष्कामता आती है और शक्ति-स्फोट होता है, गीता-प्रवचन मे सूत्र ही है – विकर्मणा संधानम्, ततः स्फोटः।

साधक के जीवन मे कर्मयोग का अपना स्थान होता है। चिंतन-अध्ययन का भी होता है। पर उपासना का स्थान सबसे अधिक महत्त्व का है। उपासना हमे भगवान से जोडती है। उपासना का अभ्यास जैसे-जैसे बढेगा वैसे-वैसे यह भी कुजी हाथ में आयेगी कि हमारी हरएक कृति भगवान से जुड जाये। यह एकदम अनुभव मे नही आयेगा। आहिस्ता-आहिस्ता आयेगा।

प्रार्थना

सामूहिक प्रार्थना की आदत मुझे गाधीजी के सत्याग्रहाश्रम में प्रवेश करने के बाद हुई। उसके पहले मैं ऐसी प्रार्थना नही करता

था। जिसे व्यक्तिगत प्रार्थना कहा जा सकता है, वैसा भी प्रार्थना के तौर पर, निश्चित समय पर नही करता था। भक्तिभाव मे कभी पढ लेता था, गा लेता था। सहज वृत्ति होती थी। लेकिन एकसाथ बैठ कर या निश्चित समय पर व्यक्तिगत प्रार्थना करने की वृत्ति नही थी। बचपन मे मुझे सध्या-उपासना भी सिखायी थी। मैंने कठ कर ली थी, लेकिन मैं करता नही था। मैं कहा करता था कि जिसका अर्थ मुझे मालूम नही, उसे नाहक बोलता नही रहूगा। उन दिनो मेरी भक्ति-भावना का विकास कम हुआ, ऐसा मैं नही मानता। परतु गाधीजी के पास रोज सुबह-शाम दो दफा प्रार्थना चलती थी। अनेक सज्जन इकट्ठा बैठते थे। धीरे-धीरे उसका चित्त पर असर पडा। मैं प्रार्थना का इतना असर नही मानता, जितना उस सत्सग का मानता हू।

बापू से सवाल पूछे जाते थे कि प्रार्थना मे चित्त एकाग्र न हुआ तो क्या करे? प्रार्थना मे नीद आने लगी तो क्या करे? बापू कहते थे कि नीद आती हो, या एकाग्रता न होती हो, तो खडे रहो। लोग सत्यनिष्ठ थे। रोज प्रार्थना मे दो-दो, चार-चार लोग खडे रहते थे। खडे रहने पर चित्त एकाग्र रहेगा, ऐसा निश्चित नही है – बापू अपने चित्त का भी विवरण देते थे। बच्चो को वर्णमाला सिखाते हैं, वैसा प्रार्थना का पाठ उन्होने शुरू किया। वहा मुझे नया अनुभव आया, जो पहले नही आया था।

बापू के जमाने मे बहुत-सी प्रार्थनाएं चली। प्रार्थना मे जो श्लोक बोले जाते थे, उनमे से बहुत-से श्लोको को मैं जानता था। यद्यपि उनमे से कितने ही श्लोक ऐसे हैं, जिनका मैं कभी उच्चारण न करता और मैंने उन्हे कभी भी प्रार्थना के योग्य नही माना, फिर भी मैं उन्हे श्रद्धापूर्वक कहता रहा। लेकिन मुझे उनका विशेष

आकर्षण नही था। आगे चल कर बापू से इस विषय पर चर्चा चली कि उन्हे प्रार्थना में रखा न जाये, तो यह कह कर उन्हे जारी रखा गया कि जो चल पडा वह चालू ही रखना चाहिए।

जब मैं जेल गया तब सुबह की प्रार्थना मे ये सारे श्लोक मैंने छोड दिये और ईशावास्य उपनिषद का अपना बनाया हुआ गद्यानुवाद ही पढता रहा। उन दिनो मेरा इसी पर चिंतन चलता था। मेरी उस प्रार्थना में कई लोग शामिल हुआ करते थे। शाम की प्रार्थना मे गीता के श्लोक तो मुझे बहुत ही पसंद थे, इसलिए उन्हे वैसा ही रहने दिया। यह जब बापू थे तभी से शुरू हो गया था। फिर जब जेल से छूटा तब पवनार आश्रम मे भी यही ईशावास्य बोलता रहा।

सारे भारत मे या सारी दुनिया मे एक ही प्रार्थना चले, यह एकता की अजीब भावना मुझे अच्छी नही लगती। एकता तो अंदर की होनी चाहिए। प्रार्थना के विषय मे मुझे किसी वचन-विशेप का आग्रह नही है।

यही करण है कि जब मैं मेवों मे काम करता था, तो कुरान से ही वचन पढता था और गीता का उर्दू तर्जुमा पढता था। भजन भी उर्दू गाता था। जो समाज को सहज ही समझ मे आ जाये, वही मुझे अच्छा लगता है।

बापू के जमाने से सर्वधर्म प्रार्थना भी चली। जहां भिन्न-भिन्न धर्म-भाषावाले बैठे हों, वहा वह ठीक भी है, फिर भी वह खिचडी जैसी हो जाती है। उसमें भगवान को राजी करने की जगह मनुष्य को ही राजी करने का विचार मुख्य रहा। मानव भी भगवान का ही रूप है, यों सोचे तो उसे अनुचित नहीं कहा जा सकता।

यह सब सोच कर मुझे लगा कि मौन प्रार्थना ही इससे अधिक

श्रेष्ठ है। उससे सभी का समाधान हो सकता है और गहरे से गहरा अर्थ निकल सकता है। मैं यह अपने अनुभव से कह सकता हू।

भूदान-यात्रा मे पहले शाम की सार्वजनिक प्रार्थना मे स्थितप्रज्ञ के श्लोक गाये जाते थे। लेकिन आध्र मे मैंने इसकी जगह मौन प्रार्थना का प्रारभ किया। सार्वजनिक मौन प्रार्थना का अत्यत महत्त्व है। सभी मिल कर शात चित्त से प्रार्थना करे, यह बात मेरे मन मे बहुत दिनो से चल रही थी। विचार धीरे-धीरे पक्का होता है और जैसे-जैसे अनुभव की समृद्धि बढती है वैसे हिम्मत भी बढती है।

मौन निद्राजय और स्वप्नजय

यो तो मेरा मौन का अभ्यास बहुत पुराना है। चिंतन के लिए मन पूर्णरूप से मुक्त रहे, यही प्रारभ मे मेरी मौनसाधना को अभिप्रेत था। जहा तक मुझे स्मरण है, 1927 मे मैंने मौनव्रत लिया। लेकिन मेरा वह मौन मतलबी मौन था। पहले तो मैंने दो महीने के लिए ही यह तय किया था कि रात की प्रार्थना के बाद मेरा मौन रहेगा। लेकिन वह मुद्दत खतम होने के बाद मैंने हमेशा के लिए वह नियम रखा। फिर भी तब वह केवल आश्रम मे रहता था, तभी के लिए था। बाहर के लिए नही था। बाहर जाता था तो मौन का आग्रह नही रखता था। फिर जब मैं धुलिया जेल मे था तब वहा पर बहुत चिंतन चला और मैंने तय कर लिया कि प्रार्थना के बाद मौन हमेशा के लिए ही रखना चाहिए, चाहे आश्रम मे हों या बाहर।

मेरे मौन के विचार के पीछे कोई स्थूल कारण नही था। उसका मुख्य कारण था गीता का आठवा अध्याय। गीता के आठवे

अध्याय में अंतकाल में भगवान के स्मरण का महत्त्व बताया है। अतकाल मे भगवान का स्मरण तभी होगा, जब जीवनभर उसका स्मरण रहेगा, क्योंकि वह तो कुल जीवन का परिणाम होगा। इसी पर से मुझे लगा कि अंतिम काल का नाटक हररोज होना चाहिए। अतिम काल कब आयेगा, किस तरह आयेगा इसकी कल्पना तो की नही जा सकती, परतु यो देखा जाये तो प्रतिदिन हमारे जीवन का अत हुआ करता है। आखिर निद्रा भी तो मरण की पूर्व प्रक्रिया ही है, जो रोज की अनुभूति है। इसलिए यदि हम हररोज सोते समय अतकाल के समय का नाटक करे, तो अतकाल के समय बाजी अपने हाथ मे होगी। 'रोज मरण आता है' यह मान कर पवित्र स्मरण के साथ सो जाना चाहिए। यही मैंने सोचा।

जब मैंने यह निर्णय लिया तब कई बाते मेरे मन मे आयी। सेवा का विचार आया, सभा का विचार आया। वर्धा मे हमेशा सभा रात को नौ बजे शुरू होती थी और बारह बजे तक भी चलती। ऐसी सभाओ मे मुझे जाना पडता था। फिर भी मैंने मेरा निर्णय पक्का रखा और घोषणा कर दी कि सायं प्रार्थना के बाद मौन रखूंगा।

मौन के प्रथम दिन ही मुझे शाति का विलक्षण अनुभव हुआ। बोलना बंद होने से वाचन शुरू हुआ। पढना तो मेरा आध्यात्मिक ही होता था। पढने के अनतर केवल ध्यान और चितन ही करता था। इससे कितनी शाति मिलती है, इसका अनुभव मुझे नही था। सचमुच अद्भुत अनुभव हुआ। परिणामस्वरूप विचारों के विकास का एक शास्त्र ही मेरे हाथ लग गया। जिस तरह खेत मे बीज डाल कर उस पर मिट्टी डाल दे तो बीज दिखायी नही देता,

लेकिन अदर ही अदर वह विकसित होता है और तीन दिन के पश्चात् दीखता है, जब अकुर फूटता है, उसी तरह प्रार्थना, ध्यान, चितन करनेवाले मनुष्य पर निद्रारूप मिट्टी डाल दी जाये तो कभी-कभी जागृति में जिन समस्याओं का समाधान नही कर सकते, वह समाधान निद्रा मे मिल जाता है। समाधि मे गहरे उतरने पर विचारों का विकास होता है, परतु गहरे उतरने पर भी कभी-कभी जो फल नही मिलता, वह निद्रा की प्रक्रिया मे मिल जाता है। मेरा अनुभव रहा कि इस प्रकार प्रार्थना के बाद, अन्य कोई भी विचार मन में रखे बगैर सो जायें तो मौन, ध्यान, आध्यात्मिक चितन, इन सबकी योग्यता उस निद्रा मे होती है। शंकराचार्य ने कहा है निद्रा समाधि स्थिति । इस तरह मेरे मौन का अनुभव उत्तरोत्तर दृढ होता गया ।

निद्राजय और स्वप्न पर काबू, यह मेरा अपना खास विषय है। हम जो भी करते हैं दिनभर, वह ऐसे ढग से करे जिससे कि उसका निद्रा पर असर न हो और स्वप्न के लिए वह कारण न बने। जिस चीज के स्वप्न आते हैं, उनमे या तो हमारी आसक्ति होती है या उसकी नफरत होती है। राग और द्वेष। इन दोनों के कारण स्वप्न पर जागृति का असर पडता है।

बचपन की बात है। मेरे पिताजी के एक मित्र थे। वे उत्तम शतरज खेलते थे। मुझे हमेशा बुलाते शतरज खेलने के लिए। मैं जाता था। शतरज के लिए मुझे आदर है। क्योंकि उसमे नसीब का सवाल नही आता और दोनो पक्षो के पास समान दल होता है। और भी एक कारण है, 'शतरज को साज काठ को सबै समाज'। सभी लकडी का होता है। उसमे मिथ्यात्व है, अद्वैत है और बुद्धि का खेल है, नसीब का नही। तो मैं खेलने जाता था।

लेकिन एक दिन रात मे स्वप्न आया और स्वप्न मे शतरंज खेलना शुरू हुआ। दूसरे दिन उठा और तय किया कि अब फिलहाल शतरज खेलना नही। जिस चीज का चित्त पर इतना असर पडे कि वह स्वप्न मे भी आ जाये, उस चीज को काटना ही चाहिए।

ध्यान

ध्यान के अलग-अलग प्रकार हैं। कोई ईश्वर को मातृरूप मे देखता है, कोई पितृरूप मे, कोई गुरुरूप मे। मुझे ईश्वर को मातृरूप मे देखने की आदत है। मेरे जीवन में मित्र-भावना विशेष रही। गुरु के लिए मेरे मन में बडा आदर है और ईश्वर के लिए गुरुभाव भी है। लेकिन यह भी कुछ उपाधि है, ऐसा समझ कर (1964 मे) मैंने तीनों भावनाओं का विसर्जन कर दिया। तब मैं टायफाईड से बीमार था। उस बीमारी मे मेरा बहुत ध्यान चला। शुरू के चार-पांच दिन तो मैं ध्यान मे मस्त था। उस समय इन तीनो भावनाओं को उपाधि मान कर छोड दिया। लेकिन पुरानी आदत है तो ईश्वर का कही मातृरूप या गुरुरूप मे वर्णन पढ लेता हू तो मेरी आखो से आसू बहने लगते हैं। परंतु उन आसुओं को भी उपाधि समझना चाहिए। भले ही वे कितने ही पवित्र क्यों न हों।

लेकिन इस प्रकार की उपाधि ध्यान के लिए काम में आती है। उसको उपाधि समझ कर छोड दे तो उससे लाभ नही होता। कुछ हद तक मनुष्य को इन उपाधियों की जरूरत है। भगवान के गुणो का ध्यान, आगे उनका अनुशीलन, इसके लिए मूर्तिया भी

काम देती हैं। मैंने इस प्रकार मूर्तियों का ध्यान किया है।

छोटा था तब बडोदा मे बुद्ध मूर्ति का ध्यान करता था बचपन मे महाराष्ट्र के सतो के भजनो का परिचय था, अमर था तो विठोबा के लिए भक्ति थी। कुछ दिन विठोबा का ध्यान हुआ। विठोबा के ध्यान के फलस्वरूप मुझे सूझा कि विठोबा समाज की चौथी अवस्था है। समाज की पहली अवस्था मे हर-एक के पास डडा रहता था और एक-दूसरे को पीटने का अधिकार था। दूसरी अवस्था यह कि आपस मे दड नही करेगे, बल्कि न्यायाधीश या सरकार जो फैसला देगी वह माना जायेगा। तीसरी अवस्था मे सरकार भी डडा छोड देगी। सब शस्त्र भगवान को समर्पण होगे। भगवान गदाचक्र ले कर सज्जनो का रक्षण करेगा, दुर्जनो का खडन करेगा। चौथी अवस्था आयेगी कि भगवान भी शस्त्रसन्यास लेगा। दड नही देगा, क्षमा करेगा। विष्णु का यह अवतार शस्त्र हाथ मे धरता नही। सार यह कि मूर्ति का ध्यान करते समय भी लक्ष्य यही रहता है कि उसमे से किसी गुण का दर्शन हो।

यहा (ब्र वि म में) मेरे निवास के सामने गगामूर्ति है। मैं रात मे और दिन मे उसका ध्यान करता रहा। तो मुझे उसकी नजर मे कारुण्य, चेहरे पर प्रसन्नता, वक्ष मे वात्सल्य और कमर मे सामर्थ्य दिखायी दिया। एकदम एक चित्र सामने खडा हुआ। पत्थर की मूर्ति से गुणो का समुच्चय प्राप्त हुआ।

मैंने भरत-राम का भी ध्यान किया है। मैं अपनी कोठरी मे चित्र रखना पसद नही करता। स्थूलरूपेण पसद नही करता। मानसिक पसंद करता हू। उससे बाधा नही आती। जैसे ईसा का ध्यान प्रेम के प्रकर्ष का प्रतीकस्वरूप है। ईसा ने समाज के लिए बलिदान दिया। उसमे परमेश्वर के प्रेम का और परमत्याग का ध्यान हुआ।

स्वच्छता को मैंने ध्यानयोग माना। स्वच्छता का ख्याल आध्यात्मिक दृष्टि से मेरे मन मे आया तो उसको मैंने ध्यानयोग के रूप मे रखा। मै ब्रह्मविद्या-मदिर मे आया (1970), तो सफाई का काम शुरू किया। उसमे चित्त की स्थिति का जो अनुभव आया वह लगभग ध्यान के करीब आया। लगभग समाधि के करीब था। इसलिए मैंने उसको ध्यान नाम दे दिया। बाकी दूसरा ध्यान मन को खीचने का है। तो मेरा कहना है कि मन को खीचते क्यों हो? गाफिल मत रहो। मन इधर-उधर गया तो उसके पीछे जायेगे और कहा-कहा जाता है, वह साक्षीरूप से देखते रहेगे।

मन है नहीं

मुख्य बात मेरे ध्यान मे यह आयी कि अतर्मुख और बहिर्मुख, यह विरोध रहेगा तब तक मुख ही नही बनेगा। ध्यान मे आना चाहिए कि जो परमात्मा अदर है, वही बाहर है। भगवान अदर, बाहर, सब जगह है। आखों को दीख रहा है, पर हम कहते हैं कि आंख बद कर के उसको देखेगे। असल मे बाहर हमको डर नही है, अदर भी नही है, डर है अपने चित्त मे। चित्त से मुक्त हो गये तो काम खतम है।

मैं चितन के लिए सहजता से बैठता हू तब मन रहता ही नही। मात्र मैं ही रहता हू। इससे भी ठीक अभिव्यक्ति करनी हो तो 'मैं' को छोड कर केवल 'होता हू'। 'मैं' यानी विशिष्ट! वह विशिष्टावस्था तब नही रहती। खुले आकाश की-सी स्थिति हो जाती है।

मुझ जिसे अनेकाग्रता कहते है, वही करना पडता है। एकाग्रता के लिए कुछ करना नही पडता। वह होती ही है। कोई कहे कि मन को वद करो, तो वद ही है। कभी वात करना है इसलिए खोल देता हू। और वात करते समय भी अपने को अलग रख कर वात करता हू। जैसे मनुष्य पानी मे ऊपर-ऊपर तैरता है, पानी मे डूवता नही — डूवेगा तो जायेगा — वैसे वोलने मे, चलने मे, हसने मे, काम करने मे ऊपर तैरता हू, अदर डूवता नही।

मेरे कमरे की दीवार मे एक छेद है। कुए पर मजदूर काम कर रहे थे, वह उसमे से दीखता था। तो कभी देख लेता। इधर-उधर भी देख लेता हू। वह एक विनोद है। लेकिन एक-एक वस्तु के दर्शन के साथ चित्त पर जो एक-एक असर होता है, वह नही होता।

गुणोपासना

गुण-दोष के विषय मे वचपन मे मैं वहुत परीक्षण किया करता था। हमारी वहुत चर्चा चलती थी कि इसमे यह दोष है, उसमे वह दोष है वुद्धि काम तो करता ही है। हर मनुष्य मे कोई न कोई दोष दीखता ही था। निर्दोष कोई दीखता नहीं था और अपना दोष भी नही दीखता था। सवका पृथक्करण पूरा नही होता था, तव फिर अपनी तरफ ध्यान ही कैसे जाये ! फिर सतो का साहित्य पढने मे आया, कासया गुणदोष वानू आणिकाचे। मज काय त्याचे उणे असे। तुकाराममहाराज कहते है, दूसरों के दोष मैं क्या देखू, मुझमे क्या उसकी कमी पडी है ? तव यह बात ध्यान मे आयी।

फिर बापू ने कहा, दूसरे के छोटे गुण भी बडे देखें और अपने दोष बडे देखे। परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यम्। मैंने एकबार बापू से पूछा, यह सारा सत्य के साथ कैसे मेल खायेगा? उन्होने जवाब दिया कि इसमें "स्केल की बात है। नक्शे मे दो इंच है तो तुम पचास मील समझते हो, दो ही इंच नही मानते हो, वैसे ही यह है। दूसरे के गुण कम होने पर भी ज्यादा मानने से 'राईट स्केल' होगा।" मनुष्य की आदत होती है दूसरे के गुणों को और अपने दोषों को कम देखने की, इसलिए 'स्केल' बता दिया। बौद्धिक प्रश्न का उन्होंने बौद्धिक जवाब दिया। फिर मेरी वह प्रक्रिया जारी हुई।

उसके बाद ध्यान मे आया कि अपना जो दोष दीखता है, वह वास्तव मे अपना नही है। वह तो देह के साथ जुडा हुआ है। जो अपना नही, उसे क्या कहना? इसी तरह दूसरो के दोष भी उनके अपने नही है, देह के साथ जल जानेवाले हैं।

मैंने एक महापुरुष से पूछा था। पुरानी बात है 1918 की। मैं महाराष्ट्र मे घूम रहा था, पदयात्रा कर रहा था। उस वक्त उत्तर भारत का एक मुसाफिर आया था, मेरे साथ चार दिन रहा। हमारी चर्चा होती। फिर वह आगे चला गया दक्षिण की ओर। उससे मैंने पूछा, भगवान ने यह क्यों किया धधा, हरएक मे गुण और दोष, दानो क्यो रखे? बोला, ऐसा है, भगवान बडा स्वार्थी है, अगर वह मनुष्य को निर्दोष रखेगा, परिपूर्ण गुण देगा तो मनुष्य भगवान को याद नही करेगा। इसवास्ते भगवान ने अपने मतलब के लिए यह खेल किया है। मेरे मन मे यह बात पैठ गयी। भावार्थ यह है कि अगर मनुष्य मे दोष नही होगा तो नम्रता नही रहेगी।

इसलिए हर चीज का हमे गुण ही गाना चाहिए। गुण भगवान है। यह मैंने अपनी एक नयी खोज निकाली है। पागल की खोज ! कल्पना मैंने यह की कि दूसरो के दोष तो देखना ही नही, अपने भी देखना नही। दोष तो अनत होते है। फिर भी एकाध गुण तो होगा ही। परमेश्वर ने ऐसा एक भी मनुष्य पैदा नही किया, जिसमे एकाध भी गुण नही है। परमेश्वर का अशरूप गुण हरएक मे होता ही है। और कितना भी बडा, महापुरुष हो, वह दोषमुक्त नही होता। भगवान ने हरएक को दोषदान दिया और हरएक को गुणदान दिया। गुण खिडकी है, दोष दीवार है। कितना भी गरीब मनुष्य हो उसके घर को एक दरवाजा तो होगा ही अदर जाने के लिए। वह गुण है। उसी के द्वारा हृदय-प्रवेश हो सकेगा, दीवार से तो सिर टकरायेगा।

तब से मैं अपना भी गुण ही गाता हू। लोग कहते हैं, बाबा घमडी है, आत्म-प्रशसा करता रहता है। पर आत्मा की प्रशसा नही करेगे तो क्या करेगे ? हमे दूसरो के और अपने भी गुण ही देखने चाहिए। गोविंद के गुण गाना। वही असली चीज है। जो देह के साथ जल जानेवाला है, उसकी चर्चा और उच्चारण नही करना चाहिए। इसलिए मैंने एकादशव्रत मे बारहवा व्रत जोड दिया – अनिदा व्रत। वैसे अहिसा मे वह आ ही जाता है, फिर भी मुझे इस व्रत का स्वतंत्ररूप से निर्देश करने की आवश्यकता मालूम हुई।

स्नेहोपासना

मैंने एक सूत्र बनाया है – स्नेहेन सहजीवनम्। मनुष्य को सहजीवन जीना चाहिए। और स्नेहपूर्वक जीना चाहिए। यह

जीवन का मुख्य सूत्र है। परिणाम यह हुआ कि मैंने जिनको पकड़ा उनको अपनी ओर से छोड़ा ही नहीं। और जिन्होंने मेरा साथ लिया उन्होंने भी मुझे छोड़ा नहीं। लेकिन इस बात का भी अहंकार हो सकता है, इसलिए कुछ लोग छोड़ कर चले गये।

मैं घर छोड़ कर निकला, तो मेरे दोनों छोटे भाई घर में रह न सके, दो-तीन साल के अंदर-अंदर घर छोड़ कर मेरे पास आ गये। दोनों ब्रह्मचारी रहे। यह स्नेह का परिणाम है। फिर मेरे जो मित्र थे गोपालराव काले, रघुनाथ धोत्रे, बाबाजी, वगाराम आदि, वे भी घर छोड़ कर आये और अंत तक मेरे साथ रहे। ये हो गये बड़ौदा के मित्र! फिर मैं गया साबरमती। वहां कुछ विद्यार्थी मिले। उसकी एक मिसाल है वल्लभस्वामी। तेरह साल की उम्र में वह मेरे पास आया और 58 साल की उम्र में उसकी मृत्यु हुई। 45 साल सतत मेरे साथ रहा। कौन पुत्र कौन बाप का इससे अधिक साथ देता होगा? उसके बाद में आया वर्धा। वहां के हमारे साथी वालुंजकरजी 1924 से मेरे साथ हैं। फिर भाऊ (पानसे), दत्तोबा (दास्ताने) वगैरह मेरे पास आये। फिर 1946 में रणजित्, रामभाऊ, गिरधरगोपाल आदि। उसके बाद विवेकानंद आदि। ये सब अंत तक साथ रहे। वैसे ही जब मैं 1938 में परधाम आया तब मैंने सूत्र चलाया था – सूत कातना सीखना चाहिए। तब पवनार गांव के कुछ लड़के आते थे। उनको उस वक्त प्रतिघंटा छः पैसा मजदूरी मिलती थी। उनकी मजदूरी बढ़े इसलिए मैंने उन्हें सामने बिठा कर लगातार सात-सात, आठ-आठ घंटा कातना सिखाया। ये महादू वगैरह उसमें थे। तब से वे वहां काम कर रहे हैं भक्तिपूर्वक, निष्ठापूर्वक। उसके बाद ब्रह्मविद्या-मंदिर शुरू हो गया तो कुल भारत से बहनें यहां आयीं। तो बालकोबा, शिवाजी

इन 70 साल के साथियो से ले कर पिछले 12-13 साल के साथियो तक सब मेरे साथ हैं ; क्योंकि मेरा मुख्य सूत्र रहा, स्नेहेन सहजीवनम् ।

और अब क्या कोशिश है ? पाडव स्वर्गारोहण के लिए निकले. एक-एक साथी गिरता गया और अत मे एक कुत्ता युधिष्ठिर के साथ रहा । उसको स्वर्ग मे प्रवेश नही मिला, तो युधिष्ठिर ने भी स्वर्ग मे जाने से इनकार कर दिया । मेरी यही कोशिश है । साथियो को छोड कर अकेले ही वैकुठ मे चले जायें और भगवान के दरबार मे विराजमान हो जाये, यह मुझे मजूर नही । सद्गति हो, दुर्गति हो, कुछ भी हो उनका साथ मुझे मिलना चाहिए यह मेरी सामूहिक आकाक्षा है । बगाल मे श्रीरामकृष्ण को समाधि पहली बार जहा लगी थी, उस स्थान पर मैंने कहा था कि व्यक्तिगत समाधि के दिन अब गये, अब सामूहिक समाधि की जरूरत है । उस दिन मुझे नया शब्द सूझा, सामूहिक समाधि । सामूहिक साधना सामूहिक समाधि और सामूहिक मुक्ति यह कल्पना ले कर मैं चल रहा हू ।

आजकल मैं रोज साथियों के नाम याद करता हू । मेरा यह विष्णुसहस्रनाम है । भारतभर मे जो परिचित वृद्ध है, उनका स्मरण प्रथम करता हू । फिर दूसरे नाम । वृद्धो के नाम इसलिए कि वृद्धो के आशीर्वाद के बिना मनुष्य को उन्नति का साधन नही । यह बहुत समझने की बात है । हम जवान हैं । लेकिन वृद्धो ने हमारी सेवा की हुई होती है, इसवास्ते वृद्धो के आशीर्वाद की हमे अत्यन्त आवश्यकता है । वृद्धो को याद करने के बाद हमारे जो साथी हैं उनको याद करता हू । एक-एक प्रात ले कर वहा के एक-एक साथी को याद करता हू । तो हजार नाम हो जाते है । यह सारा गोरखधधा किसलिए ? क्या लाभ है इसका ? इसलिए कि स्नेहेन सहजीवनम् ।

व्रतोपासना — एक झलक

मैं आहार के बारे में कुछ न कुछ प्रयोग सतत करता आया हूं। और जिसे आध्यात्मिक जिज्ञासा है, उसके साथ यह वस्तु हमेशा रहनेवाली है। क्योंकि शरीर आत्मा की मूर्ति है और मूर्ति के नाते उसका उपयोग होना चाहिए। जैसे प्रकाश लक्षण है और सूर्य लक्षित वस्तु, वैसे आत्मा देवता और शरीर उस देवता की मूर्ति है। मूर्ति को देख कर देवता की कल्पना आनी चाहिए।

बचपन में मै खाने के बारे मे बहुत ही लापरवाह था। खाने का कोई निश्चित समय ही नही था। भूख लगी तो मां के पास मांगना और जो दिया सो खाना। रात को देर तक घूमते रहना। देरी से खाना। इस तरह चलता था। बापू के पास आया। वहा आश्रम में खाने के समय भी नियत, नियमित थे। तो नियत समय पर खाने से क्या लाभ होता है, यह ध्यान मे आया। भूख तैयार रहती थी। नियत समय रहने से लाभ हुआ, ऐसा शारीरिक और उसी तरह मानसिक भी अनुभव आया।

यद्यपि बचपन में खाने-पीने के बारे मे मैं इतना लापरवाह था, करेले की सब्जी मुझे पसद नही थी। मैं उसे खाता नही था। मां बहुत बार कहती कि विन्या, तू अस्वाद की बाते तो बहुत करता है, पर करेला तो तू खा नही सकता। तब मैं कहा करता, सभी स्वाद जीतने का ठेका मैंने थोडे ही लिया है? परतु बापू के आश्रम मे आने के बाद शुरु के दिनों मे ही वह स्वाद जीतने का भी तय कर लिया। उन दिनो भोजन के समय बापू खुद परोसते थे। एक दिन करेले की सब्जी थी। बापू परोस रहे थे तो 'ना' कैसे

कहा जाता । ले ली । पसद नही थी तो सबसे पहले वही खा ली । बापू ने देखा, इसकी थाली मे सब्जी नही है, तो दुबारा परोसी । वह भी चुपचाप खा ली । तो उन्हे लगा कि इसको शायद करेला भाता है, तो तीसरी वार परोसा । तब मैंने तय कर लिया कि करेले के प्रति जो अरुचि है, उसे छोडना होगा ।

मुझे बचपन मे दहीभात बहुत प्रिय था । कोकण मे मेरा जन्म हुआ, तो बचपन मे रोज दहीभात बराबर खाता था । बापू के पास आने के बाद जब बात चली कि शराब पीनेवालों को शराब पीना छोडना चाहिए फलाने को फलाना छोडना चाहिए, तब मुझे लगा कि जब हम दूसरो को उनकी आदते छोडने को कहते है तब पहले हमे अपना भी कुछ छोडना चाहिए, तभी हमे वैसा कहने का हक प्राप्त होता है। तब मैंने दहीभात छोड दिया, क्योकि वह मुझे बहुत प्रिय था। तब जो छोडा सो आज तक छोडा ही ।

शक्कर खाना मैंने 1908 मे ही छोड दिया था । मैं तब 13-14 साल का था । मेरे मन मे ऐसा विचार उठा कि जब तक स्वराज्य हासिल नहीं होता तब तक विदेशी शक्कर नही खायेंगे । वैसा सकल्प ले लिया । एकबार कही भोजन करते हुए मुझे लगा कि जो शक्कर स्वदेशी के तौर पर दी गयी है, वह स्वदेशी नही है । तब मेरे मन मे आया कि विदेशी शक्कर छोडे चार-छः महीने हो गये हैं, अब मुझे शक्कर खाना ही छोड देना चाहिए । तब से मैंने शक्कर खाना ही छोड दिया और 1947 तक शक्कर खायी नही ।

ऐसे ही नमक के बारे मे हुआ । पुरानी बात है । मैं महाराष्ट्र मे पैदल घूम रहा था (1917-18) । हम दस-बारह लोग तोरण-गढ किले पर गये । सोचा था कि खाने की सामग्री ऊपर ही

खरीद लेंगे। पर वहा चावल के सिवा और कुछ नही मिला। हमने सिर्फ चावल ही बनाया। जब खाने बैठे तब लगा कि कम मे कम नमक तो हो, चावल खायेगे कैसे! लेकिन उस दिन वहां नमक भी नही मिला। बिना नमक के ही भात खाना पडा, तो अच्छी तरह भरपेट खाया नही गया। तब मेरे ध्यान मे आया कि ऋषि-मुनि 'यह छोडो', 'वह छोडो' प्रयोग क्यों करते थे। हमे चाहिए कि हम जीभ को घोडा बनाये, वही हम पर सवार न हो। तब नमक छोडने का महत्त्व मेरे ध्यान मे आया और मैंने नियम कर डाला कि आज से मैं एक ही बार नमक लूगा। वैसा चला। कुछ दिन के बाद यह भी मालूम हुआ कि नमक छोड देना इतनी कठिन बात नही है और नमक हमेशा के लिए छोड दिया।

आहार के प्रयोग करते समय मैं हमेशा चतुरग दृष्टि से सोचता हू – (1) अध्यात्म, (2) आरोग्य, (3) स्वदेशी धर्म, (4) अर्थशास्त्र। एक वस्तु एक कारण से उत्तम तो दूसरे कारण से हीन साबित हो सकती है। पर चारों अगों का यथाक्रम पृथक्करण करने के बाद ही बोलना हो तो मैंने उत्तरोत्तर गौण अग माना है। लेकिन ऐसा पृथक्करण मुझे पसद नही है। सभी बातों का समन्वय जिसमे होता है, उसी को मैं सच्ची और पूरी 'अध्यात्म दृष्टि' मानता हूं। उसी को सच्ची और पूरी 'स्वदेशी दृष्टि' मानता हू। उसी को सच्ची और पूरी 'आर्थिक दृष्टि' मानता हू।

मेरा अनुभव है कि आकाशसेवन से मनुष्य का कम कैलरीज मे निभ सकता है। पदयात्रा मे मेरे आहार में कुल 1200-1300 कैलरीज रहती थी। डाक्टरों को बहुत आश्चर्य लगता था कि इतने श्रम के बावजूद इतनी कम कैलरीज मे कैसे निभ सकता है। मैं कहता था कि मैं सबसे ज्यादा आकाश खाता हूं। मेरे आहार

मे नवर एक मे आकाश है। नंबर दो मे वायु। नवर तीन मे सूर्य किरण। फिर चौथे नवर मे पानी। पानी खूब पीना चाहिए। थोडा-थोडा और वार-वार। पानी से मनुष्य का प्राण वलवान होता है। और सबसे कम महत्त्व की चीज है अन्न। अधिक से अधिक आकाशसेवन।

मेरे आहार मे सतोष ही प्रधान है और आरोग्य की कुंजी भी उसी मे है। यो वचपन से ही मेरा शरीर कमजोर है। आहार सुस्वादु बने और वह अस्वाद वृत्ति से लिया जाये, ऐसी मेरी योजना है। इसमे से पहला हिस्सा तो सबको पसद आयेगा, पर उन्हे दूसरा पसद नही आता। जिन्हे दूसरा पसद है, वे पहला पसद नही करते, ऐसा भी मैंने देखा है। दोनो का मेल वैठ जाये तो उसमे से संतोष निर्माण होता है।

* *

गीता मे दैवी सपत्ति के गुण वताते हुए अभय को पहला स्थान दिया है, अभय सत्त्वसशुद्धि', क्योकि विना अभय के कोई गुण पनप नही सकता। सचाई के विना सद्गुण का कोई मूल्य नही है, परंतु सचाई के लिए भी निर्भयता आवश्यक है। सत्य-अहिंसा का पालन निर्भयता के विना हो नही सकता।

सवसे वडा भय तो मनुष्य को होता है मृत्यु का। उसके नाम मात्र से मनुष्य भयभीत होता है। उस भय को जीत लिया तो सव जीत लिया। परतु दूसरे भी अनेक प्रकार के छोटे-छोटे भय होते है, उन्हे भी जीतना होता है।

सव भयो पर उपाय है नामस्मरण, जिसके सामने कुछ टिकता नही। नामस्मरण उपाय है। पर कुछ कोशिश भी करनी पड़ती

है भय से मुक्त होने के लिए। मैं जब बडौदा में था, तब घूमने जाया करता था। एकबार रेल्वे पुल पर से जाने का मौका आया, तो मुझे भय महसूस हुआ। नीचे 30 / 40 फीट गहराई और पुल की एक-एक पटरी पार करना, बडा भय महसूस हुआ। धीरे-धीरे पुल पार कर लिया। फिर रोज वही कार्यक्रम रखा। रोज धीरे-धीरे पुल पार करना। ऐसा एकाध महीना किया तो पुल का डर चला गया। फिर आश्रम में आने के बाद एकबार मैं और काकासाहेब (कालेलकर) आबू गये थे। वापस आ रहे थे एक रेल्वे पुल पर से। पीछे से ट्रेन आयी धाड्धाड् करते हुए। काका पार हो गये, मै पीछे रह गया। उस वक्त मैं चश्मा नही पहनता था, आंखें कमजोर थी। शाम का समय था, अंधेरा होने आया था। मुझे पटरिया दिखायी नही दे रही थी। पर मुझे मालूम था कि ये पटरियां समातर होती है। इसलिए दौडने के लिए मैनें एक ताल तय कर लिया और भगवान का नाम लेते-लेते उस ताल पर दौडने लगा। इजीन एकदम नजदीक आ गया है यह मै समझ गया था। काकासाहेब दीखते नही थे, परतु उनकी आवाज सुनी, "बायी ओर कूदो" और मै कूद पडा। दूसरे ही क्षण ट्रेन वहा से निकल गयी।* बडौदा में जो अभ्यास किया था पुल पर से चलने का, उसका लाभ उस वक्त मिला। उस समय डरता तो मामला खतम था। इस प्रकार के भय होते है. वे कुछ स्थूल कार्य करने से जाते है, परंतु मुख्य बात भगवान का स्मरण है।

---

* इस घटना के बारे मे काकासाहेब कहते थे – 'विनोबा नीचे कूद पडे और मैंने उन्हे अपनी बाहो मे थाम लिया। उस वक्त रेलगाडी की आवाज के साथ-साथ विनोबा के मुख से निकलनेवाला प्रभु-नाम भी सुनायी दिया।' – स.

ऐसी ही एक दूसरी घटना है। जेल मे मुझे एकात कोठरी मे रखा गया था। छोटी-सी कोठरी थी 8×9 की। रात को मेरा मौन रहता था। एक दिन रात को सोने की तैयारी कर रहा था, तो देखा कि मेरी खटिया के नीचे एक साप है। कोठरी बाहर से बद थी, मैं बाहर नही जा सकता था। और मौन था इसलिए किसी को बुला भी नही सकता था। थोडी देर सोचा कि क्या करना चाहिए ? क्या मौन का भग कर किसी को बुलाना चाहिए ? फिर मन मे आया, व्रत का भग करना तो ठीक नही। और वह, जो आया है, वह मेरा अतिथि है। अतिथि को बाहर कैसे निकाला जा सकता है ? मैं और वह, दोनो रहेगे। यो सोच कर सो गया। इतना ही किया कि रोज लालटेन बुझा देता था, उस दिन बुझाया नही, क्योंकि रात को अगर उठू तो पैर उस पर न पडे। रोज सोते ही दो मिनट के अदर-अदर मुझे नीद लग जाती है, उस दिन दो के बदले ढाई-तीन मिनट लगे होगे। बाकी गहरी निःस्वप्न निद्रा आयी। सुबह उठ कर देखा, वह कही चला गया था।

नामस्मरण से बढ कर दूसरा उपाय नही, परतु, अभ्यास से भी निर्भयता पनपती है।

* *

कर्मनिष्ठा का अर्थ है, शारीरिक परिश्रम और शारीरिक परिश्रम द्वारा भगवान की पूजा – यानी श्रम तो शरीर से करना है, पर वह भगवान की पूजा समझ कर करना है। परिश्रम और पूजा एक ही होना चाहिए। स्थूल परिश्रम-निष्ठा गयी तो पहले ऐहिक नुकसान होगा और बाद मे पारमार्थिक नुकसान होगा। और उपासना (पूजा) की भावना गयी तो पहले पारमार्थिक नुकसान होगा और बाद मे ऐहिक। इसलिए पूर्ण कर्म के लिए दोनो का होना आवश्यक है।

इसी विचार के आधार पर, हमारे 24 घंटे कैसे बीते, इस विषय मे मेरी एक कल्पना रही। हमारे पास रोज के 24 घटे है। उनमे से आठ घटे निद्रा या आराम में जायेगे। हरएक को आठ घटे आराम लेना ही चाहिए। मैंने निद्रा के बहुत प्रयोग किये हैं। कई दिनों तक 24 घंटों मे से दो ही घंटे निद्रा लेना, फिर चार घंटा, इस प्रकार दस-दस घटे सो कर भी देखा। बारिश मे भी सो कर देखा। ऊपर से बारिश बरस रही है और मैं कबल ओढ कर सोया हूं। इस प्रकार अनेक प्रयोगों के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुचा हू कि साधारणतया स्वस्थ मनुष्य के लिए आठ घंटे आराम आवश्यक है और उससे ज्यादा की जरूरत नही। तो आठ घटे नींद मे जायेंगे।

बचे हुए 16 घटों मे से पाच घटा स्नान-भोजन आदि दैहिक कार्य मे जायेंगे। दो घटे आध्यात्मिक कार्य मे, जिसमे प्रार्थना आदि वाड्मयीन उपासना और कताई जैसी कोई कर्ममयी उपासना और एक घटा बचे हुए कार्य की पूर्ति के लिए। तो ये आठ घटे हो गये।*

बचे हुए आठ घटे सार्वजनिक कार्य मे या नम्र भाषा इस्तेमाल करनी हो तो अपने धधे मे लगायें। इसको हम सार्वजनिक कार्य भी कह सकते है, अपना धधा भी कह सकते हैं, कोई फरक नही पडता। भगवान ने मनुष्य को पेट दिया है, उसमे उसका बहुत बडा उद्देश्य है। धर्म से पेट भरना, 'शरीरयात्रा' चलाना पारमार्थिक कार्य ही

---

* ब्रह्मविद्या-मदिर मे (1970) विनोबाजी ने कहा था कि सफाई-कार्य को इसी प्रकार उपासना माना जा सकता है। यह भी बताया था कि एकाध घटा 'अकर्म' के लिए भी रखना चाहिए – सं

है – पारमार्थिक साधना है। जिस काम से रोटी मिलती है और दूसरों की सेवा होती है, वह हमारा धधा है। जिस काम से दूसरो के हाथ की रोटी छीन ली जाती है, वह धधा नही, वह चोरी है। कोई किसान या कोई शिक्षक अपना खेती का या सिखाने का काम ईमानदारी से, किसी का शोषण किये विना करता है, तो उसका वह काम सार्वजनिक सेवा ही है!

पदयात्रा मे लोग मुझसे पूछते कि बाबा आप पैदल यात्रा का इतना आग्रह क्यो रखते हैं? मैं कहता, इसके कई कारण हैं, पर एक कारण यह भी है कि हम चाहते हैं कि जरा शरीरश्रम हो। यह मेरा 'ब्रेड-लेबर' (रोटी के लिए शरीरश्रम) है। लोग मुझे खाना देते है और मैं दस-पाच मील चलता हू तो मान लेता हू कि मेरे हाथो कुछ 'ब्रेड लेबर' हुआ। इस तरह यात्रा के साथ मैंने 'ब्रेड-लेबर' का नाता जोड दिया। उससे पहले तीस साल तक तो 'ब्रेड-लेबर' के सिद्धात पर ही मेरा जीवन चला। साधारणत आठ घटे काम तो मेरा होता ही था, पर कभी-कभी ज्यादा भी होता था। शिक्षक का काम तो मैंने किया ही पर कभी खेती, कभी पानी सीचना, पिसाई, भगी-काम, कताई, बुनाई, धुलाई, बढई-काम तरह-तरह के काम मैं घटो सतत तीस साल करता रहा।

काचनमुक्ति का प्रयोग शुरू होने के वाद सन् 1950 मे चरखा द्वादशी (तिथि से गाधी-जयती) के दिन तो मैंने यहा तक अपना निर्णय जाहिर कर दिया कि मेरा जीवन आज तक एक भिक्षुक का जीवन था। आगे भी मुझे भिक्षा पर ही जीना है। परतु फिलहाल मैंने तय किया है कि इसके आगे केवल श्रम के ही दान का स्वीकार करूगा। और मैं स्वय जितना हो सकेगा उतना शरीरश्रम तो

करता ही रहूंगा। उस समय मैंने तीन दिन का उपवास भी किया था। श्रम पर ही जीवन चलाने का विचार जेल से बाहर आया (1945) तभी से मेरे मन मे था। वैसे विचार तो उससे भी बहुत पहले से था, फिर भी उस समय जेल में पक्का निर्णय हो गया। हर बात का एक समय होता है। समय आने से पहले वह विचार व्यवहार में नही आता। मुझे लगा कि वह समय अब आ गया है, इसलिए गाधीजयंती के निमित्त से मैंने उसका प्रारभ कर दिया।

इस प्रकार मैं शरीरश्रम करता रहा तो उससे मेरी बुद्धि की शक्ति बहुत बढी, कम नही हुई। मैं यह नही कहना चाहता कि जो रातदिन केवल शरीर-परिश्रम करेगा, उसकी बुद्धि तीव्र होगी। किसी चीज की 'अति' हो जाती है, तो विकास रुक ही जाता है। मैं यही कहना चाहता हूं कि जिस जीवन में शरीरश्रम का अच्छा अंश और उसके साथ चितन भी है, वहा अच्छा बुद्धि-विकास होगा।

मेरा यही अनुभव है। बचपन मे मेरी स्मरणशक्ति अच्छी यानी साधारण मध्यम से कुछ अच्छी थी, पर फिर 60-62 साल की उम्र मे वह बचपन से बहुत ज्यादा तीव्र हुई। जो चीज याद रखने-लायक है, उसे मैं नही भूलता।* कभी किसी पुस्तक मे मैंने अच्छा विचार पढा और वह जचा तो वह उस भाषा के साथ मेरे ध्यान मे रहता है। इसके कई कारण हैं, पर एक कारण यह जरूर है कि जीवन मे शरीर-परिश्रम का अंश रहा है। शरीर-परिश्रम से जीविका हासिल करने के एक बडे सिद्धात को मान्य कर उसी के आधार पर नयी तालीम बनी है।

* *

---

*विनोबाजी ने ऐसे ही एक सदर्भ मे कहा है— जो चीज याद रखने की नही है, उसे मैं सुनते-सुनते या पढते-पढते ही भूल जाता हू — सं

दो टुकडे नही

व्यक्तिगत जीवन व्यवस्थित करने से सामूहिक जीवन की मदद मिलती है। बापू के पास आने के बाद मैं घटी बजते ही उठता था और प्रार्थना की हाजिरी मेरी कभी चूकती नही थी। वहा सामूहिक प्रार्थना न होती तो व्यक्तिगत जीवन को व्यवस्थित बनाने मे मुझे सफलता मिली, वह न मिलती।

असल मे जीवन के सामाजिक और व्यक्तिगत, ऐसे दो टुकडे होने ही नहीं चाहिए। जब तक ये दो टुकडे एक नही होते तब तक जीवन मे खिचाव बना रहेगा। हमारा हरएक व्यक्तिगत कार्य सामाजिक और हरएक सामाजिक कार्य व्यक्तिगत होना चाहिए। हमारे और समाज के बीच कोई दीवाल नही होनी चाहिए।

जब मैं अपने बारे मे सोचता हू, तो खुदका खाना, सोना भी सामाजिक जिम्मेवारी समझता हू। यह भेद नही कर पाता कि ये मेरे निजी कार्य है। यानी उन्हे समाज सेवा का अंग मानता हू। रात को ठीक समय पर सोना, निःस्वप्न निद्रा पाना, ठीक समय पर उठना, यह सारा सामाजिक सेवा के कार्यक्रम का अंग समझता हू। मुझे यह भास नही होता कि मैं इतना समय सामाजिक सेवा मे लगाता हू और इतने घटे व्यक्तिगत काम में देता हू। 24 घटे मे मेरी जितनी क्रियाए होती हैं, वे सबकी सब सामाजिक सेवा की होती हैं, ऐसा मैं अनुभव करता हू। इसमे कोई शक नही कि जिसका आम जनता से सपर्क कम हुआ, उसने ईश्वर का एक बहुत बडा साक्षात्कार खोया। ईश्वर के तीन साक्षात्कार होते है। एक आम जनता के रूप मे, दूसरा विशाल प्रकृति के रूप मे, तीसरा अतर्यामी के रूप मे। तीनों मिल कर ही परमात्म-साक्षात्कार पूर्ण होता है।

अनुभूति

'विचार पोथी' मे मैंने एक विचार लिखा है कि किसी ने मुझे पूछा, सामने के दीपक को जितना आप निश्चित कह सकते हैं, उतना ही क्या आप ईश्वर के अस्तित्व के विषय मे निश्चित मानते हैं ? मैंने उत्तर दिया, परमेश्वर के अस्तित्व के विषय मे तो मैं निश्चित ही हू, मुझे तो इस बात का यकीन नही है, या मैं यकीन नही दिला सकता कि सामने जो दीपक है, उसका अस्तित्व है या नही ! उस दिये के अस्तित्व की कोई गैरटी मैं दे नही सकता हू । विचार-पोथी का मेरा यह वचन 1928 का है । इस बात को तीस साल (1958) हो चुके । ईश्वर को साक्षात् देखने का आभास मुझे कितनी ही बार हुआ है । कुछ श्रद्धा के कारण भी ऐसा होगा, जो कुटुब से मुझे मिली थी । कुछ ग्रथों पर विश्वास है, उस कारण भी होगा । परतु उतने पर मेरी श्रद्धा निर्भर नही है, बल्कि वह आंखों से देखती है कि सामने ईश्वर है । बाकी जो भिन्न-भिन्न प्राणी, जीव, मनुष्य सामने खडे है, ये सारे उस ईश्वर के अनेक सकल्प हैं ।

अक्सर पूछा जाता है, साक्षात्कार की क्या कल्पना है ?

एक बात तो यह कि बुद्धि को जच जाये तो साक्षात्कार को आधार मिलेगा । बुद्धि को ग्रहण नही होता तब तक साक्षात्कार का प्रश्न पैदा नही होता । प्रथम बुद्धि को ग्रहण होना चाहिए । ग्रहण होने के बाद उसका अनुभव आना दूसरी वस्तु है । बुद्धि को जचना ज्ञान है और उसके बाद का अनुभव है, विज्ञान या

साक्षात्कार ! मिसाल के तौर पर करुणा का साक्षात्कार ले। विश्व मे करुणा भरी है, बुद्धि को यह बात जचनी चाहिए। विश्व मे करुणा की योजना है। मेरी मा की मुझ पर करुणा न होती तो मेरा सवर्धन न होता और मुझे मेरे अपने सवर्धन की आवश्यकता है। बुद्धि को करुणा की आवश्यकता महसूस होनी चाहिए और यह बात ध्यान मे आनी चाहिए कि सृष्टि मे करुणा है। फिर करुणा का अनुभव होगा। ऐसी करुणा, जो मा को बच्चे के लिए होती है, हम अनुभव करेगे, वह करुणा का साक्षात्कार होगा।

करुणा का साक्षात्कार

मुझमे जो करुणा है, वह व्यक्तिगत नही है, समाज के लिए है। जैसे फलाना मनुष्य बीमार पडा, या मेरा तो मुझ पर कुछ भी असर नही होता है, इतना मैं कठोर हू। लेकिन कुल जमात के लिए जो करुणा मुझ मे है, वह नही होती, तो जीवन खतम हो जाता। मेरा एक तत्त्व-विचार है कि जहा आप समानरूप से कारुण्य चाहते है, वहा व्यक्तिगत आकर्षण नही होना चाहिए। नही तो ईर्षा, मत्सर, राजाओं के पास ही नही, महापुरुष के साथ रहनेवालों मे भी चलता है। इसलिए मैं मानता हू कि भूतदया का विस्तार हुआ तो उसमे प्रेम की उछल-कूद नही रहेगी, बल्कि गहराई रहेगी, जैसे गहरा पानी शात होता है। आकाश व्यापक बना तो शून्य हुआ।

यह साक्षात्कार करुणा गुण तक ही सीमित है। एक छोटा-सा साक्षात्कार है। इसके अलावा व्यापक साक्षात्कार भी होते है, जिसमे अनेक प्राचीन पुरुषो का भी सबध आता है।

फिर एक और भी पहलू है। जैसे रेडियो पर हम दूर की आवाज सुन सकते है, कब? जब हमारे पास रेडियोसेट होता है तब। रेडियोसेट न होगा तो हम आवाज सुन नही सकेंगे। लेकिन तब भी वातावरण मे वह भरी पडी है। विज्ञान ने यह बात सिद्ध की है। वैसे ही, इसका साक्षात्कार हो सकता है, बशर्ते 'वैसा रेडियो-सेट' हमारे पास हो। प्राचीन पुरुषों की आवाज वातावरण मे फैली हुई है, भरी पडी है। वह ग्रहण करने की शक्ति जिसके पास होगी, उसको वह स्पर्श करेगी।

प्राचीनो से सपर्क

मै कई दफा कहता हू कि बापू से मेरी बातचीत होती है। जब वे थे, तब उनसे मिलने के लिए पाच मील चल कर जाना पडता था। दो घटे लग जाते थे। तकलीफ होती थी। अब आख बद करता हू तो एक सैकड मे मुलाकात हो जाती है। प्रश्न पूछ सकता हू, उत्तर भी मिलते है। कुछ भी तकलीफ नही। तब तो शरीर का बधन था। अब उनको मुक्ति मिली है। वे सबदूर है। बधन है नही। मैं हू बधन मे अभी। लेकिन जब तक देह मे हू, उनकी ओर से प्रेरणा मिलती रहेगी।

वैसे ही मैने यह भी कई दफा कहा है कि मै यात्रा कर रहा हू तो मेरे आगे राम जा रहे हैं, पाच पांडव जा रहे है, बुद्ध, महावीर, शंकर, रामानुज, कबीर, नामदेव... सब जा रहे हैं। उनके पीछे मै जा रहा हू। उनका साथ है। बाबा अकेला नही। कभी भी अकेलापन महसूस नही होता। निरतर यही महसूस होता है कि वे साथ हैं।

तूफान-यात्रा की बात है। मेरा मुकाम बेतिया में था। एक दिन रात को स्वप्न आया। एक सात्विक मुद्रा का व्यक्ति मेरे सामने बैठ कर मुझसे बात कर रहा था। विनयांजलि पर चर्चा चल रही थी। उसने दो भजनों का अर्थ पूछा था, कुछ शंकाएं पूछी थी। मैं समझा रहा था। वह एकाग्रता से सुन रहा था और बार-बार सम्मतिदर्शक सिर हिला रहा था। थोड़ी देर के बाद मेरे ध्यान में आया कि ये तो साक्षात् तुलसीदासजी हैं, जो मुझसे बात कर रहे हैं। और मेरी नींद टूट गयी। मैं सोचने लगा, यह क्या हुआ? तो स्मरण हुआ कि आज तुलसीजयंती है। हर साल तुलसीजयंती के दिन मैं तुलसीरामायण या विनयपत्रिका देख लेता हूं और तुलसीदासजी का स्मरण कर लेता हूं, परंतु उस दिन तुलसीजयंती का स्मरण मुझे नहीं रहा था। तो रात को तुलसीदासजी मुझसे बात कर के गये। उस दिन उन भजनों के नये अर्थ मुझे सूझे।

एकबार मनोहरजी के एक प्रश्न के सिलसिले में मैंने ज्ञानेश्वरी की एक ओवी का विवेचन किया। उस रात को सो गया तो ज्ञानदेवमहाराज की विन्या के साथ बात हुई। ज्ञानदेवमहाराज ने कहा, "विन्या, यह तो तू ठीक समझा है कि 'बोला-बुद्धीसी अटक' यह जो मैंने कहा है, वह 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह', इस उपनिषद-वाक्य पर से कहा है और वहां 'वाचा-मनस्' के बदले 'बोला-बुद्धि' शब्द रखा, लेकिन वह सहज ही रखा ऐसी बात नहीं है। उपनिषद ने 'मनस्' में बुद्धि का अंतर्भाव मानना चाहिए और ज्ञानेश्वरी ने 'बुद्धि' में मनस् का अंतर्भाव मानना चाहिए। लेकिन मैंने बुद्धि शब्द क्यों इस्तेमाल किया, वह उपनिषद में जो मनस् है, उस पर से तू सोच ले तो ध्यान में आयेगा।" इतनी बात हुई। फिर मैंने सोचना शुरू किया, चला आधा घंटा।

तेलंगना : साक्षात् संवाद

तेलंगना में (18 अप्रैल 1951) पोचमपल्ली में हरिजनों ने जमीन की मांग की और सौ एकड़ जमीन दान में मिल गयी। उस रात को तीन-चार घंटे ही मुझे नींद आयी। यह क्या घटना घट गयी ? मैं सोचने लगा। मेरी भगवान पर श्रद्धा है और भगवान के बाद नंबर दो में गणितशास्त्र पर विश्वास है। तो मेरा गणित चला। अगर सारे भारत के भूमिहीनों के लिए जमीन मांगना हो तो भूमिहीनों को संतोष देने के लिए पांच करोड़ एकड़ जमीन चाहिए। क्या इतनी जमीन ऐसे मांगने से मिलेगी ? फिर साक्षात् ईश्वर से संवाद चला। बिलकुल यहां सामनेवाले से बात करता हूं, वैसी बात हुई। उसने कहा, 'अगर इसमें डरेगा और शंका रखेगा, तो तेरा अहिंसा आदि का जो विश्वास है, उसको हटाना होगा। तब तुझे अपना अहिंसा का दावा छोड़ देना होगा। इसलिए श्रद्धा रख और मांगता जा।' और फिर एक बात कही, 'जिसने बच्चे के पेट में भूख रखी है, उसने माता के स्तन में दूध रखा है। वह अधूरी योजना नहीं बनाता।' अब मेरा समाधान हो गया। और दूसरे दिन से मांगना शुरू किया।

चांडिल : निर्विकल्प समाधि

भूदान-यात्रा की बात है। चांडिल में मैं मालिग्नंट मलेरिया से बीमार हो गया। बुखार तेज था, अशक्तता इतनी थी कि मेरे बचने की किसी को आशा नहीं थी। उस वक्त, मेरे मन की दोनों

तरह से अच्छी तैयारी थी। यदि भगवान मुझे उठा ले जाता तो मैं नही कह सकता कि मुझे थोडा भी दु:ख होता। लेकिन जब एक दिन (17 दिसबर 1952) मुझे भास हो रहा था कि अब यहाँ से जाना है और बुखार भी बहुत था, उस दिन लोगो से मैंने कहा कि मुझे जरा बैठाओ। उन्होने पकड कर मुझे बैठाया। मै सीधा चिंतन मे लग गया। मेरा ख्याल है कि कोई पचीस मिनट तक या आधा घटा मैं चिंतन मे बैठा रहा। उस समय मुझे जो आनद और दर्शन हुआ वह बावजूद इसके कि ध्यानयोग का मुझे बहुत अभ्यास है, उससे पहले कभी नही हुआ था। एक नि सीम, अबाध आनद मिला, अपार शाति मिली। लगता था, मानो मैं ईश्वर के पास पहुच रहा हू, जैसे उसे साक्षात् देख रहा हू। आप उसे आभास कहिए, मिथ्या कहिए, कुछ भी कहिए। शकराचार्य ने तो दुनिया को ही मिथ्या बतलाया है। यह अनुभव दुनिया से बाहर का नही है। इसलिए आप मिथ्या कह सकते है। आध घटे के बाद मैं जाग पडा और अपनी नयी दुनिया से बाहर आया। जिसे शास्त्र मे निर्विकल्प समाधि कहते है, वैसा वह अनुभव था। निर्गुण स्वरूप का वह अनुभव था।

मेरे शरीर को पसीना आया था और बुखार भी उतर गया था। मेरी तो तैयारी थी। जिसने दुनिया का बोझ उठाया है, उसी ने मेरा भी बोझ उठाया है। अगर वह मुझे बुलाता है, तो मैं तैयार था। दूसरी तरफ मन की यह भी तैयारी थी कि यदि आरोग्य-लाभ हुआ और चगा हो गया तो बहुत-से शारीरिक और मानसिक दोष भी निकल गये होंगे और मुझे मानसिक बल मिलेगा।

मैं पहले से शरीर मे कमजोर था। शरीर की अत शक्ति भी कम हो गयी थी। लेकिन मन की हालत देखता था तो उत्साह ही

उत्साह भरा था। इतना कि वेद मंत्र याद आया, 'हन्ताऽहं पृथिवीं इमां इह वा इह वा' – लगता है कि इस पृथ्वी को इधर फेंकू या उधर फेंकू!

उलाव : सगुण स्पर्श

यात्रा बिहार के मुगेर जिले मे चल रही थी। उलाव गांव में मुकाम था। एक शिवालय के तलघर मे सभा थी। अक्सर शिवालय भूमि के अंदर होता है और ऊपर सभागृह होता है। यहा उलटा था। सभागृह नीचे था और ऊपर शिवालय था। सभा मे मेरे बैठने का स्थान ठीक शिवलिंग के नीचे था। वहा बैठे हुए मुझे अनुभव हुआ कि भगवान शिव मुझ पर आरूढ हुए है और मैं नदी हू। अब 'अधिरूढ समाधियोग' का नया अर्थ मेरे ध्यान में आया। अब तक मैं उसका अर्थ करता था योगारूढ, योग पर आरूढ हुआ। परतु अब तो अर्थ यह हुआ कि योग ही जिस पर आरूढ हुआ है, योग का जो वाहन बना है। यह सगुण स्पर्श था। तब तक मैं कार्यकर्ताओ को डाटता था, उन्मत्त जैसा बोलता था, मेरे बाद के भाषणों मे इस दृष्टि से फरक दिखायी देगा, अगर सूक्ष्मता से देखेंगे।

केरल साक्षात् आलिंगन

अगस्त 22, 1957 का दिन था। कर्नाटक मे प्रवेश करने के दो दिन पहले की बात। मैं रात को मच्छरदानी के अंदर सोया था। लगा, बिच्छू ने काटा है, तो बाहर आया। बिस्तर की

सफाई की तो उसमे कानखजूरा निकला। सतत वेदना हो रही थी। इतनी वेदना कि एक जगह बैठ नही सकता था, यहा से वहा तक घूम रहा था। असह्य वेदना थी। इस कार्यक्रम मे पाच घटे निकल गये। आखिर बिस्तर पर लेट गया। आखों से झर-झर आसू बहने लगे। वल्लभ को लगा, वेदना से आसू आ रहे है। मैंने कहा, मुझे कोई दु.ख नही है, तुम सब लोग सो जाओ। मै मन ही मन बोल रहा था –

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेमदीये
सत्य वदामि च भवान् अखिलान्तरात्मा
भक्ति प्रयच्छ रघु-पुगव निर्भरा मे
कामादि-दोष-रहित कुरु मानस च

परतु दुःख दूर हो, यह इच्छा तो थी ही। 'सत्य वदामि' कह रहा था। परतु 'झूठ वदामि' ही था वह। अहकार ही था वह! मैंने मन ही मन जोरो से कहा – कब तक सतानेवाले हो ? और मेरी वेदनाए पूर्णत खतम हो गयी। मुझे आलिगन का अनुभव आया। मेरी आखों से आसू बहने लगे। मैं सो गया और दो मिनट मे मुझे नीद लग गयी। यह अनुभव सगुण था।

पढरपुर : साक्षात् दर्शन

महाराष्ट्र की पदयात्रा मे मैं पढरपुर पहुचा। वहा विठोबा के मदिरवालों ने दर्शन के लिए आने का मुझे निमत्रण दिया। मेरे साथ सभी धर्म-जाति के लोग थे। उनके साथ मैंने विठोबा का

दर्शन किया (29.5 58)। उस दिन वह जो दृश्य मैंने देखा, उसे मैं जीवनभर भूलूंगा नहीं। उसकी इतनी गहरी छाप मेरे हृदय पर अंकित हुई है। विठोबा के चरणों के पास मैं खडा था, उस समय मुझे जो अनुभव हुआ, उसको शब्दों मे रखना कठिन है। मेरी आखों मे लगभग एक घटे तक आसुओं की धारा बहती रही। मैंने उस मूर्ति को देखा, वहां मुझे कोई पत्थर नही दिखायी दिया। वहा मैंने साक्षात् भगवान का रूप प्रकट होते देखा। जब मैं वहा जाने लगा, तब किनकी सगति मे जा रहा था? वे थे रामानुज, नम्मलवार, ज्ञानदेव, चैतन्य, कबीर, तुलसीदास। बचपन से जिनकी सगति में आज तक रहा, उन सबकी मुझे याद आ रही थी और जिनकी संगति मे मैं पला उन सबका स्मरण मुझे होता था। दर्शन के लिए जब उस मूर्ति के सामने अपना सिर झुकाया, तब मैंने अपनी मां को वहा देखा, अपने पिता को वहा देखा, अपने गुरु को वहां देखा। मैंने किसको वहा नही देखा? जितने लोग मुझे प्रिय हैं, वे सब मुझे वहा दीखे। उन सबको मैंने वहा तृप्त हो कर देखा।

मैंने ईश्वर के स्वरूप को इस तरह समझा है कि वह एक चैतन्य-समुद्र है और उसमे लहरे उठती हैं और गिरती है, उछलती हैं और समुद्र के अदर ही फिर घुलमिल जाती हैं। फिर से नयी लहरे उठती है और फिर से घुलमिल जाती हैं। एक जीवात्मा यानी ईश्वर की एक लहर उठी। एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म उछलती रही और आखिर उसके अंदर लीन हो गयी, तो जीवात्मा मुक्त हो गया। उसमें कोई ऊचा नही, कोई नीचा नही, सिर्फ तरह-तरह के सकल्प उठते हैं।

मुक्त :

चतुर्थ खंड : सन् 1970 से 1982

अभिध्यान

दूध के कण कण मे मलाई सचित है। इतना ही कि दूध तपाने से वह अलग दीख पडती है। उसी तरह विश्व मे ब्रह्म भरा हुआ है। तपश्चर्या से, साधना से उसे प्रकट करना होता है। उस हद तक ही तुम-हम साधको का काम। वह जिन्होने किया, उन्हे मानो, मलाई अलग छाट कर दी गयी। जिसकी प्रभा को इतना दर्शन हुआ, उसे वह दूध तपा कर मलाई छाटने की भी जरूरत नही।

संतो की कृपा से यह दर्शन मुझे मिला। समग्र ब्रह्मानुभूति, तृप्तिरूप सहज वाक्स्फूर्ति और निरतर विश्वप्रीति, ऐसा मेरा जीवन बन गया है।

देह पर आशा ही नहीं है। तो उससे उदास होने का भी कारण नहीं है। अब मैं अलग और दूसरे जीव अलग, ऐसा आभास करने जाऊ तो भी सधेगा नही। जीवन मे ईश्वर पैठ गया है। और तज्जन्य आनद मत देख ही रहे हैं।

अब दुनिया मे निवृत्ति का धर्म जागे और सर्वत्र हरिनाम का उत्साह रहे। मेरी इह-पर-कर्तव्य भावना, सभी खडित हो चुकी है। केवल एक नाम-स्मरण की लगन है।

2 नवंबर 1969 · मैं स्वगृह से निजगृह (वर्धा) मे आया हू । सात दिन सेवाग्राम मे रहूंगा । आगे का भगवान जाने !

सात दिन का कार्यक्रम

15 नवबर 1969 मैंने तय किया है कि सात दिन का ही कार्यक्रम तय करूगा । आगे का नही । आज दोपहर तीन बजे यहा (सेवाग्राम) से मुकाम हटेगा और शातिकुटी (गोपुरी-वर्धा) जायेगा ।

7 जून 1970 : आज जून की सात तारीख है । मैंने सोचा कि क्यो न ब्रह्मविद्या-मदिर जाया जाये ! 54 वर्ष पूर्व इसी दिन बापू के पास पहुचा । चार साल पहले इसी दिन सारी सेवा बापू को समर्पित कर मुक्त हो गया और सूक्ष्म मे प्रवेश किया । तो आज ब्रह्मविद्या-मदिर में जाने और सात दिन वहा रहने का तय कर सकते है । और मैं तुरत पवनार के लिए चल पडा । थोडा रास्ता पैदल चल कर मोटर मे बैठा ।

यहा (ब्रह्मविद्या-मदिर) बहनो को मैंने कहा कि सात दिन के लिए यहा आया हू । मैं अपने को बाध लेना नही चाहता । उधर बिहार मे नक्सलवादियों ने सर्वोदय कार्यकर्ताओं को धमकी दी है, यह खबर सुन कर जे पी. अपना आराम का कार्यक्रम रद्द कर बिहार के गाव-गाव मे घूम रहे है और हम अपना 'माइंड' (दिमाग) बद रखें, यह हो नही सकता । मैंने अपना 'ओपन माईंड' (खुला दिमाग) रखा है ।

14 जून 1970 : आज यहा आ कर एक सप्ताह हो गया ।

अगले सप्ताह में हम यहीं रहेंगे। बहनें पूछ रही हैं, सात दिन का ही निर्णय करने के पीछे क्या उद्देश्य है? उद्देश्य यह है कि उससे सदा ताजगी रहेगी। भले ही सात-सात दिन का निर्णय कर के एक ही स्थान पर सात साल ही क्यों न रहा जाये? सात दिन का ही निर्णय करते है, तो ताजगी के साथ-साथ सावधानता भी रहती है।

अब यह कार्यक्रम तय कैसे होता है? क्या कोई भगवत्-सकेत मिलता है? भगवत्-संकेत तो नही मिलता, न प्रवाह से तय होना है, लेकिन सकेत मिलना है। मान लीजिए, चिडिया उड गयी, उसकी तरफ ध्यान गया, तो बाबा रहता है। चिडिया उड गयी, खास आकर्षण नही हुआ, ध्यान नही गया, तो चलो, छोडो स्थान को, सकेत मिल गया। मुझे यहां खीचनेवाली शक्ति 'भरत-राम' है। लेकिन भरत-राम तो सवदूर दुनिया मे व्यापक है, इसवास्ते इसी स्थान मे रहना चाहिए, ऐसा बधन भरत-राम डालता नही। फिर भी आकर्षण है।

क्षेत्र-सन्यास

सितबर 1970 मेरा चित्त यहा स्थिर हो गया है। सात-सात दिन के कार्यक्रम की जो बात है, उसके बारे मे इतना ही है की हम 'ओपन माईंड' रखते है। हिंदुस्तान में कही कुछ घटना हो जाये तो जाने का सोच सकते हैं। लेकिन चित्त में यही रहने का विचार स्थिर हो गया है। ब्रह्मविद्या को मजबूत करने की तरफ ही ध्यान देना है। यहां जो काम चलेगा, उसमे मैं ध्यान दूगा। यहा का काम तो सर्वसम्मति से चलता है, वह वैसा ही

चलेगा। सिर्फ एक काम मे मैं ध्यान दूगा – सफाई मे। बाकी जो लोग आयेंगे और दिल की बात खोल कर सामने रखेंगे, व्यक्तिगत तौर पर प्रश्न पूछेंगे, तो उनके जवाब दूगा। धीरे-धीरे ध्यान का विकास होगा।

6 अक्तूबर 1970 आज मैं यहा (सेवाग्राम) इसलिए आया हू कि कल से मैं स्थानकवासी होनेवाला हू। जैनो मे एक आचार है स्थानकवास। जैसे अनेक वस्तुओ का त्याग करते है, वैसे अनेक क्षेत्रों का भी त्याग करते है। कल से मेरा स्थानकवास शुरू होगा। हरएक दिन पवित्र होता है, लेकिन कल का दिन मेरे लिए विशेष महत्त्व का है। चालीस साल पहले 7 अक्तूबर को मैंने गीताई लिखना प्रारभ किया था। इसलिए कल से मैं 'डिटेन्शन कैंप' मे प्रवेश करूगा। जैनो की परिभाषा मे यह मेरा स्थानकवास, हिंदुओ की परिभाषा मे क्षेत्र-सन्यास, आधुनिक परिभाषा मे 'डिटेन्शन कैंप' है। जब मनुष्य अपने को इस तरह से रोक लेता है, तब सबको सुविधा होती है। कल से मैं यहा नही आ पाऊगा। लेकिन हमारा शुभ संकल्प यहा के लोगो के साथ रहेगा। अब उस जगह (ब्रह्मविद्या-मदिर) से मैं हटूगा नही। यह मेरा अपना विचार नही है। अदर से ही आवाज आयी, उसे मैंने आदेश नाम दे दिया। कब तक यहा रहूंगा? दूसरा आदेश मिलने तक। आप मेरे पास आते जाइए। कुछ पूछना हो तो पूछने के लिए तो आ ही सकते है, पर सहज मैत्री के लिए आइए, शतरंज खेलने के लिए भी आइए।

सूक्ष्मतर मे प्रवेश

अक्तूबर 1970 . इन दिनो मेरा मानस मौन की ओर झुका

हुआ है और शरीर भी बहुत कमजोर हुआ है। मैं तो आशा करता था कि इस वक्त भगवान मुझे उठा ले। लेकिन उसकी इच्छा दूसरी थी। शायद इस शरीर से वह और कुछ सेवा लेना चाहता है। क्या सेवा लेना चाहता है, इसका आदेश उसी से मिलेगा।

अभी जो काम हुआ (ग्रामस्वराज्य-निधि संग्रह[*]) वह बहुत सफल हुआ, ऐसा मैं मानता हू। लोकमान्य के लिए स्वराज्य फंड इकट्ठा किया गया था। लेकिन लोकमान्य उन दिनो कीर्ति के शिखर पर थे। इस वक्त बाबा अपकीर्ति के शिखर पर है। देश मे बहुत-से लोग होगे, जिनके मन मे बाबा के लिए आदर होगा। लेकिन बाबा का काम 'बोगस' है। बाबा एण्ड बोगस बिगिन विथ बी, 'बी स्टैड्स फॉर बोगस।' (बाबा और बोगस, दोनों का आद्याक्षर ब है)। यह मेरी अपेक्षा से बाहर नही। मैंने बिहार मे कहा था कि भूदान का काम नगद है, जितना मिला उतना बाटा, 'डेफिनिट' है। इन दिनों इसी की प्रतिष्ठा से बाबा की गिरी हुई प्रतिष्ठा को खडा किया जाता है कि इतनी-इतनी जमीन भूदान से बाटी गयी। लेकिन ग्रामदान का काम ऐसा नही है। ग्रामदान के सिलसिले मे मैंने कहा था कि इसमे से अनंत निकलेगा या शून्य। बीच की चीज मिलेगी नही। आज वह शून्यवत् दीख रहा है, उसमे से अनंत निकले, इसके लिए जयप्रकाशजी कोशिश कर रहे है और हमारे बाकी साथी भी कर रहे है। मेरा विश्वास है कि कोशिश सफल होगी, क्योकि जमाने की यह माग है।

10 अक्तूबर 1970 : अभी बाबा ने 'सूक्ष्मतर' मे प्रवेश किया है। इसका इजहार सेवाग्राम मे किया। उसका अर्थ उत्तरोत्तर

---

[*] विनोबाजी के अमृतमहोत्सव के निमित्त एक करोड का ग्रामस्वराज्य-निधि इकट्ठा किया गया था। — स.

खुलता जायेगा। यह निर्णय मैंने अपने मन से नही किया। अदर से आदेश मिला है। यह बाबा का क्षेत्र-सन्यास है। क्षेत्र-सन्यास, और सब छोड कर एक ही क्षेत्र में रहना, यह विचार तो पुराना ही है। आत्मोन्नति के लिए और ध्यान के लिए इस तरह क्षेत्र-संन्यास लेते थे। परतु बाबा का विचार वैसा नही है। समूह का अभिध्यान करते हुए बाबा का यह सूक्ष्मतर में प्रवेश है। केवल बाहरी हलचलो से कर्म नही होता है। क्रिया जैसे-जैसे सूक्ष्म मे जाती है, वैसे-वैसे कर्म बढता है। यह मेरा पुराना ही दर्शन है। अब अवस्था आ गयी कि सूक्ष्मतर मे प्रवेश करे। पाच साल पहले सूक्ष्म मे प्रवेश किया था, परतु, प्रवाहपतित कर्म कुर्वन् नाप्नोति किल्बिषम्। बिहारदान का कार्य एक हद तक आने तक काम करना पडा। अब वहा लोग उसे पूरा कर रहे हैं। जयप्रकाशजी ने जान की बाजी लगायी है। इसलिए बाबा भारत के मध्य मे आ कर बैठा है।

सवाल पूछा है, सूक्ष्मतर का अर्थ क्या? भुवनाकारम्। इसका अर्थ यह है कि सृष्टि को सामने रख कर उसमे ईश्वरीय स्वरूप का ध्यान करना। लोगो को अभिमुख रख कर अंतरात्मा मे लीन होने की बात है। उसके लिए अपेक्षित परिणाम यह है कि जो व्यक्ति यह प्रयोग करता है, वह शून्य – शून्यतर मे जायेगा। उसकी अपनी कसौटी होगी शून्य – शून्यतर मे जाना। यह उसकी अपनी अनुभूति और अपने लिए परिणाम होगा और समाज के लिए अपेक्षित परिणाम यह होगा कि अणुशक्ति की तरह कर्म सूक्ष्म होगा, पर उसका परिणाम स्थूल की अपेक्षा अधिक होगा। जैसे आणविक शक्ति होती है वैसा यह सूक्ष्म होता है। इस विषय मे स्थूल स्पष्टीकरण शब्दो मे नही दिया जा सकता।

सफाई-ध्यानयोग .

मई 1971 लोग पूछते है, आप सफाई में इतना समय क्यो देते हो ? मैने कहा, भगवान (भरत-राम) हमारे आगन मे आया है। सफाई का काम करते हैं तो उसकी सन्निधि मे रहने का आनद मिलता है ।

देवाचिये द्वारीं उभा क्षणभरी । तेणे मुक्ति चारी साधिलिया ।

– भगवान के द्वार पर एक क्षण खडे रहे, तो
उससे चार प्रकार की मुक्ति सध जाती है –

बाबा ने चार प्रकार की मुक्ति साध ली है। 1916 से 1966 तक सेवाकार्य करने के बाद बाबा ने सूक्ष्म प्रवेश किया, तभी कार्यमुक्ति हो गयी। फिर भी दो-चार साल बिहारदान का एक बडा कार्य था, तो उस सिलसिले मे उधर थोडा ध्यान देना ही पडा। कुछ स्थूल कार्य करना पडा। लेकिन इसके आगे वह नही करना पडेगा। अब बाबा ने क्षेत्र संन्यास लिया है। फिर ग्रंथमुक्ति की बात। बाबा ने कई ग्रंथ लिखे है। अभी-अभी उसके नाम पर पाच छः ग्रथ प्रकाशित हुए हैं। अब इसके आगे बाबा ग्रथलेखन नही करेगा। बाबा के पास फिलहाल दो ही किताबें हैं – वेद-उपनिषद का चयन और आक्सफर्ड की डिक्शनरी। बाकी सब किताबे बाबा ने हटा दी है। वेद-उपनिषद की किताब भी ज्यादा दिन रहेगी नही। बाबा क्या पढता है? तो कुछ नही। तो अध्ययन-मुक्ति हो गयी। चौथी है अध्यापन-मुक्ति। 1911 से बाबा ने पढाना शुरू किया। अपने ही वर्ग-मित्रो को पढाता था। बाद मे आश्रम के लोगों को। अब लगभग साठ साल हो रहे हैं, बाबा का अध्यापन-कार्य चला। इस साल के अत तक वह भी समाप्त होगा। अध्यापन-मुक्ति भी हो जायेगी।

दूसरी बात, सफाई-काम के बदले माला ले कर जप करता, तो बाबा का समय व्यर्थ जा रहा है, ऐसा कोई नही कहता। कचरा उठाता है तो वह भी एक जप हो जाता है। एक-एक तिनका उठाना और उसके साथ नामस्मरण करना। मैं कभी-कभी गिनता भी हू। आज 1225 तिनके उठाये। उसमे मन काम नही करता। वह एक ध्यानयोग होता है।

तीसरी बात, जो आदमी बाहर जरा भी कचरा सहन नही करता, वह अदर का कचरा भी सहन नही करेगा, अदर का कचरा निकाल देने की जोरदार प्रेरणा मिलेगी। यह आध्यात्मिक परिणाम है। हरएक को ऐसी प्रेरणा मिलेगी ही, ऐसा नही कह सकते। लेकिन तन्मय हो कर यह काम करेगा तो उसे ध्यानयोग सध सकता है।

चौथी बात, यहा के लोगो को उदाहरण, मार्गदर्शन मिलता है कि आसपास बिलकुल गदगी न हो।

एकबार एक भाई ने पूछा, दुनिया मे और देश मे इतनी गभीर परिस्थिति है, बाहर आपकी सख्त जरूरत है, ऐसे समय आप यह काम क्यो कर रहे हैं ? मैने कहा, बाबा जो कचरा उठा रहा है उसमे से थोडा आप ले जाइए, एक बोतल मे भर कर रखिए और उस पर लिख रखिए – मूर्ख बाबा ! यह सफाई का काम यानी बाबा का मुसहरी प्रखड है। जयप्रकाशजी उधर काम मे लगे है और बाबा यहा।

सदर्भ ग्रथ के जैसा

मई 1971 : इन दिनो मेरे ध्यान मे किसी व्यक्तिविशेष का नाम नही रहता है। ईश्वर के सिवा दूसरा चितन नही है। लेकिन

हां, अखबार देख लेता हू । चारो ओर जो चल रहा है, उस तरफ ध्यान है । खास कर इन दिनो पूर्व बगाल मे जो हो रहा है, उस तरफ ध्यान है । अभिध्यान चला है । बाकी यहां हू – 'रेफरन्स बुक' (सदर्भ ग्रंथ) जैसा । जो उपयोग करेगा, उसको उतना लाभ होगा ।

जून 1971 . किसी की मृत्यु की खबर सुनता हू, तो मुझे लगता है, शुभ समाचार सुना । आदमी अपने घर जाता है, यह शुभ समाचार नही तो क्या है ? असल मे वही लोक अपना है और यह है पराया । अब है हमारी बारी । जायेगे तो कैसे जाये ? हसते-हसते, गाते-गाते । 'चार दिस खेळीमेळी ।' हसते-खेलते चार दिन बिताने हैं । गीता मे है, तुष्यन्ति च रमन्ति च ।

इस देह मे बाबा अपनी मृत्यु का खेल देख कर खुश हो रहा है । कल्पना कर रहा है कि मृत्यु के बाद क्या होगा ? मै कौन हू ? करोडो लोग मर जाते हैं, महापुरुष भी उससे बचते नही । मृत्यु के बाद बचता है सिर्फ भगवान और यह दुनिया । हम आते हैं, और जाते हैं । समुद्र में लहरे उठती है, कुछ लहरे छोटी होती हैं, कुछ बडी । कुछ ऊची उठती हैं, कुछ नही । लेकिन है वे लहरे ही । इसलिए किसने कितना काम किया इसका हिसाब लगाना व्यर्थ है ।

सितबर 1971 : लोग बाबा से पूछते हैं, आपका आगे का कार्यक्रम क्या है ? यहा बैठा हुआ क्या करता है ? अभिध्यान ! जितनी जानकारी कार्यकर्ताओं के काम की मिलती है बाबा पढता है । हमारे कार्यकर्ता जहां-जहां काम कर रहे है और जहा तक बाबा का मानसिक चितव पहुंचता है, उनको सदेश पहुंचाता है ।

उसके अलावा सफाई का काम करता है । यह बाबा का आज चला है । और आगे की बात ? को जाने कल की !

गांधीजी की एक बात बाबा ने कभी माना नही – रोज डायरी लिखने की ! बाबा पर वरदहस्त था प्राचीनो का । उन्होने कहा – भूत की आसक्ति छोडो, भविष्य की चिंता छोडो –

अतीताननुसधान भविष्यदविचारणम्
औदासीन्यमपि प्राप्ते जीवन्मुक्तस्य लक्षणम्

बाबा पर इसका प्रभाव है । वह भूत को याद नही करता और भविष्य की चिंता नही करता ।

लोग कहते है बाबा, आपको अपनी आत्मकथा लिखना चाहिए । बाबा अगर लिखने बैठेगा तो वह बाबा की अनात्मकथा होगी । आत्मकथा तो लिखी नही जाती, देह की ही कथा होगी । और वे सत्य के प्रयोग नही होंगे, विस्मरण के प्रयोग होगे । और प्रस्तावना मे बाबा लिखेगा कि इसमे जो लिखा है, वह सही है ऐसी गैरंटी नही, क्योकि बाबा है, 'विनोबा विसरले' (विसरले = भूल गये) । बहुत सा तो भूल ही गया है बाबा और भूलता जा रहा है । बाबा भूतकाल का बोझ नही होने देता । भूत से छूटकारा और भविष्य की चिंता नही ।

बाबा जो प्रयोग कर रहा है, उसमे है, दुनिया का स्मरण करना और मानसिक रीति से आशीर्वाद भेजना । यह स्मरण दुनिया के लिए करना, और दुनिया के लिए यानी मेरे लिए ऐसा कहा कि वह अपने लिए हो जाता है । बाबा का जो दर्शन है वह उसी पद्धति का है । बाबा सबको कहता है कि हर माह बाबा को एक पत्र लिखें । बाबा जवाब नही देगा । पत्र पढेगा और उस पर चिंतन करेगा, उसमे जो शुभ होगा उसके साथ मानसिक संकल्प जोड देगा ।

अभिध्यान का परिणाम दो बिंदुओं पर निर्भर है। एक है बाबा का बिंदु – वहां पूर्ण निरहंकारिता हो। दूसरा उस छोरवाला बिंदु – वहां पर 'रेडियोसेट' चाहिए। वहां मन मुक्त होना चाहिए, तब परिणाम आयेगा। काम हम करते नहीं, कालात्मा करता है। कालात्मा खूब जोर कर रहा है, हमारी मदद में खड़ा है।

बाबा आलसी है

फरवरी 1972 : श्रीमन्‌जी पूछ रहे हैं, सूक्ष्म प्रयोग की फलश्रुति क्या है ? फलश्रुति यही है कि दिन-ब-दिन बाबा का आलस बढ़ रहा है। लोग कहते हैं, बाबा ब्रह्मचारी है। लेकिन वे कारण नहीं जानते। कारण यही है कि बाबा आलसी है। झूठ बोलने के लिए षड्‌यन्त्र करना पड़ता है। किसी को पीटना हो तो हाथ उठाना पड़ता है। बाबा आलसी है और उसका आलस बढ़ रहा है।

देश की परिस्थिति के बारे में विचार करना अभी बाबा ने बंद कर दिया है। वह सौंप दिया है भगवान पर ! अखबार देखता है, तो कहां क्या चल रहा है, थोड़ी जानकारी रखता है।

पूछ रहे हैं, आपके सूक्ष्म दर्शन से आंदोलन का भविष्य कैसा ? हमारे कार्य का भविष्य अत्यंत उज्ज्वल है। इसलिए नहीं कि कार्यकर्ता गुणवान और निर्दोष है – उनमें गुणदोष, दोनों हो सकते हैं, पर भविष्य इसलिए उज्ज्वल है कि भारत को इसके बिना चारा नहीं है। भारत को इसकी अत्यंत जरूरत है। इसलिए हमारे हाथ से वह काम नहीं होगा तो दूसरों के हाथ से होगा, लेकिन होगा जरूर।

अधिक सूक्ष्म

जुलाई 1972 : दो साल पहले मैं यहा आया। एक साल तो मैं मोटर से इधर-उधर जाता रहा, लेकिन एक साल पहले क्षेत्र-सन्यास जाहिर किया। तब से इसी क्षेत्र मे रहा। कल से तीसरा साल शुरू होता है इसलिए अधिक सूक्ष्म मे प्रवेश करना स्वाभाविक है। दो साल मैं यहा सफाई के काम मे काफी समय देता रहा। पूरे अहाते की सफाई की ओर ध्यान दिया। फिर कुछ दिन यहा कुटी के सामने सफाई करता था। वह सफाई करना कल से बद करूगा।

दूसरी बात, गीता-प्रवचन आदि पुस्तको पर हस्ताक्षर देता था। कल से वह बद होगा। उसका प्रचार 40 साल तक चला, 1932 से 1972। इसके आगे लोग अपनी शक्ति से जो करेगे, वह करेगे। अब उसके प्रचार की वासना मुझे नही रहनी चाहिए। वह कार्यकर्ताओं पर छोड देता हू। इसके अलावा और भी कुछ निर्णय होगे, वे धीरे-धीरे प्रकट होगे।

गये साल मुझे तीनो मौसम मे तीन रोग हुए थे। इस साल तीनो मौसम मे कुछ भी नही हुआ। सिर मे थोडा चक्कर का भास होता है। फिर भी रोज एक मील चलता हू। सुबह आधा मील, फिर बाद मे दो बार पाव-पाव मील। रोज बडी फजर 15-20 मिनट आसन प्राणायाम आदि करता हू। ग्रथमुक्ति तो जाहिर की है। जपानी कोश इन दिनो देख रहा हू। वैदिक सस्कृति के साथ जपानी शब्दो का कहा तक सबध है, यह देखने के ख्याल से। घटाभर लगभग शतरंज खेलता हू। रात और दिन मिल कर दस घटे पडा रहता हू, जिसमे आठ घटे नीद आती है। नीद निस्वप्न होती है।

फरवरी 1973 इन दिनों मेरे मन में कुछ भी नहीं रहता। मन ही नहीं होता है। सुबह घूमता हूं उस वक्त शुक्र का तारा सामने ही दीखता है, वह देखता हूं। लोग इधर-उधर जाते हैं, उन्हें देखता हूं। पेड़ दीखते हैं। केवल आनंद! ऐसा बहुत-सा समय मेरा बेमन जाता है। जिस वक्त लोगों से चर्चा करता हूं, उस वक्त बुद्धि काम करती है, मन नहीं।

श ना र ग दे

25 फरवरी 1973 : बाबा का अभियान चलता है, वह पांच विषयों का है – श ना र ग दे। शंकराचार्य ने पंचायतन पूजा शुरू की, उसे कहते हैं, शंनारगदे। 'श' यानी शंकर, 'ना' यानी नारायण, 'र' यानी रवि, सूर्य, 'ग' यानी गणपति, गणेश और 'दे' यानी देवी। बाबा का शनारगदे क्या है? शंकर है ब्रह्मविद्या। शं यानी सबका कल्याण करनेवाला शंकर। ब्रह्मविद्या के बिना हमारा कभी कल्याण होनेवाला नहीं है। जिस किसी ने माना होगा कि हमारा यह आंदोलन आर्थिक और सामाजिक है, वे बिलकुल ही समझे नहीं है, वह बिलकुल 'वन साईडेड व्ह्यू' (एकांगी दृष्टि) है। हमारा यह आंदोलन आध्यात्मिक है, ब्रह्मविद्या का है। इसलिए ध्यान, प्रार्थना, चिंतन, मनन, आत्म-परीक्षण चित्तशुद्धि के लिए प्रयत्न, यह सब निरंतर होते रहना चाहिए। तो बाबा के अभियान का पहला विषय है ब्रह्मविद्या। नारायण समूह का देवता है, इसलिए नारायण यानी ग्रामस्वराज्य अभियान का दूसरा विषय है। सूर्य यानी शांतिसेना, तीसरा विषय है। सूर्य की किरणें चारों ओर फैलती है, वैसे हमारी शांतिसेना

सारे भारत मे फैले। चौथा, गणपति विद्या का देवता है। तो बाबा आचार्यकुल का अभिध्यान करता है। वह बाबा के अभिध्यान का चौथा विषय है। और पाचवा है, देवनागरी लिपि। इन पाच विषयो मे साथियों ने क्या किया, क्या कर रहे है, उसमें क्या मुश्किल है, यह बाबा का 'इटरेस्ट' (दिलचस्पी) है।

उपवास-दान

11 दिसबर 1973 इन दिनो मैंने उपवास शुरू किया है। 11 तारीख को आधा और 25 तारीख को आधा। 11 तारीख मेरा जन्मदिन है और 25 को मैंने गृह-त्याग किया। इसलिए वह दिन मेरे लिए महत्त्व का है। दोनों दिन चिंतन के लिए अच्छे हैं। दो मिल कर एक उपवास पूर्ण होता है, जिससे कि स्वास्थ्य पर खराब असर न हो।

मेरे खाने का खर्च रोज लगभग तीन रुपये आता है। महीने मे तीन रुपये बचेगे। सालभर मे 36 रुपये। मैंने सोचा है कि सर्व सेवा संघ के काम के लिए मेरी तरफ से उतना दान दूगा। मैंने सोचा, हमारे साथी, कार्यकर्ता, सहयोगी, सर्वोदय विचार मे श्रद्धा रखनेवाले जितने भी लोग भारत मे है, वे अगर महीने मे एक उपवास करेगे और सालभर का जो खर्च होगा वह सर्व सेवा सघ को देंगे, तो बहुत बडा काम होगा। आज तक हम अपने काम के लिए सभी प्रकार का दान लेते थे : वह 'सर्व ब्रह्म' की उपासना थी। अब हम 'विमल (शुद्ध) ब्रह्म' की उपासना करे। शुद्ध दान ले। उपवास मे शुद्धि है इसलिए वह शुद्ध दान होगा।

साक्षिरूपेण

जनवरी 1974 . बाबा इन दिनों विश्व का चिंतन करता है। एक बाजू ग्रामदान और दूसरी बाजू जय जगत् ! जगत से कम बाबा बोलता ही नहीं। आज दुनिया एक हो गयी है विज्ञान के कारण। हृदय एक नहीं बना, लेकिन बुद्धि एक बनी है। बडी खतरनाक बात है। बुद्धि एक बने और हृदय एक न बने तो मानव जाति के झगडे होंगे। बुद्धि और हृदय के झगडे। नाम उसको तरह-तरह के मिलेंगे। इसवास्ते हमको विश्व की राजनीति का अध्ययन करना चाहिए। इन दिनों बाबा ज्यादा तर अध्ययन विश्व की राजनीति का ही करता है। इसलिए बाबा के पास नक्शा रखा है। सब राष्ट्रों की फेहरिस्त रखी है, कहा पर कितनी जनसख्या है, कहां पर कौनसी राजसत्ता काम कर रही है इत्यादि। तो अध्ययन खूब करे विश्व-राजनीति का, परतु अपने को अलग रखे, साक्षीरूपेण रखे। अन्यथा हमारे टुकडे हो जायेंगे, जैसे राजनीति मे होते हैं।

अन्यथा देश के लिए खतरा है

अप्रैल 1974 हिंदुस्तान की आज की हालत मे अनेक प्रकार के असतोष है, समस्याएं है। लेकिन किसी भी परिस्थिति मे और किसी भी कारण से हिंसा का आश्रय न लिया जाये। हिंसा को उत्तेजन न दिया जाये। जब तक पाकिस्तान, भारत और बगला देश मे पूर्ण सामजस्य नही होता है तब तक सरकार के खिलाफ कोई हिंसात्मक आंदोलन तो करना ही नही चाहिए, बल्कि अहिंसक आक्रमणकारी आंदोलन भी नही करना चाहिए। नही तो देश के लिए खतरा है। केवल शांतिमय रचनात्मक काम

ही करना चाहिए। रचनात्मक काम के द्वारा भी देश की गरीबी आदि के बारे मे बहुत कुछ हो सकता है।

आत्मनिवेदनम्

10 जुलाई 1974 भक्ति का एक प्रकार है आत्मनिवेदनम्। और मैं आप लोगों की भक्ति करना चाहता हू। आप मेरे लिए पूज्य मूर्ति है। तो आत्मनिवेदन थोडा कर दूगा कि बाबा इन दिनों किस प्रकार से जीवन बिताता है। रात को दस घटे सोता है। उसमे दो-ढाई घंटा चिंतन-मनन-ध्यान चलता है, बाकी निद्रा होती है। परमात्मा की कृपा से निद्रा मे स्वप्न होते नही। दिन मे जो कार्यक्रम चलता है, उसमे अनेक लोग आते हैं, उसका चिंतन तो चलता ही है, लेकिन मुख्य चिंतन एक ही है, चिंतन एक ही ग्रंथ का चलता है – विष्णुसहस्रनाम का। उसी के चिंतन-मनन से बाबा रहता है। कुछ नयी किताबें भेंट के तौर पर आ जाती है, तो उन पर दस-पाच मिनट आख घुमा लेता है। विष्णुसहस्रनाम के अलावा कोई भी आध्यात्मिक किताब बाबा पढता नही। बाकी जो अखबार वगैरह आते हे, उन पर हमारे साथी लाल निशान लगा रखते है, उतना देख लेता है। दस-बारह मिनट मे सब अखबार देखना हो जाता है। इग्लिश अखबार ज्यादा पढता नही। रामकृष्ण परमहस तो अखबार को छूते नही थे। वे कहते थे, अखबार मे तो ससार भरा है। बाबा यहा तक अभी नही गया है, थोडा देख लेता है। खाने मे, गीता की जो आज्ञा है 'मा फलेषु' उसके अनुसार चलता है – फल वगैरह नही खाता। केवल दूध और गुड लेता है। यह अपनी बात – क्या पढता हू, क्या

खाता हू वगैरह आपके सामने रखी। अब काम जो करना चाहता हूं और कर रहा हूं, उसका थोडा दर्शन आपको कराऊंगा।

यह महावीर स्वामी की 25 वी शताब्दी है। उनके वचनों की तरफ मेरा ध्यान ज्यादा रहता है। 2500 साल के बाद भी वह पुरुष बिलकुल खडा है। भारत को उत्तम मार्गदर्शन देनेवालों के दो-चार नाम जो लिये जायेगे, उनमे महावीर का नाम आयेगा। मैंने जैन लोगो से प्रार्थना की है कि जैनधर्म का सर्वमान्य सार निकाला जाये। यह बात मान्य होगी तो बहुत बडी सेवा भारत की होगी। सब लोगों को थोडे से शब्दों मे जैनों की शिक्षा परिपूर्ण पढने को मिलेगी। इसलिए वह एक चीज मैं करवा रहा हूं।

दूसरा काम कर रहा हूं देवनागरी का। हमारे आपके जो कुछ काम चलते हैं, सारे के सारे कामो को लोग भूल जायेगे परंतु अगर हमने सारे भारत मे एक लिपि की स्थापना की, तो वह हजारों सालों तक याद रहेगा लोगो को। हर भाषा की अपनी लिपि जरूर रहे। उसमे कोई विरोध नही है। लेकिन सारे भारत को जोडने के लिए उन लिपियों के साथ देवनागरी लिपि भी चले। आजकल इसके लिए मेरा बहुत प्रयत्न चल रहा है।

बाबा का सब पर विश्वास है

12 जुलाई 1974 एक बात बार-बार कही है बाबा ने कि बाबा का विश्वास जयप्रकाशजी पर है। बाबा का विश्वास इंदिराजी पर है। हेमवती बहुगुणा पर है। एस्. एम् जोशी पर है। वसतराव नाईक पर है। कैसी विलक्षण दशा है बाबा की! एस् एम् और नाईक, एक पक्ष के नही, एक-दूसरे के विरोधी पक्षों के, पर दोनों पर बाबा का विश्वास है। तो अब बाबा की क्या गति होगी? यह बाबा का गुण कहिए या दोष कहिए, वह है।

आपको भी विश्वास रखना चाहिए। जो आपके विरोधी होंगे उन पर विश्वास रखना चाहिए। और वे जितना आप पर अविश्वास करे, उतना आप उन पर विश्वास करे। बाबा का तो भुट्टो पर भी विश्वास है।

अभी हमारा एक हफ्ता लगभग अधिवेशन-चर्चा मे चला गया। सामान्यतया मेरी निद्रा पर किसी बात का असर होता नही। लेकिन एक दिन हुआ। और मैं जरा चिंता मे पड गया कि सर्व सेवा सघ टूटे न। उस दिन मुझे जरा नीद कम आयी। मेरा विचार हमेशा जोडने का होता है – दिल को जोडना। मैंने जितने भी काम किये, चाहे ग्रामदान का हो, चाहे ग्रथलेखन हो, वे सब दिल को जोडने के काम है। यह मैंने लिख कर भी रखा है कुर्आन सार की प्रस्तावना मे। मैंने सोचा दिल टूट रहे हैं, यह ठीक नही। दिमाग भले ही अलग-अलग हो, दिल एक होना चाहिए। इसवास्ते जोडने के लिए कुशल कार्य किया। वह कार्य क्या था ? शब्द-शक्ति। ऐसा शब्द जिसके आधार पर सब हृदय जुड सकते हैं।

मैंने तीन बाते बतायी – सत्य, अहिंसा, सयम। इन मर्यादाओ मे चले। कृति मे जो भी होता हो, सत्य-अहिंसा की रटन तो हम करते ही रहते हे। मैंने उनके साथ सयम जोड दिया। वह बडी महत्त्व की चीज है। सयम यानी वाक्-सयम। विरोधी न बोलना। गौण (गुणपरक) बोलना। हरएक मे एक गौण बात भी होती है। हरएक मे सत्य का अश होता है, उसे देखे। जोडने की युक्ति, तोडने की नही। पूरा का पूरा सघ, 400-500 कार्यकर्ता टूट रहे थे। उनको मैंने लिखित दिया कि सर्वसम्मति से जो प्रस्ताव होगा वह मान्य करे और एकहृदय हो कर सत्य, अहिंसा, सयम की मर्यादाओं मे रह कर अपनी-अपनी रुचि के अनुसार काम करे।

एक साल का मौन

13 दिसबर 1974 : मेरे मन मे आ रहा है कि मैं मौन लू । 25 तारीख, मार्गशीर्ष शुद्ध एकादशी, गीताजयती का दिन है और क्रिसमस भी है। मुहूर्त अच्छा है। उस दिन से एक साल का मौन !

यह माधव-भक्ति है। प्राचीन काल मे हमारे लोग एक-एक अक्षर पर चिंतन करते थे, एक-एक अक्षर की उपासना करते थे। माधव मे तीन अक्षर हैं। मा यानी मौन, ध यानी ध्यान, व यानी विद्या — ब्रह्मविद्या !

आगे के कुछ कार्यक्रम तय हैं, तो क्या उन्हे पूरा नही करना चाहिए ? लेकिन आध्यात्मिक निर्णय ऐसी चीजे तोडे बिना नही होते। फलाना काम समाप्त कर के फिर मौन रखेंगे, ऐसा नही होता। संन्यास मे तोडना पडता है। तोडे बिना प्राप्ति नही।

जब बाबा बोलता था तब बोलते हुए भी मौन था, अब मौन होते हुए भी बोला जायेगा। गुरोस्तु मौन व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्न-संशयाः कहा है। परतु इस मौन मे शिष्य पर कुछ निर्भर नही। मौन की जो क्रिया है वह आक्रमक है। सूर्य जिस तरह दरवाजे के बाहर खडा रहता है, दरवाजा बद हो तो धक्का दे कर अदर नही जाता है, वैसा यह मौन नही, यह मौन धक्का देगा। आक्रमण करेगा।

25 दिसंबर 1974 : यह जो मौन है, उसमे न बोलने का तो है ही, लेकिन न लिखने का भी है। बाबा लिखना जारी रखता तो काफी सहूलियत होती, लेकिन वह भी बंद है। 'राम-हरि' के अलावा बाबा और कुछ लिखेगा नहीं। बाबा ने सूक्ष्म-प्रवेश किया,

उसके बाद कुछ समय तक प्रवाहपतित कर्म करता रहा। फिर बाबा आया ब्रह्मविद्या-मदिर मे। क्षेत्रसन्यास ले लिया। यहा भी कई स्थूल वस्तुओं मे पडना पडा, स्थूल चर्चा करनी पडी। वह भी प्रवाहपतित समझ कर की। आठ-साडे आठ साल बीत गये। तो बाबा ने सोचा, ठीक है यह कि प्रवाहपतित कर्म का दोष न लगा हो, परतु सूक्ष्म अभिध्यान की जो शक्ति है, वह तब तक प्रकट नही होगी, जब तक अधिक सूक्ष्म मे प्रवेश नही होगा। तो फिर सोचा इसके आगे बोलना-लिखना बद करना होगा।

बाबा का कान तो भगवान ने बद किया ही है। दो-तीन कर्णमणि बाबा के पास भेजे गये थे। बाबा ने कर्णमणि लगा कर देखा, उत्तम सुनायी देता था। तो दस-बारह दिन लगा कर देखा और छोड दिया। भगवत्-कृपा से कान गया तो मणि किसलिए लगाना? भगवत्-कृपा समझ कर एक बदर तो बाबा बन गया। अब दूसरा, मुह बदवाला बदर बाबा बन रहा है। तीसरा आख बदवाला नही बन रहा है। उसके बदले हाथ काट रहा है। हाथ के द्वारा लेखन नही होगा, उसका अर्थ हाथ बद! आख अभी कायम रखी है, किसलिए? इसलिए कि जो साथी-स्नेही पद्रह दिन मे या महीने मे एक बार नियमितरूप से बाबा को पत्र लिखते है और कुछ अनियमित अपनी आवश्यकता के अनुसार लिखते हैं, उनके पत्र पढ कर उस पर अभिध्यान कर सके। पत्रों मे जो सूक्ष्म विचार पेश किये होते हैं, जीवन की गाठें वगैरह खोली हुई होती हैं, उन पर अभिध्यान-शक्ति का असर होता है। अब जबकि बोलना भी बद होगा तो जिनके पास 'रिसिविंग सेट' (ग्रहण-यत्र) नही है, उनके पास भी वह पहुच जायेगा। वह आक्रमणकारी होगा, धक्का दे कर पहुच जायेगा जिसने लिखा उसके पास। यह चीज आठ-नौ साल मे चली आयी है।

अब कोई पूछेगा कि एक ही साल का मौन क्यों ? आगे क्यों नही ? तो इसका उत्तर यह है कि ऐसे कठिन आध्यात्मिक कार्य में अनुभव के आधार पर आगे बढना होता है। 'मारे एक डगलुं बस थाय।' एक छोटा-सा डगला (कदम) है यह। कितना छोटा ? सिर्फ एक साल। इसवास्ते आगे का सोचा नही है। अनुभव के आधार से तय होगा।

25 दिसबर 1974 – 25 दिसंबर 1975 : मौनम्।

एतत् अनुशासनम्

25 दिसंबर 1975 : मेरा अनुशासन-पर्व का अर्थ थोडे मे रखता हू। अनुशासन-पर्व शब्द महाभारत का है। परतु उसके पहले वह उपनिषद मे आया है। प्राचीन काल का रिवाज था। विद्यार्थी आचार्य के पास रह कर बारह साल विद्याभ्यास करता था। विद्याभ्यास पूरा कर जब वह घर जाने निकलता था तब आचार्य अतिम उपदेश देते थे। उसका जिक्र उपनिषद में आया है, एतत् अनुशासनम्। एवं उपासितव्यम् – इस अनुशासन पर आपको जिंदगीभर चलना है। आचार्यो का होता है अनुशासन और सत्तावालों का होता है शासन। अगर शासन के मार्गदर्शन मे दुनिया रहेगी तो दुनिया मे कभी भी समाधान रहनेवाला नही। शासन के मार्गदर्शन मे क्या होगा ? समस्या सुलझेगी, लेकिन सुलझी हुई फिर से उलझेगी। यह तमाशा आज दुनियाभर मे चल रहा है। 'ए' से 'झेड' तक, अफगानिस्तान से झाबिया तक 300-350 शासन दुनिया मे होगे। फिर उनकी गुटबदी चलती है। सबदूर असतोष, मारकाट! शासन के आदेश के अनुसार चलनेवालों की यह स्थिति है। उसके बदले अगर आचार्यो के

अनुशासन मे दुनिया चलेगी तो दुनिया मे शाति रहेगी । आचार्य होते हैं, जिनका वर्णन बाबा ने किया है गुरु नानक की भाषा मे — निर्भय, निर्वैर, और उसमे बाबा ने जोड दिया है निष्पक्ष । और जो कभी अशात होते नही, जिनके मन मे क्षोभ कभी नही होता । हर बात मे शाति से सोचते है और जितना सर्वसम्मत होता है विचार, उतना लोगो के सामने रखते हैं । उस मार्गदर्शन मे अगर लोग चलेगे, तो लोगो का भला होगा और दुनिया मे शाति रहेगी । यह अनुशासन का अर्थ है — आचार्यों का अनुशासन । ऐसे निर्भय, निर्वैर, निष्पक्ष आचार्य जो मार्गदर्शन देंगे उसका, उनके अनुशासन का विरोध अगर शासन करेगा तो उसके सामने सत्याग्रह करने का प्रसग आयेगा । लेकिन बाबा को पूरा विश्वास है कि भारत का शासन ऐसा कोई काम नही करेगा जो आचार्यो के अनुशासन के खिलाफ होगा ।

श्वास श्वास पर राम

फरवरी 1976 . उपनिषद ने आज्ञा दी है — त्यजेत् ग्रथ अशेषत. । बाबा ने अनेक ग्रथ पढे, लेकिन अब बहुत सारा भूल गया है । विष्णुसहस्रनाम की पुस्तक पास रखी थी, वह भी छोड दी है । अब केवल 'राम-हरि' का जप जारी है । 'श्वास श्वास पर राम कहो, वृथा सास मत खोय' का प्रयत्न है ।

स्वप्नवत्

18 अप्रैल 1976 : भूदान रजतजयती . भारत मे हमारी यात्रा कहा-कहा हुई, इसका नक्शा सामने दिखाया गया है । बाबा को तो

यह स्वप्न जैसा मालूम होता है। ऐसा भास ही नही होता कि बाबा ने यात्रा की। किसी ने वह करायी, ऐसा भास होता है। इस पदयात्रा से कितनी जमीन बंटी इत्यादि सब हिसाब बाबा अपने मन मे करता ही नही। बल्कि मैत्री की भावना कितनी रही, यही बाबा का मुख्य विचार है। बाबा को इससे बडा लाभ हुआ। हिंदुस्तान की सब भाषाए सीखने और उनके सर्वोत्तम आध्यात्मिक साहित्य का पठन-चिंतन-मनन करने का मौका मिला। बाबा को हजारो लोगो की मैत्री का लाभ मिला।

मा का आदेश

31 मई 1976 पवनार आश्रम मे महाराष्ट्र आचार्यकुल सम्मेलन मे तारीख 25 अप्रैल को भाषण देते हुए मैंने गोरक्षा के सबध मे बहुत जार दिया था और कहा था कि गोरक्षा की जिम्मेवारी आचार्यों को उठा लेनी चाहिए। इस सबध मे एक पत्रक भी प्रकाशित हुआ है।

इसके बाद तारीख 17 मई को महाराष्ट्र के मुख्यमत्री श्री शकररावजी चव्हाण खुद मुझे मिलने पवनार आये थे। उनसे भी चर्चा करते हुए मैंने देश के विकास की दृष्टि से गोहत्या-बदी की आवश्यकता पर बहुत बल दिया और कहा कि यदि यह कार्य शीघ्र सपन्न न हुआ तो मुझे आमरण उपवास करना होगा।

तारीख 29 मई को कुछ कार्यकर्ताओ से इस विषय मे बाते करते हुए मैंने स्पष्ट शब्दो मे जाहिर किया कि यदि देशभर मे गोहत्या-बदी करने का निश्चय जाहिर न हुआ तो मै 11 सितबर से उपवास शुरू करूगा, जो कि मेरा जन्मदिवस है। इसके लिए

अभी साढे तीन महीने अवधि है। उतना समय संबंधित व्यक्तियों को निर्णय करने के लिए पर्याप्त है।

2 जून 1976 यह जो वर्ष है 1976 का वह बाबा की माता की जन्मशताब्दी का वर्ष है। बाबा को एक भी दिन याद नही, जिस दिन बाबा ने मा का स्मरण नही किया होगा। हमको उसने बचपन मे सिखाया था, खाने से पहले, प्रथम तुलसी का पानी देना, फिर गाय को खिलाना, फिर खुद खाना। तुलसी को पानी पिलाये बिना, गाय को खिलाये बिना खाना नही। बाबा की मा बाबा से कहती है कि विन्या, तू गाय के लिए कुछ कर। गाय बच जाये तो भारत को बहुत लाभ होगा।

आज हिंदुस्तान मे लाखो गायें कटती है। उसका मास भेजा जाता है विदेश मे और आपको डॉलर मिलते हे। बाबा को 81 साल पूरे करने के लिए तीन माह बाकी हे। कितने बचे होगे दिन और, कह नही सकते। तो बाबा ने सोचा, जितने दिन बचे होंगे उतने की आखिरी आहुति दें गाय के लिए। इसमे बाबा की मृत्यु हुई और गाय बची तो अच्छा है। मृत्यु हुई और गाय नही बची तो भी बाबा परमेश्वर का स्मरण कर के आनदपूर्वक जायेगा। बाबा ने अपना कर्तव्य कर लिया। गाय का बचना तो ईश्वर की कृपा पर निर्भर है।

13 जून 1976 बाबा के उपवास की खबर 'मैत्री' मे प्रसिद्ध हुई। तो 'मैत्री' के बडल के बडल यहा से उठा कर ले गये। 4200 अक ले गये। जब वे अक ले जा रहे थे, तब बाबा ने क्या किया? खडा हुआ और तालिया बजायी। 'जय जगत्' कहा। धन्य है वे लोग, (अखबारो के प्रतिनिधि) बाबा के उपवास

की बात छापने की हिम्मत नही करते ! हिम्मत की है युगधर्म ने, गावकरी ने, भूमिपुत्र ने, धरतीमाता ने । अखबारवाले हिम्मत नहीं करते, क्योंकि अखबार बद होगा, तो खाने को नही मिलेगा । शंकराचार्य के जमाने मे अखबार नही था । गौतम बुद्ध, महावीर, जीसस क्राईस्ट के जमाने मे अखबार नही था । लेकिन उनका जितना प्रचार हुआ उतना और किसी का नही हुआ ।

मृत्यु की मृत्यु

जुलाई 1976 : बाबा बहुत-सी बाते भूल जाता है । रोज शाम को सोते समय मरने का अभ्यास करता है । बाबा कहता है, मरने के बाद जो करना है, वह आज करो, अभी करो । मरण माझें मरूनि गेले मज केले अमर । (मेरी मृत्यु की मृत्यु हो गयी और उसने मुझे अमर बनाया) । या आपुले मरण पाहिले म्यां डोळा तो झाला सोहळा अनुपम्य (अपना मरण मैंने खुदने देखा और वह अनुपम समारोह था) । इसलिए रोज मरने का अभ्यास बाबा करता है । और मरते समय पुरानी बाते सब भूल जाता है । गाधीजी को अपने जीवन का बहुत सारा याद रहता तो अंतिम समय, मरते समय वे 'हे राम' नहीं कहते ।

अर्ध-आहार

जुलाई 1976 . मैंने 1 अप्रैल से मेरा आहार आधा किया है । मैंने कई बार कहा है कि मेरी मा ने मुझसे कहा था कि तुम्हे कितना जीना है इसके लिए तुम्हारे दिन तय नही हैं, तुम्हारा खाना तय है । वह खाना तुम ही ज्यादा खा कर जल्दी खतम

करोगे, तो जल्दी मर जाओगे। थोडा-थोडा खाओगे तो ज्यादा जीओगे।

आहार कम करने का दूसरा कारण यह है कि मैं उपवास की तैयारी कर रहा हू। पूर्ण आहार मे पूर्ण उपवास मे जाने की अपेक्षा अर्ध-आहार* से पूर्ण उपवास मे जाना ज्यादा आसान है।

धीरुभाई चाहता है कि बाबा घी-मक्खन खाये। पर बाबा क्या कहता है? मै नहीं माखन खायो री मैया। 68 तोला और 16 तोला मिल कर 84 तोला होता है। 84 लाख योनि पार कर लेगे। बात ऐसी है कि 11-9 76 मे शायद पूरा उपवास करना पडेगा। और पूर्ण आहार से पूर्ण उपवास 'हाय जप' — ऊची उडान होगी। इसलिए घी वगैरह लेने के बारे मे 11-9-76 के बाद सोचेगे।

अहिसक सहायता

10 अगस्त 1976 11 अगस्त को देशभर मे (गोरक्षा के लिए) उपवास तथा प्रार्थना होगी। आनेवाले एक महीने मे प्रचार-कार्य स्थगित किया जायेगा। यह अहिसक सत्याग्रह का तरीका है। अहिसा के बारे मे एक दफा चर्चा चल रही थी। किसी ने कहा, हमे 'नान-वायलेट रेजिस्टन्स' (अहिसक प्रतिकार) करना चाहिए। मैंने कहा, 'नान वायलेट रेजिस्टन्स' नही, 'नान-वायलेट असिस्टन्स इन राईट थिकिग' (सम्यक् विचार मे अहिसक सहायता)। वैसे अभी हम एक महीने के लिए प्रचार बद करेगे तो इस कृति का बहुत अच्छा असर होगा। सरकार भी शात हो जायेगी और शातिपूर्वक सोचेगी।

---

* केवल 68 तोला दूध और 16 तोला गुड — स.

8 सितंबर 1976 : भारत मे गोहत्या-बंदी का प्रश्न बहुत सारा हल हो गया। श्रेय के अधिकारी

1 भगवान
2 माता रुक्मिणी
3 गांधीजी
4 इंदिराजी

पहले तीन आकाश में है। इंदिराजी धरती पर है। इंदिराजी को धन्यवाद।

11 सितंबर से बाबा पूर्ण आहार लेगा।

बापू का रचनात्मक कार्य करे

2 दिसंबर 1976 : इन दिनो बाबा बार-बार एक ही बात कहता रहता है। असम मे शकरदेव नाम के एक महापुरुष हो गये। उन्होंने एक वचन कहा है – राजनीति राक्षसर शास्त्र – राजनीति राक्षसों का शास्त्र है। इसलिए पालिटिक्स को भूल जाओ। बडे-बडे राजा-महाराजा हो गये, पर सारा भारत तो केवल संतों की वाणी याद करता है। इसलिए बाबा एक ही बात कहता है कि गाधीजी का दिया हुआ जो रचनात्मक कार्य है उसे उठा ले। हरएक गाव मे खादी, ग्रामोद्योग, गोरक्षा, गोबर गैस प्लांट इत्यादि खडा करे और गाव व्यसनमुक्त और अदालत-मुक्त हो।

1916 की बात है बाबा कोचरब आश्रम बापू के पास पहुच गया। बापू रोज घूमने के लिए निकलते थे। तब बाबा भी उनके साथ जाता था। एक दिन रास्ते मे उनकी बाबा के साथ बात

हुई। उन्होने कहा, देखो विनोबा, भारत मे सात लाख गाव है (उस समय हिंदुस्तान पाकिस्तान अलग नही था)। हरएक गाव मे हमको अपना एक कार्यकर्ता खडा करना चाहिए। उसका जीवन लोकाधारित चलेगा। वह लोगो का मार्गदर्शन करेगा और गाव मे शक्ति खडा करेगा। सात लाख गाव के लिए सात लाख कार्यकर्ता चाहिए। गाधीजी का यह एक स्वप्न था। इसलिए बाबा कह रहा है कि हर प्रात मे एक-एक जिला चुने और वहा गांधीजी का पूरा का पूरा कार्यक्रम पूरा कर के दिखाये।

24 दिसवर 1976 आज (सर्वोदय) सम्मेलनवालो से मैंने कहा कि मेरा सुझाव है कि यहा आ कर आप चर्चा करते रहेगे राजनीति की तो आप क्षीण हो जायेंगे, टुकडे पडेंगे आपके, आपस मे मतभेद आयेगे। राजनीति तोडना जानती है, जोडना जानती नही। अध्यात्म जोडता है, राजनीति तोडती है। धीरे-धीरे यह सर्वोदय समाज समाप्त होगा। परतु अगर आप रचनात्मक कार्यक्रम हाथ मे लेगे, राजनीति का चिंतन छोड कर निश्चयपूर्वक, श्रद्धा-पूर्वक, निष्ठापूर्वक उसी मे तन्मय हो जायेगे तो आपका भी भला होगा और दुनिया का भी भला होगा। और उसका उपयोग कुल दुनिया को हजार साल तक होता रहेगा।

बाबा को परिपूर्ण भूल जाये

प्रश्न पूछा है बाबा से कि आपके कथनानुसार गाधीजी का नाम इतिहास मे मिट जायेगा और क्या आपका नाम दीर्घ काल रहेगा ? बाबा का नाम तो आप लोग बाबा मरने के बीस-पचीस साल के बाद भूल जाओगे। शताब्दी को याद रखेगे शायद

केवल राम-हरि

11 सितंबर 1977 : 25 दिसबर से बाबा कर्ममुक्त हुआ है। और चर्चा करता है किसी के साथ तो व्यक्तिगत तौर पर आरोग्य विषयक और आध्यात्मिक चर्चा होती है। इसवास्ते बाबा तो अब प्रारब्धक्षय की राह देखते हुए कोशिश करता है,

श्वास श्वास पर राम कहे वृथा श्वास मत खोय

बाबा की दिनभर कोशिश होती है – केवल 'राम-हरि' निरतर स्मरण करता रहे। खाते हुए भी, और भी कुछ काम करते हुए, घूमते हुए निरतर यह कोशिश बाबा की चलती है और रात को सोने के बाद तो निरतर चलती ही है। अब कोई कार्य शेष नही है। रात को सोने से पहले भगवान की प्रार्थना कर के बाबा सोता है। कहता है, हे भगवान, अब मैं तेरी शरण मे आया हू। अगर कल तू मुझे फिर से दूसरा जन्म देगा तो आगे तेरी सेवा करता रहूगा। अगर बाबा की चेतना को मिटा देगा तो बाबा को अत्यत प्रसन्नता होगी और प्रसन्नता से 'राम-हरि' का स्मरण कर के ही वह मर जायेगा, इसमे बाबा को कोई शक नही है। यही बाबा का निरंतर चिंतन चलता है।

जैसे रामदास स्वामी ने कहा है – श्रीराम मंत्र खुला है, वैसे बाबा ने सबको स्पष्ट कह दिया है कि श्वास लेते समय 'राम' कह कर बाहर की हवा अदर ले और 'हरि' कह कर हवा छोड दें। बाहर की स्वच्छ हवा लेते है तो राम हो गया – अदर रममाण हो गया। अंदर की हवा बाहर छोडना यानी हरण कर दिया पापो का, हरण करनेवाला हरिनाम लिया। इस तरह 'राम-हरि' का जाप

निरंतर जितना कर सकते हैं, करते रहे। यह बाबा ने सबके सामने जाहिर किया है।

यह कोई मुह से बोलने की बात नही है। श्वास अदर लेना और छोडना। श्वासोच्छ्वास की यह क्रिया जब तक प्राण रहेगा तब तक जारी रहती है। उसके साथ-साथ रामहरि का भाव हो। उसका उच्चारण हो इसकी जरूरत नही। भान हो तो काम पूरा होगा।

दिसंबर 1977 बाबा को जो पत्र आते है, उनमे गा, ता, नि, ऐसे प्रकार होते है। कुछ पत्रो मे गालिया होती हैं, 'तुमने कितना बुरा काम किया' इत्यादि। कुछ मे तालिया होती है, 'तुमने कितना अच्छा काम किया' और कुछ मे इन दोनो को छोड कर अपना निवेदन होता है। और कुछ पत्र तो इससे भी अच्छे होते हैं – वे न गा होते है, न ता होते हैं, न नि होते है। उनमे केवल 'राम-हरि राम-हरि राम-हरि' लिखा होता है। वे उत्तम पत्र हैं।

बाबा आज्ञा नहीं देता

25 मार्च 1978 ब्रह्मविद्या-मदिर को आज 19 साल पूरे हुए। 19 के 20 होगे, 20 के 21, धीरे-धीरे बढते जायेंगे। बाबा को विश्वास है, यहा के लोग एकत्व-निश्चितमनोऽपि हो कर रहेगे तो ब्रह्मविद्या के प्रचार के लिए कही भी जाना नही होगा। यहाँ बैठे-बैठे ब्रह्मविद्या कुल दुनिया मे पहुच जायेगी, इसमे कुछ भी शक नही।

अक्सर जो मदिर, मठ वगैरह होते है उनमे तीन बाते होती हैं – 'चैस्टिटी' (ब्रह्मचर्य), 'व्हालंटरी पावर्टी' (ऐच्छिक

दारिद्रय), और 'ओबिडिएन्स' (आज्ञाधारकता)। क्रिश्चन मिशनरियो मे यह होता है। यहा भी तीन बाते हैं। ब्रह्मचर्य है। ऐच्छिक दारिद्रय है – श्रमनिष्ठा है। और तीसरी बात, 'ओबिडिएन्स' के बदले 'फ्री टु ओबे' – पूर्ण मुक्तता है। बाबा यहाँ आज्ञा देता नही। यहा के लोग पूर्ण मुक्त हैं। पूर्ण मुक्त हों और फिर अगर 'ओबिडिएन्स' हो गया, तब तो वह शोभादायक है, नही तो 'ओबिडिएन्स' की आज्ञा हो जायेगी।

मृति-स्मृति शुद्धये

मई 1978 बाबा ने 'वृद्धात्माओं' की एक सूची तैयार की है। उसमे 24 नाम थे। लेकिन अब 16 ही रहे हैं। बाकी ऊपर पहुच गये।

बाबा ग्लुकोज का पानी लेता है। उसकी कैलरीज 640 है। 16 तोला ग्लुकोज है। मान ले, इतना ग्लुकोज ले कर पानी पीता रहा तो कितने दिन जीयेगा ? 84 पूरा करेगा ? अभी 16 महीने बाकी है पूरा करने मे।

गीता-प्रवचन मे लिखा है, मृति स्मृति-शुद्धये – मृत्यु का स्मरण अच्छा है। बाबा के साथी बाबा से पूछते हैं, आपने आहार क्यों कम किया है ? आहार कम करने का विचार बाबा की मा के कहने के अनुसार है। वह कहती थी, कम खाओ, ज्यादा जीयो। पूछ रहे हैं, बाबा बार-बार संथारा की बात क्यों बोलता है ? सथारा का विचार है क्या ? ऐसा है, बाबा के आग्रह से जैनधर्म का ग्रथ समणसुत्त बना है। इसलिए बाबा सथारा का विचार नही, चिंतन करता है।

केवल राह देखना

अगस्त 1978 . जब घर से निकला बाबा तब उसके सामने ध्येय था, एकात मे जा कर ध्यानधारणा इत्यादि साधन करने का। परतु गाधीजी के पास गया, उनके पास रहा। उनकी आज्ञा मे काम किया।

अब बाबा का ध्येय है, केवल मृत्यु की राह देखना। जो कुछ करना था, वह सबकुछ हो गया, ऐसा भास है। अभी जो करना है, वह केवल कर्ममुक्त हो कर आपके जैसो के प्रश्न के उत्तर देना, विचार देना समझाना इतना ही।

अभिध्यान की बात कई दफा समझायी है। जिसके साथ बाबा का सबध आया है, ऐसे व्यक्ति को बाबा याद करता है। ऐसे 300-400 लोग हैं। कल बाबा ने 'मैत्री' के ग्राहकों की सूची देखी, पढी। लगभग 4000 ग्राहक है। उनमे से 1000 नाम याद आये। विष्णुसहस्रनाम! ऐसे जो नाम याद रहते हैं, और जिनसे बाबा का संबध आया है, उनकी याद आती है। उनके कामक्रोधादि विकार कम हो, ऐसा अभिध्यान करता हू। परिणाम होता है।

11 सितबर 1978 · बाबा ने एक बहुत बडी बात बतायी है – बाबा को भूल जाओ गीताई को याद रखो।

आशिक उपवास

दिसंबर 1978 आज जो गोहत्या हो रही है बगाल, कलकत्ता, केरल में उससे मेरा हृदय व्यथित हुआ है। इसलिए मैंने तय किया है कि 1 जनवरी से आशिक उपवास शुरू करूगा। आरभ से वह आशिक होगा, लेकिन बाबा जानता है, शायद इतने से गाय

संतुष्ट नहीं होगी। इसलिए पूर्ण उपवास करने का भी बाबा सोचता है। गाय की रक्षा तो भगवान ही करेगा। इसलिए बाबा गोरक्षा की बात बोलता नहीं, गोसेवा की बात बोलता है। गाय की सेवा करना, जितनी अपने से हो सकती है और उसके लिए जरूरत पडे तो आत्माहुति देना।

नाभिनंदेत मरणम्, नाभिनंदेत जीवितम्

14 अप्रैल 78 : बाबा अब कर्ममुक्त हो गया है। खास कुछ काम करने का बाकी नहीं है। ऐसी हालत में बाबा मृत्यु का चिंतन करता है, तो इससे अमृतत्व प्राप्त होगा। बाबा की वृत्ति मनुस्मृति के एक वाक्य मे है —

नाभिनंदेत मरणं नाभिनंदेत जीवितम्
कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा

भृतक यानी सेवक स्वामी की आज्ञा की राह देखता है। न मरने का अभिनंदन करता है, न जीवन का। काल की राह देखता है, जैसे सेवक स्वामी की आज्ञा की राह देखता है। बाबा मृत्यु का पूर्वप्रयोग हररोज रात को कर लेता है। और भगवान को कहता है, आज रात को अगर तू ले जायेगा तो मुझे कोई खास काम बाकी नहीं है। प्रेमपूर्वक तेरे पास आऊंगा। कल फिर से जन्म देगा तो जो कुछ थोडी सेवा हो सकती है, मुख्यत वाणी के द्वारा, वह कर लूंगा।

मृत्यु आयेगी तो किसको आयेगी ? शरीर को आयेगी। हम अमर हो जायेंगे। अब हम अमर भये, न मरेंगे। क्यों ? क्योंकि, मिथ्यात्व दियो तज। ज्या कारण देह धर्‍यो सो कारण दियो तज।

आरब्ध जयजगत्

25 दिसबर 1978 : कुछ लोगो ने माग की कि आप हमे थोडा समय दीजिए, ताकि हमे गोहत्याबदी का प्रचार-काम करने के लिए थोडा अवकाश मिले। इसलिए 111 दिन दिये है। उपवास 22 अप्रैल से होगा। तब तक बाबा पूरा भोजन करेगा। पूरा भोजन यानी आज जितना लेता है उतना (यानी आधा)।

22 अप्रैल 1979 जिस गो का दूध बचपन से आज तक हम पीते आये है, उनकी रक्षा तो भगवान करेगे। उसकी सेवा हम करेगे। बाबा अतिम समय तक आशा करता है पूर्ण अनशन की। बाकी भगवान की इच्छा! बाबा आशा रखता है कि भारतभर के सभी प्रातो को, सब लोगो को, सब सेवको को गोसेवा की प्रेरणा मिलेगी। अब बाबा हमेशा के मुताबिक 'समाप्तम् जय जगत्' नही कहेगा, 'आरब्धम् जय जगत्' कहेगा।*

26 अप्रैल 1979 प्रधानमत्री और काग्रेसवालो से बाबा को आश्वासन मिला कि सारे भारत मे गोहत्याबदी हो, इसके लिए वे पूरा प्रयत्न करेगे। बाबा ने कई दफा कहा है कि श्वास का जो स्थान शरीर मे है, वही स्थान विश्वास का समाज मे है। विश्वास समाज मे प्राण है। जब बाबा को विश्वास दिया गया, तो बाबा ने विश्वास रखा। परिणामस्वरूप बाबा का अनशन पाच दिन मे पूरा हुआ। यहा भरतराम-मदिर है। भरतराम, पाच अक्षर है। तो पाच दिन में अनशन की समाप्ति हुई।

---

* आरब्धम् = आरभ हुआ 22 से 26 अप्रैल दोपहर 3.30 तक उपवास हुए। —स

जून 1982 : मरे एक त्याचा दूजा शोक वाहे। अकस्मात तो हि पुढे जात आहे (एक मरता है, दूसरा उसका शोक करता है, अचानक वह भी आगे चला जाता है)।

भलु थयुं भांगी जंजाळ। सुखे भजीशुं श्रीगोपाल

अच्छा हुआ (लडका मर गया) जंजाल समाप्त हुआ। अब सुख से श्रीगोपाल को भजेंगे)।

मरना तो सभी को है। सवाल इतना ही है कि मरते समय नामस्मरण रहे। अंतिम क्षण में भगवन्नाम ले सके, इसके लिए जीवनभर वैसी कोशिश होनी चाहिए।

11 सितंबर 1982 : आज बाबा की देह का जन्मदिन है। जयंती बाबा की नहीं, बाबा के देह की है। मणि पूछ रही है, आपका जन्मदिन कब है? बाबा का जन्म ही नहीं होता है।

आज सभा में क्या बोला बाबा? –

जय जगत् जय जगत् जय जगत् पुकारे जा
सबके हित के वास्ते अपना सुख बिसारे जा

अक्तूबर 1982 : शंकराचार्य ने पूरी गीता पर भाष्य लिखा और 11 वें अध्याय के अंतिम श्लोक को गीता का सार माना –

माझ्या कर्मांत जो मग्न भक्तीने भरला असे
जगीं निःसंग निर्वैर मिळे तो मज मत्पर

– मेरे कर्म में जो मग्न भक्ति से भरा हुआ है जग में निःसंग, निर्वैर है, मत्पर है, मुझको प्राप्त होता है –

स मा धि

देह की अत्यंत वेदना मे चित्त उससे पूर्ण हट जाये, यह कहा तक सभव है ? ध्यानयोग मे यह कुछ हद तक सभव है । लेकिन मैं उसको बहुत महत्त्व नहीं देता । वेदना तो मूल के औषध से भी कम होती है । ऑपरेशन मे क्लोरोफार्म दे कर देह के अवयवों को काटते हैं, फिर भी आदमी को पता नहीं चलता । ध्यानयोग से इस हद तक सधेगा ऐसा किसी का अनुभव मुझे मालूम नहीं । पर कुछ हद तक ध्यानयोगी वेदना से चित्त को अस्पृष्ट रख सकता है, यह जानते हुए भी मैं उसको विशेष महत्त्व देता नहीं । महत्त्व की बात है कि वेदना का ज्ञान होते हुए भी, क्योंकि हम उस वेदना को जान रहे हैं, इसलिए हम उस वेदना से भिन्न और उसके साक्षी है, ऐसा समझ कर अत स्थिति चलित न हो ।

तारीख़ 5 नवबर को बाबा को दिनभर हलका बुखार रहा। रात को 8.15 बजे ज्यादा अस्वस्थता महसूस हुई। श्वास जोरो से चल रही थी, नाडी तेज थी, सारे शरीर मे कपन और पसीना था। डॉक्टर का निदान रहा – 'हार्ट अँटैक'। उपचार शुरू हुए। तारीख 7 को डॉक्टरो ने जाहिर किया – 'स्वास्थ्य मे निश्चित सुधार है।'

तारीख 8 की रात को 8 15 बजे पानी-दवा लेने से इनकार कर दिया। तारीख 9 की सुबह भी दवा-पानी-आहार लेने से इनकार किया। वाणी से कुछ व्यक्त नही किया, पर आहार-दवा-पानी सामने आते ही या लेने के लिए निवेदन करते ही इनकार कर देते। डॉक्टरो का बुलेटिन था – 'स्वास्थ्य मे निश्चित सतोपजनक प्रगति हो रही थी। पूर्णतया स्वस्थ होने की पूरी सभावना थी। परतु अब आहार-दवा-पानी न लेने के निश्चय के कारण स्वास्थ्य को गभीर खतरा निर्माण हुआ है।'

अत्यत थकावट की स्थिति मे भी आसपास जो आता उसके साथ एकाध शब्द बोल लेते। किसी का कार्य याद करते, किसी का नाम। ऐसी यह करुणा अव्याहत बहती ही रही।

तारीख 12 को डॉक्टर का बुलेटिन था – ' . स्वास्थ्य मे कोई गिरावट नही है।' तारीख 14 का बुलेटिन ' दुर्बलता और थकावट के बावजूद वे सचेत हैं और उनका चेहरा आध्यात्मिक तेज से दमक रहा है।' तारीख 14 की शाम को नाडी कमजोर हो गयी, रक्तचाप एकदम कम हो गया। डॉक्टरो ने एकमत से खतरा जाहिर किया। परंतु डेढ घटे के बाद रक्तचाप नार्मल हो गया, नाडी नार्मल हो गयी। टॅंपरेचर नार्मल था। प्रातः चार बजे तक डॉक्टर नाडी, रक्तचाप की गति का अवलोकन करते रहे, जो सभी पूरी तरह नार्मल था और फिर उनकी स्थिति को एक आश्चर्य मान कर उन्होने वह देखना बद कर दिया।

तारीख 15 नवबर, प्रातः 7 30 बजे फ्रेंचकन्या, जो पिछली रात को ही फ्रान्स से यहा आ पहुची थी, पानी पीने का आग्रह करने लगी, उसको विनोदभरी प्रसन्नता से इशारा किया, 'तुम ही पी लो' और फिर 'राम-हरि' की तख्ती की ओर अगुलीनिर्देश किया।

सुबह 9.30 बजे। चेहरे पर पूर्ण शांति। आंखें बंद! संपूर्ण शरीर स्वच्छ, निर्मल। श्वासोच्छ्वास ही एक मात्र क्रिया – और, पाव से 'राम-हरि' का ताल, जो अखड, कठिनतम स्थिति मे भी चालू ही था। ठीक 9 30 बजे अत्यत सहजता से अतिम श्वास ली! – स

7 नवबर 1982 : [निम्न श्लोको का गुनगुनाना]

योगेश्वर जिथे कृष्ण जिथे पार्थ धनुर्धर गीता-गीताई
तिथे मी पाहतो नित्य धर्म श्री जय वैभव 18 78

– जहा योगेश्वर कृष्ण, जहा पार्थ धनुर्धर
वहां मैं देखता हू नित्य धर्म श्री जय वैभव –

अनेक जन्म घेऊनि पावला शरणागति
विश्व देखे वासुदेव सत तो बहु दुर्लभ 7 19

– अनेक जन्म ले कर प्राप्त हुआ शरणागति को
विश्व को वासुदेव देखता है संत वह बहुत दुर्लभ –

न ह्या लोकी न त्या लोकी नाश तो पावतो कधी
शुभकारी कुणी बापा दुर्गतीस न जातसे 6.40

– न इस लोक मे न उस लोक मे नाश को प्राप्त होता है कभी
शुभकारी कोई दुर्गति को प्राप्त नहीं होता –

अथवा प्राज्ञ योग्याच्या कुळी चि मग जन्मतो
अवश्य हा असा जन्म लोकी अत्यत दुर्लभ 6 42

– अथवा प्राज्ञ योगियों के कुल मे जन्म लेता है
अवश्य ऐसा यह जन्म लोक मे अत्यत दुर्लभ

तनूरेव तन्वो अस्तु भेषजम्

– तनु – शरीर ही तनु की दवा है – वेदमन्त्र

– विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन् अनातुरम्

– हमारे गाव मे परिपुष्ट आरोग्यसपन्न विश्व का दर्शन होना चाहिए ।

ऋ सा. 1 18 8

– अनु जनान् यतते पंच धीर.

– धीर पुरुष पच का निर्णय मानते हैं ।

ऋ सा 9.5 4

– शूरग्राम: सर्ववीर सहावान्

– शूरो का ग्राम है, उसमे जो वीर होते हे, वे एक-दूसरे को सहन करते है ।

ऋ सा. 9 5.3

– आर्या व्रता विसृजन्तो अधि क्षमि

– क्षमि यानी पृथ्वी पर। समूची पृथ्वी पर आर्यव्रत का सदेश पहुचाये, फैलायें। आर्यव्रत यानी अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि जो व्रत है, उनका समूची पृथ्वी पर प्रसार करे।

ऋ. सा 10 8 6

15 नवंबर 1982 : सुबह 9 30 : [विदाई, मानो हमेशा की तरह कहा,]

समाप्तम् । जय जगत् । सबको प्रणाम ।

राम-हरि

आज हमारा देश और दुनिया इस हालत मे है कि इधर अहिंसा पर विश्वास है और उधर हिंसा की ताकत छोड नहीं सकते। परतु हमारे देश की विशेषता यह है कि हमारी सभ्यता और गाधीजी के कारण अहिंसा-शक्ति पर कुछ अधिक विश्वास है। इसलिए अगर सामाजिक समस्याए अहिंसा-शक्ति मे हल करने की कोई युक्ति मिल जाती है, तो हिंदुस्तान और दुनिया के लिए वह अत्यत आवश्यक है। मेरे मन मे यही बात थी कि अहिंसा की शोध मे अपनी बुद्धि लगायें। यह केवल बुद्धि का ही सवाल नहीं, इसमे अपना जीवन भी अर्पण करना होगा, हृदय की वृत्ति तन्मय करनी होगी। अगर हम अपनी पूरी ताकत जनशक्ति के विकास मे, अहिंसा-शक्ति की खोज मे लगायेंगे, तो हमारा देश ऊपर उठेगा, यह हमारा दृढ विश्वास है।

* *

'अभग-व्रते' पुस्तक के अत मे व्यक्त हुई विनोबाजी की प्रार्थना ०—

अभय-दातार एक भगवान
देवो वरदान शून्य दासा
'विन्या' विनाभूत होवो सार्थनाम
परिपूर्ण-काम आत्माराम

— अभय-दातार भगवान इस शून्य दास का वरदान दें कि 'विन्या' विना-भूत (विना भूतकाल = शून्य) हो जाये, ताकि उसका 'विन्या' (= विना) नाम सार्थ हो। वह परिपूर्ण-काम हो — आत्माराम बन जाके — अपने आत्माराम मे ही रममाण रहे — स.

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

ग्रामसेवा-वृत्त
सेवक पत्रिका
सर्वोदय पत्रिका
भूदान-यज्ञ पत्रिका
मैत्री पत्रिका 1964-85
विनोबा-प्रवचन
भूदान गगा 1-8
महाराष्ट्रात विनोबा 1-4
मोहब्बत का पैगाम
गाधी जैसा देखा समझा
आचार्य-कुल
सर्वोदय-पात्र
ऋषि-खेती
कुष्ठसेवा और विनोबा
तीसरी-शक्ति
त्रिविध कार्यक्रम
खादी की दिशा
चबल के बेहडो मे
गोभक्त विनोबा
आश्रम-दिग्दर्शन
विनोबा की पाकिस्तान यात्रा
प्रेरक पत्राश
मधुकर
क्रातदर्शन
जीवनदृष्टि
सिहावलोकन
शिक्षण-विचार
गीता-प्रवचन प्रस्तावना
गीताई-चिंतनिका ,,
गीताई शब्दार्थकोश ,,
स्थितप्रज्ञ-दर्शन ,,
ईशावास्यवृत्ति ,,
उपनिषदो का अध्ययन ,,
कुर्आन-सार ,,
जपुजी ,,
धम्मपद ,,
समणसूत्त ,,
भागवत-धर्म-सार ,,
नामघोषा-सारः ,,
गुरुबोध ,,
सताचा प्रसाद ,,
ज्ञानदेवाची भजने ,,
नामदेवाची ,, ,,
एकनाथांची ,, ,,
रामदासाची ,, ,,
विनयाजलि ,,
मनुस्मृति ,,
विचारपोथी ,,
अभग-व्रते ,,
महादेवभाई की डायरी
जगम विद्यापीठ
विनोबा के जीवन-प्रसग